॥ श्रीराधावल्लभो विजयते ॥

परम भागवत

श्रीराधावल्लभशरण 'दण्डवती बाबा' का जीवन चरित

प्रकाशक

श्रीमलूक पीठ प्रकाशन

श्रीमलूक पीठ सेवा संस्थान न्यास

वंशीवट, श्रीधाम वृन्दावन-२८११२१

फोन : ७९००३ ८०००३, ७९००० ८०००६

●

प्रथम संस्करण

श्रीराधाष्टमी संवत् २०८०

२३ सितम्बर सन् २०२३

५०० प्रतियाँ

●

न्योछावर

सप्रेम हरिस्मरण

●

मुद्रण-संयोजन

श्रीहरिनाम प्रेस, बाग बुन्देला, लोई बाजार, वृन्दावन

मो. : ७५००९८७६५४, ९८३७०३१४१५

विषय सूची

• पूर्व पीठिका	११
• वंशपरम्परा व आविर्भाव	१४
• कालियमर्दन कथा श्रवण से मूर्छा	२३
• प्रथम गृहत्याग तथा वापिसी	२६
• उत्कट वैराग्य	२७
• सदैव के लिए गृहत्याग	३०
• कंचन-कीर्ति से छुटकारा	३८
• भगवान् का मंगलमय विधान	३९
• सुमेरु श्रीकृष्ण का स्वरूप	४१
• गुफा के बाद यात्रा का पहला पड़ाव	५१
• गया धाम में पुत्र प्राप्ति हेतु आशीर्वाद	६५
• श्रीधाम वृन्दावन आगमन	७२
• बरसाना यात्रा एवं 'श्रीजी' की भक्तवत्सलता	७४
• श्रीसद्गुरु की प्राप्ति	८५
• नागराज से भजन के लिए अनुमति	१४०
• परिक्रमा की परिभाषा, उसका प्रचलन व महत्व	१६०
• अपंग महिला पर कृपा	१७७
• अपंग महिला का गिरिराजजी की कन्दराओं में सदा के लिए प्रवेश	१८०
• बाबा की ३६५ वीं, दण्डवती परिपूर्ण	१८५
• श्रीधाम बरसाना की परिक्रमा	१८६
• श्रीधाम वृन्दावन की परिक्रमा का भी श्रीगणेश	१८८
• श्रीसद्गुरुदेव की कृपा से पुत्र और पौत्र की प्राप्ति	१९२
• शरणागत के कष्ट निवारण में न देरी और न दूरी	१९३
• पग पग पर सद्गुरु कृपा	१९६
• गुरुदेव की कृपा निरन्तर शिष्यों पर रहती है	१९७
• चरणामृत और ब्रजरज से दुष्टात्मा का उद्धार	१९८
• बारह साल की व्याकुलता के परिणाम स्वरूप संत प्रियाशरणजी का प्रत्यक्ष दर्शन	२०२
• नित्यलीला में प्रवेश	२३७
• उपसंहार	२४०

घटनाओं की सूची

- गोविन्द का पैर में गोंद लगाकर गरीब बच्चों के लिए पैसे एकत्र करना १६
- डाकुओं का आक्रमण ३२
- गोविन्द पर ठाकुर जी की भक्तवत्सलता ३४
- गुफा के अन्दर योगीराज से वार्ता ४९
- बालयोगी के रूप में गोविन्द ५२
- सिंह की आँखों में मुरली मनोहर के दर्शन ५४
- सन्त द्वारा ब्रज जाने का आदेश ५६
- बाबा विश्वनाथ की कृपा से कामिनी से छुटकारा ६०
- विलक्षण पहेली-१ ६८
- विलक्षण पहेली-२ १४३
- ब्रह्मलीन होने के बाद भी श्रीप्रियाशरण जी ने दर्शन दिए १४६
- नागराज से भजन साधन हेतु आज्ञा १५२
- चतुरोनगन का प्रथम साक्षात्कार १५६
- चतुरोनगन का दुबारा साक्षात्कार १५८
- अपंग महिला द्वारा दण्डवती बाबा के दर्शन १७२
- अपंग महिला द्वारा श्रीगिरिराजजी की दण्डवती परिक्रमा १७५
- जलभराव से श्रीगिरिराजजी ने बाबा को बचाया १८१
- पाँच फन वाले सर्प का दर्शन १८४
- राधा नाम उच्चारण से बन्दरों का आतंक समाप्त १८६
- वकील के हस्ताक्षर ठाकुर जी ने किए २००
- बीस रुपये के लिए मथुरा की यात्रा २०४
- छोटे नोट-बड़े नोट २०६
- आशीर्वाद से महिला का ऑपरेशन सफल २०९
- चरण सेवा से मृतक लड़के का उद्धार २१२
- निष्ठावान शिष्य को विरक्त वेष प्रदान २१४
- परिक्रमा में शेर के दर्शन २१५
- सेब फल वाली प्रथम घटना २१७
- सेब फल वाली द्वितीय घटना २१७

शुभाशंसा

कलि विशेष परचौ प्रकट आस्तिक ह्वैकै चित धरौ ॥
उत्कर्ष सुनत सन्तनि को अचरज कोऊ जिनि करौ ॥

भक्तमाल / २०२

भक्तमालकार श्रीनाभा गोस्वामीजी की यह पंक्ति अक्षरश: चरितार्थ होती है ऐसे ही परम रसिक ब्रजनिष्ठ नाम-रूप-लीला-रस-निमग्न श्रीश्रीराधावल्लभशरण जी "श्रीदण्डवती बाबा" थे। बहुत पुरानी बात नहीं है सन् २००१ में ब्रजरज प्राप्त कर नित्य निकुञ्ज में प्रवेश किया। आपका चरित्र अत्यन्त विलक्षणताओं से युक्त है। साधकों के लिए रोचक, प्रेरक तथा प्रेमपथ पाथेय है। विलक्षण प्रेमी सन्तों की परख किसी ऐसे ही विलक्षण प्रेमी महापुरुष को होती है। उनमें थे हम सबके श्रद्धेय परम रसिक परम विद्वान् अन्तर्मुख मनसा वाचा कर्मणा परोपकार परायण बाबा श्रीनवेलीशरण जी महाराज। आपने अपनी प्रभावोत्पादिका लेखनी से पूज्य श्रीदण्डवती बाबा का चरित्र परिपूर्णकर नित्य-निकुञ्ज में प्रवेश किया, मानो इस कार्य के लिए ही बाबा विराजमान थे। पूज्य बाबा ने अन्तिम क्षण में हमारे गुरुभ्राता ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध श्रीअम्बिकादास जी शुक्ल को प्रकाशन के शेष कार्य को परिपूर्ण करने की सेवा प्रदान की।

यह दिव्य सन्त चरित्र सुदीर्घकाल तक साधक वर्ग को कृतार्थ करता रहेगा। अन्त में श्रीनाभा गोस्वामी जी के दोहे से अपने भावोद्गार पूज्य श्रीदण्डवती बाबा को समर्पित करते हुए दण्डवत् प्रणाम निवेदित करता हूँ।

भक्त दाम संग्रह करे कथन श्रवण अनुमोद।
सो प्रभु प्यारो पुत्र ज्यों बैठे श्रीहरि की गोद॥

भाद्र कृ एकादशी रविवार सम्वत् २०८०
दिनाङ्क : १० सितम्बर २०२३

दासानुदास
म. राजेन्द्रदास

सम्पादकीय

लगभग 15 वर्ष पहले की बात है श्रीराधावल्लभशरण 'दण्डवती बाबा' की एक शिष्या श्यामादासी के घर फरीदाबाद मलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदास पधारे थे। उस समय उक्त शिष्यों ने अपने सद्गुरुजी के कुछ संस्मरण उन्हें सुनाये थे। महाराज जी ने संस्मरण सुनकर परामर्श दिया कि ये कल्याणकारी संस्मरण स्मृतिग्रन्थ के रूप में प्रकाशित होने चाहिएँ।

उक्त प्रेरणा के फलस्वरूप श्यामादासी जी ने बाबा श्रीनवेलीशरण जी से अनुरोध किया कि जिस प्रकार आप सबके ग्रन्थ लिखवाते हैं उसी प्रकार हमारे सद्गुरुदेव का स्मृति ग्रन्थ लिखवा दीजिए। बाबा ने कहा कई ग्रन्थों का लेखन चल रहा है आप सम्बन्धित सामग्री एकत्र करें, अवकाश मिलते ही कार्य का शुभारम्भ किया जायगा।

माह जनवरी २०२१ ई. की बात है बाबा जी ने मुझसे कहा 'दण्डवती बाबा' का जीवन चरित लिखा जाना है। मैंने कहा मेरे लिए तो यह सौभाग्य की बात है। अन्ततोगत्वा दिनांक ८ फरवरी २०२१ ई. से ग्रन्थ लेखन का श्रीगणेश हुआ। एक साल (३६५ दिन) के अन्तराल में केवल १०१ कार्य दिवस ही मिले जिसमें लगभग ७५ प्रतिशत लेखन फरवरी २०२२ ई. तक सम्पन्न हुआ। उसके उपरान्त श्रीमती रश्मिजी द्वारा शेष २५ प्रतिशत कार्य पूर्ण किया गया।

परम पूज्य बाबा श्रीनवेलीशरण जी ने सामग्री के अभाव में भी ग्रन्थ का सृजन 'दण्डवती बाबा' के शिष्यों से फोन द्वारा जानकारी प्राप्त करके फिर उसी के आधार पर लेखन कार्य कराते। बाद ग्राम में निवास कर रहे अनन्त श्रीविभूषित संत श्रीसेवकशरण जी से फोन द्वारा समय-समय पर जानकारी प्राप्त करते और कभी व्यक्तिगत रूप से उनके पास जाकर सम्पर्क करते। उल्लेखनीय है वे संत दण्डवती बाबा के साथ काफी समय तक श्रीधाम बरसाना में रहे थे। अस्वस्थ होने पर उनको इलाज हेतु अस्पताल चिकित्सा हेतु ले जाया करते थे।

बाबा श्रीनवेलीशरण जी द्वारा महापुरुषों की वाणियों एवं उनके ग्रन्थों को आधार मानते हुए ग्रन्थ की संरचना की। श्रीरामचरितमानस, भक्तमाल, गीता, राधासुधानिधि, बयालिस लीला, व्यासवाणी, सेवकवाणी, नारद पंचरात्र, श्रीमद्भागवत महापुराण, विनय पत्रिका तथा उपनिषदों आदि का भी उल्लेख किया है।

लेखन के उपरान्त ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य शुरू होने वाला ही था। अचानक बाबा की तबियत खराब हो गई। उन्हें इलाज हेतु श्रीरामकृष्ण मिशन में दिनांक १२ अप्रैल २०२३ को भर्ती किया गया।

स्वास्थ्य में सुधार न होने कारण उन्हें इलाज हेतु दिल्ली ले जाने का विचार हुआ जबकि बाबा श्रीधाम वृन्दावन छोड़कर कहीं जाना ही नहीं चाहते थे। परम आदरणीय पूज्य श्रीराजेन्द्रदास मलूकपीठाधीश्वर के आग्रह को बाबा अस्वीकार न कर सके। दिनांक १३ अप्रैल २०२३ को रात्रि १० बजे उन्हें दिल्ली ले जाया गया। प्रारब्धवश दिल्ली जाना पड़ा, परन्तु सौभाग्यवश दिनांक २१ अप्रैल २०२३ को अर्धरात्रि में बाबा अपनी कुटिया पर आ गए।

दिनांक २२-४-२०२३ को मैं बाबा के दर्शनार्थ कुटिया पर गया। बाबा को पूर्ण विश्राम की आवश्यकता थी इसलिए माताजी ने जन सम्पर्क पर रोक लगा रखी थी साथ ही खिड़की के द्वारा दर्शन करने की छूट थी। निर्देशानुसार जैसे ही मैं खिड़की से बाबा के दर्शन करने लगा एकाएक बाबा बोले—

"शुक्ल जी राधे राधे। बुन्देलखण्ड के इतिहास की प्रूफ रीडिंग मेरे द्वारा की जा चुकी है कुछ पृष्ठ शेष बचे हैं उन्हें पूर्ण करके, पहले प्रकाशित करा देना। श्रीदण्डवती बाबा का स्मृति ग्रन्थ मेरे द्वारा पूरा किया जा चुका है। उसकी सामग्री हित प्रियाकिंकरी के पास है तथा, कुछ श्रीमती रश्मि जी के पास है, एकत्र करके प्रकाशित करा देना। मोटे गणेश जी के महाराज पण्डित दुर्गा प्रसादजी का चरित्र लगभग आधा लिखा जा चुका है यह काम आप परमहंस जी से मिलकर पूरा करा लेना।"

मैंने कहा ग्रन्थों की अभी कोई जल्दी नहीं है। जब आप स्वस्थ हो जायेंगे तब सब सुचारु रूप से परिपूर्ण कर लिया जायगा।

बाबा ने कहा कि **"अब यह सब आपको ही करना है।"** ऐसा कहकर वे भावुक हो गए। आँखों में आंसू छलक आए। मैं गम्भीर मुद्रा में कक्ष से बाहर आ गया।

उसी दिन सायंकाल लगभग ४ बजे अपने आराध्य प्रियाप्रीतम की सेवा में पहुँच गए। दिनांक २३.४.२०२३ को प्रात: यमुना पुलिन पर उनके पार्थिव शरीर को अग्निदेव के हवाले कर दिया। **भाग्य बड़ो वृन्दावन पायौ।** इस प्रकार उत्तराधिकार स्वरूप तीन ग्रन्थ आशीर्वाद सहित प्राप्त हुए।

"दण्डवती बाबा" की पाँच शिष्याओं के नाम इस प्रकार हैं।

1. शक्ति शर्मा जम्मू निवासिनी बाबाजी की भतीजी
2. उषा शर्मा जम्मू निवासिनी बाबाजी की भतीजी
3. कोशल प्रियादासी वृन्दावन
4. श्यामादासी वृन्दावन
5. नागरीदास अलबेली वृन्दावन

अनन्त श्रीविभूषित संत सेवकशरण के चरणकमलों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करता हुआ विशेष आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है।

जिन शिष्याओं ने ग्रन्थ लेखन में सामग्री संकलित करके इस कार्य में जो सहयोग दिया उनके हम हृदय से आभारी है। हित प्रियाकिंकरी जी द्वारा ग्रन्थ का प्रेस नोट तैयार किया गया उनके प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

इस कार्य में लगे सहयोगियों को बाबा नवेलीशरणजी की तरफ से विशेष धन्यवाद। आप सभी ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की त्रिवेणी में सदा अवगाहन करते रहें।

सम्पादक

भक्तमाल भाष्यकार श्रीगणेशदास भक्तमालीजी

के कृपा पात्र

दासानुदास अम्बिकादास शुक्ल

मलूकपीठ सेवा संस्थान, वृन्दावन

।। श्रीराधावल्लभो विजयते ।।

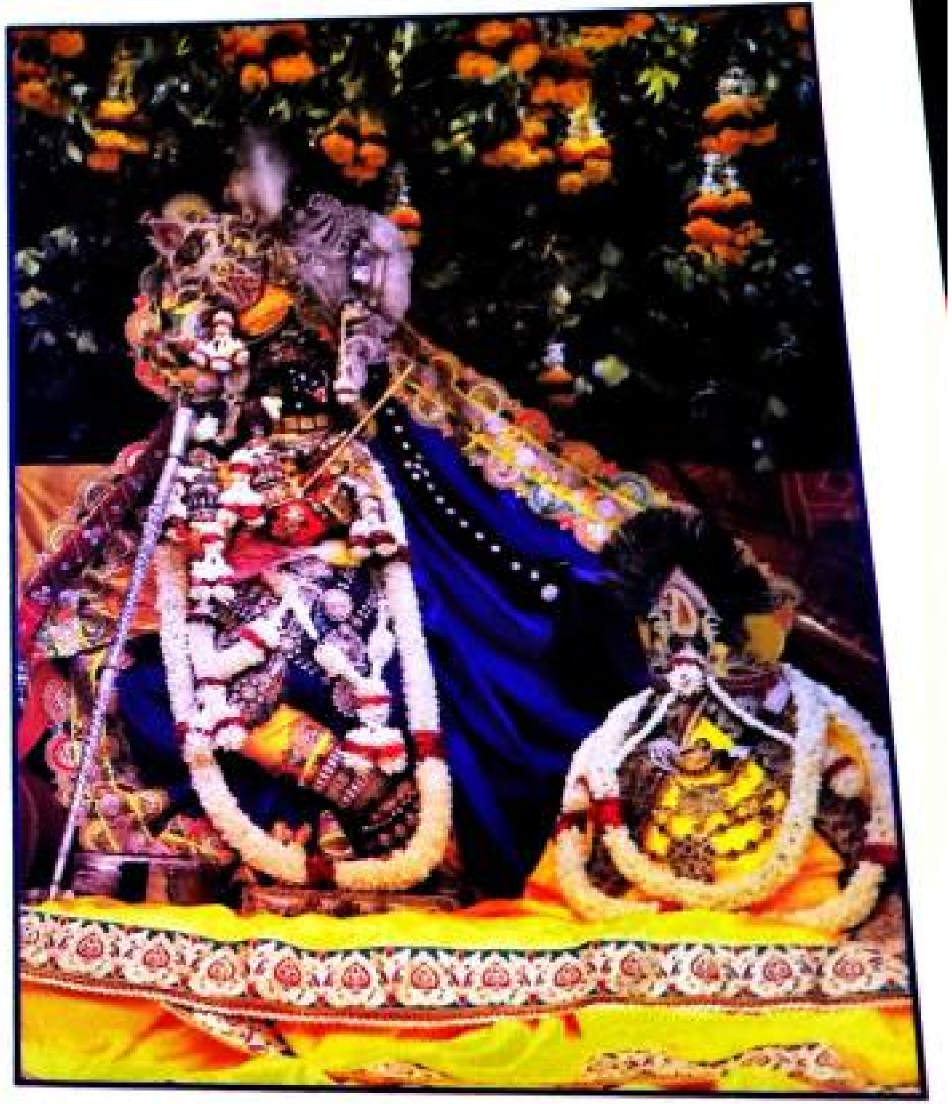

ठाकुर श्रीराधावल्लभलाल जी महाराज
श्रीधाम वृन्दावन

पूज्य श्रीबाबा की चरणाश्रित
जिनसे पूज्य बाबा का चरित्र और घटनाओं की जानकारी मिली

प्रियादासी

श्यामादासी

शक्ति शर्मा

उषा शर्मा

अलबेली दासी

मंगलाचरण

भक्त भक्ति भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक।
इनके पद बन्दन किये नाशहिं विघ्न अनेक॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्यायेन मार्गेण मही महीशाः।
गो ब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथ्वी शस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥

वृन्दावन गोवर्धनं यमुना पुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप॥

वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपा सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

गुरु वन्दना

सोरठा

बन्दऊँ गुरु पद कंज, कृपासिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकरि॥

चौपाई

बन्दऊँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
श्रीगुरु पद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्यदृष्टि हियँ होती॥

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल विभव बस करहीं।
गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई। जो बिरंचि संकर सम होई॥

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू।
गुरु के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥

श्लोक

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

"गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान"

गुरु के बचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।
रघुपति यश गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग॥

एहि कर होइ परम कल्यान।
सोइ करहु अब कृपा निधान॥

॥ इति शुभम्॥

॥ श्रीराधावल्लभो जयति॥

॥ श्रीहित हरिवंश चन्द्रो जयति॥

रसिक सन्त बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी महाराज "दण्डवती बाबा"

पूर्व पीठिका

अध्यात्म जगत् की लोक पावन विभूतियों का जीवन-चरित्र परमार्थ पथ के पथिकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। संत भक्तों की जीवन गाथाओं को पढ़-सुनकर साधक उनसे प्रेरणा प्राप्त करता है, उनका अनुसरण करता है और उन्हें अपना आदर्श मान कर साधन पथ पर अग्रसर होता है। भक्त-चरित्र से ये सब लाभ होते हैं तथापि उसका एक और अनूठा लाभ है वह है श्रीभगवान् की प्रसन्नता प्राप्ति। श्रीभगवान् को अपने भक्तों का यश सर्वाधिक प्रिय है इसलिए भक्त-चरित्र को श्रद्धापूर्वक पढ़ने-सुनने वालों के प्रति उनकी प्रसन्नता होना स्वभाविक ही है। फिर जो भाग्यशाली उसे केवल पढ़-सुनकर ही तृप्त नहीं होते अपितु उसका मनन भी करते हैं तथा उसके अनुसार अपना जीवन ढालने का तत्परता पूर्वक प्रयास करते हैं उनके प्रति भगवान् की अतिशय प्रसन्नता एवम् उन पर कृपा-दृष्टि होना तो नितान्त स्वाभाविक है।

लगभग ४ शताब्दी पूर्व हुए रसिक संत श्रीहित ध्रुवदास जी ने अपने "भक्त नामावली" ग्रन्थ में कहा है-

हरि को निज जस तें अधिक भक्तन जस पर प्यार।
तातें यह माला रची करि ध्रुव कण्ठ सिंगार॥

भक्त नामावली ग्रन्थ में वे आगे लिख रहे हैं—

अजहूं सोच विचार के गहि भक्तन पद ओट।
हरि कृपालु सब पाछिली छमिहैं तेरी खोट॥

जीव अनादिकाल से अपराध-पाप करता आ रहा है। यह विशाल पाप-राशि एक पर्वत के समान है जो उसके कल्याण मार्ग की एकमात्र बाधा है। संत-भक्तों की सेवा करने से तथा उनके पावन-चरित्र का आश्रय लेने से प्रसन्न होकर श्रीठाकुर जी उसकी यह अपार पाप राशि नष्ट कर देते हैं। उसकी समस्त त्रुटियों को क्षमा कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप वह निर्मल होकर उन्हें प्राप्त हो जाता है।

सुप्रसिद्ध श्रीभक्तमाल ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा गया है—

(श्रीगुरु) अग्रदेव आज्ञा दई हरि भक्तन को यश गाय।
भवसागर के तरन कौ नाहिन और उपाय॥

भक्तमालकार गोस्वामी श्रीनाभादास जी कह रहे हैं कि मेरे सद्गुरुदेव श्रीअग्रदेवाचार्य जी ने मुझे आदेश दिया कि तुम भक्तों का चरित्र वर्णन करो क्योंकि भक्त गाथा के अतिरिक्त भवसागर से पार जाने का और कोई उपाय नहीं है।

गुरुदेव की आज्ञा सुनकर नाभाजी ने उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की—

बोलेव कर जोरि याको पावत न ओर छोर,
गाऊं रामकृष्ण नहीं पाऊं भक्त दाम कौ।

नाभाजी के कथन का तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीरामकृष्ण की मनोहारी लीलाओं का वर्णन मैं कुछ सुगमता से कर सकता हूँ किन्तु भक्तों का चरित्र वर्णन करना मेरे लिए कठिन कार्य है क्योंकि भक्तों के हृदय में छिपे प्रेम रहस्य को समझना अत्यन्त दुरूह है।

सन्त-भक्तों की जीवन-गाथा वर्णन करना कठिन इसलिए है कि महापुरुष अपनी आन्तरिक उपलब्धियों को सदैव छुपाए रहते हैं अतः उनके विषय में कुछ कह पाना प्रायः दुष्कर रहता है। जबकि सामान्य व्यक्ति अपनी विशेषताओं को अधिक से अधिक प्रकाशित करने का इच्छुक होता है ताकि उन्हें जानकर लोग उसका सम्मान करें। यह इच्छा ही लोकेषणा कहलाती है जो मनुष्य के भीतर छिपे अहंकार के कारण होती है किन्तु आत्मगोपनशील सन्त सदैव दैन्य को धारण किए रहते हैं और उनकी सहज दीनता में उनके हृदय का धन ढ़का रहता है।

संत नागरीदास जी ने कहा है—

"नागरीदास वस्तु यों राखै ज्यौं गूदरि में हीरा"

इसी कारण भक्त गाथाओं का वर्णन करना सहज नहीं होता। श्रीनागरीदास जी की यह प्रार्थना सुनकर उनके गुरुदेव ने कहा—

"कही समुझाय वोई हृदय आइ कहैं सब"

अर्थात् तुम जिस संत का वर्णन करना चाहोगे वे स्वयं ही तुम्हारे हृदय में आकर कृपापूर्वक अपना सब गूढ़ वृतान्त तुम्हें बता देंगे फिर उसे तुम सुगमता से लेखबद्ध कर सकोगे।

इससे स्पष्ट है कि भक्त-चरित्र का लेखन बिना भक्त-भगवन्त की कृपा के संभव नहीं है। उनकी सहज कृपा से ही यह कार्य इस रूप में हो पाता है कि जिसे पढ़-सुनकर पाठक अथवा श्रोता को आनन्द एवम् संतोष का अनुभव हो तथा लेखक या वक्ता भी उसका वर्णन कर स्वयं को कृतार्थ अनुभव करें।

कृपाबल से लिखा गया चरित्र लेखक की अपराधों से भी रक्षा करता है। लेखन में कई प्रकार की त्रुटियाँ संभव हैं जो अपराधों में गिनी जाती हैं। जैसे सम्प्रदाय, उपासना पद्धति अथवा

क्षेत्र एवम् जाति को लेकर किसी प्रकार का पक्षपात करना, किसी बात को अतिरंजित करके कहना अथवा किसी तथ्य को दुर्भाव से छुपा लेना आदि। भक्त का गौरव कथन करते हुए किसी दूसरे के गौरव को न्यून कर के प्रस्तुत करना भी इन्हीं अपराधों में शामिल है। इनके अतिरिक्त एक बड़ी ही स्वाभाविक त्रुटि लेखक या वक्ता से होती है कि भक्तगाथा का वर्णन करके उसके सहज फल भगवत् भक्ति को न चाहकर लोकेषणा अथवा मान-बड़ाई की कामना रखना। इन सब अपराधों से भक्त-भगवन्त की कृपा ही रक्षा करती है। अतः भक्ति पथ का निरूपण अपने अहंकार के वशीभूत होकर करना उचित नहीं है, इसके लिए निर्मल मति से कृपा का आश्रय लेना चाहिए।

अतएव यहाँ सन्त-भक्त तथा उनके हृदय आराध्य श्रीराधावल्लभ लाल की इसी सहज और समर्थ कृपा का आश्रय लेकर श्रीधाम वृन्दावन के एक प्रेमी रसिक संत का जीवन परिचय लिखा जा रहा है जिन्हें श्रद्धालु जन प्रायः दण्डवती बाबा के नाम से जानते थे जबकि उनका नाम बाबा श्रीराधावल्लभ शरण जी था।

वंशपरम्परा व आविर्भाव

बाबा का जन्म विक्रम सम्वत् १९८१ (ई. सन् १९२४) के कार्तिक मास की शुक्ला द्वादशी को जम्मू-कश्मीर के कठुआ जिले में हुआ था। श्रीमद्भागवत में स्मयन्तकमणि की घटना का जो वर्णन किया गया है उसके अन्तर्गत मणि को खोजते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र इसी कठुआ क्षेत्र में आये थे और यहाँ जाम्बवान से उनका युद्ध हुआ था। महाभारत के अनुसार पाण्डवों ने वनवास का कुछ समय इसी क्षेत्र में व्यतीत किया था। यहाँ पाण्डवों के आगमन के अनेक स्मृति-चिह्न बताए जाते हैं।

कठुआ में प्राकृतिक सौन्दर्य की मनोहारी छटायें दिखाई पड़ती हैं। ऊँची पहाड़ियाँ और उनके मध्य से बहते हुए जल-प्रवाह जिनका कल-कल शब्द दर्शकों का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेता है। कठुआ जिले में एक बिलावर नाम की तहसील है। यह भी एक पहाड़ी क्षेत्र है। बिलावर तहसील के अन्तर्गत चिन्जी-मकवाल नाम के दो गाँव हैं। ये दोनों गाँव पास-पास है। भौगोलिक निकटता और वहाँ के निवासियों का तादात्म्य आदि कारणों से इन दोनों गाँवों का नाम एक साथ लिया जाता है। चिन्जी पहाड़ी के ऊपर बसा गाँव है जबकि मकवाल की बस्ती मैदानी भूमि पर है। दोनों की दूरी ५०० मीटर से अधिक नहीं है।

ब्रिटिश शासनकाल में श्रीनन्दलाल नाम एक व्यक्ति चिन्जी मकवाल में सपरिवार निवास करते थे। श्रीनन्दलाल उस समय सेना में पदाधिकारी थे। अपनी कर्तव्यपरायणता और शौर्य के कारण उन्हें शासन की ओर से अनेक आर्थिक एवम् अन्य सुविधाएं प्राप्त थी। चिन्जी में निवास करते हुए इन्होंने नीचे मकवाल के बाजार में एवम् बस्ती से बाहर कृषि क्षेत्र में काफी भू-भाग क्रय कर लिया था। उस समय मकवाल की जनसंख्या २००० से भी कम थी जबकि चिन्जी तो इससे भी छोटी पहाड़ी बस्ती ही थी।

श्रीनन्दलाल के पुत्र थे श्रीमणिराम जी। इन्होंने पिता के पश्चात् कृषि कार्यों की ओर ही विशेष ध्यान दिया। मकवाल के बाजार में इनकी दो दुकानें थीं। एक किराने की तथा दूसरी हलवाई की। श्रीमणिरामजी की पत्नी का नाम कृष्णा देवी था। कृष्णा देवी अतिशय धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। घर में ठाकुर श्रीशालिग्राम जी की सेवा-पूजा थी जिसे ये भाव-चावपूर्वक किया करती थीं। श्रीमणिराम व कृष्णा देवी की पाँच सन्तानें

थीं। सबसे बड़ी लड़की धन देई थी, उसके पश्चात् ४ पुत्र क्रमश: गणपति, गोविन्द, रत्नचन्द और ईश्वर दत्त थे।

श्रीमणिराम जी की तीसरी सन्तान गोविन्द ही आगे चलकर विरक्त जीवन स्वीकार करने से परम पूज्य बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी के नाम से जाने गए। गोविन्द बचपन से ही धर्मपरायण एवम् असंग प्रकृति के थे। बाल्यकाल में इनका ध्यान खेलकूद में कम ही रहता था। घर वाले जो काम बता देते उसे वे तत्परतापूर्वक कर दिया करते थे किन्तु मन से वे व्यवहार-प्रपंच से उखड़े-उखड़े रहते थे। गोविन्द के नेत्र प्राय: ऐसे प्रतीत होते थे मानों वे किसी को खोज रहे हो। अनन्त आकाश, ऊँची-नीची पहाड़ियाँ, वृक्ष लताओं से आच्छादित वन प्रदेश तथा सरोवर-झरने आदि जलाशय इन सब स्थानों में गोविन्द की वह खोज जारी रहती जिसे वे प्राप्त करना चाहते थे। किसे खोज रहे थे गोविन्द के नेत्र? किन-किन मार्गों से खोजते हुए अन्तत: गोविन्द ने उस तत्त्व को किस रूप में प्राप्त किया यही गोविन्द की जीवन गाथा है जिसका हम क्रमश: वर्णन करेंगे।

घटना क्रमांक १

गोविन्द का पैर में गोंद लगाकर गरीब बच्चों के लिए पैसे एकत्र करना

गोविन्द जब पाँच-सात वर्ष के थे तब के एक प्रसंग से उनकी करुणा तथा उपकार करने की वृत्ति का पता चलता है। उनके पिता की एक दुकान मकवाल बस्ती में थी। उन दिनों छोटे स्तर के कारोबार में लेन-देन का प्रमुख आधार प्राय: सिक्के ही हुआ करते थे। यह बात सन् १९३० के आसपास की है। उस समय चार आने, आठ आने अथवा एक रुपये के सिक्के से ही

एक सामान्य व्यक्ति अपनी जरूरत का कुछ सामान खरीद लेता था। सिक्कों के इस प्रचुर व्यवहार से दुकान में एक खास स्थल पर प्राय: ये सिक्के बिखरे हुए से पड़े रहते थे। गोविन्द ने उन दिनों प्राथमिक पाठशाला में पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। उनके विद्यालय में बड़ी संख्या में गरीब परिवारों के बच्चे भी पढ़ते थे, उन गरीब बच्चों को अपने माता-पिता से हाथ खर्च के लिए प्राय: कुछ प्राप्त नहीं होता था, इसलिए वे विद्यालय के बाहर बेचे जा रहे नमकीन अथवा मीठे व्यंजनों को नहीं खरीद पाते थे।

गोविन्द बालपन से ही दयालु प्रकृति के थे उनसे गरीब बच्चों की यह स्थिति देखी नहीं जाती थी। वे चाहते थे कि मैं इन सहपाठियों का किसी रूप में सहयोग करूँ। इसके लिए उन्होंने एक युक्ति निकाली। विद्यालय के पश्चात् वे घर से भोजन आदि करके अपने पिता की दुकान पर चले जाते वहाँ वे अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं द्वारा खेल-कूद करते रहते। इसी बीच मौका देख कर वे अपने पैर के तलबों में दुकान पर उपलबध गाढ़ा गोंद लगा लिया करते। यह कार्य वे सावधानी के साथ करते जिससे उनके पिता आदि को पता नहीं चलता। पैर के तलवों में गोंद लगा होने से इधर-उधर चलने के समय वहाँ पड़े हुए सिक्के उनके तलवों से चिपक जाते, जिन्हें वे बाद में सबकी नजर बचाकर पैरों से छुड़ा लेते और अपने पास इकट्ठे कर लेते। उन सिक्कों को वे अगले दिन विद्यालय में अपने उन गरीब सहपाठियों को बाँट देते। इस प्रकार वे बच्चे भी रुचि के अनुसार खाने की वस्तुएं खरीद कर आनन्दित होते। गरीब बालकों को भी इस प्रकार आनन्दपूर्वक खाते देखकर गोविन्द अपने मन में प्रसन्नता एवम् सन्तोष अनुभव करते।

मनुष्य के स्वभाव की मूल प्रवृत्तियाँ जिसके आधार पर उसके समग्र व्यक्तित्व का गठन होता है उन्हें उसके बचपन की क्रियाओं में देखा जा सकता है। दया, क्षमा, परोपकार, सेवा आदि जिन उदात्त गुणों का दर्शन गोविन्द के जीवन में बड़े होने पर दिखाई दिया। सत्पुरुषों के ये दुर्लभ गुण बालपन से ही उनमें किस रूप से विद्यमान थे इसका दिग्दर्शन इस घटना से होता है।

बाल्यकाल से ही गोविन्द में अनेक सद्गुण विद्यमान थे। दया, क्षमा, शान्ति, परदुःखकातरता, परोपकार, समता, वीतरागता, त्याग, तप तथा तितिक्षा जैसे दुर्लभ गुणों का एकत्र समावेश उनमें दिखाई देता था। एक बार बचपन में अपने एक मित्र के साथ वे जंगल में लकड़ी लेने गए। वह शीतकाल का समय था। पर्वतीय क्षेत्रों में तो ठण्ड बहुत होती ही है, दोनों मित्र अपने कार्य में लगे हुए थे इतने में ही बादल घिर आए तथा वर्षा होने लगी। गोविन्द का मित्र केवल कुर्ता ही पहने हुए था। वर्षा के कारण ठण्ड बढ़ गई और वह पर्याप्त वस्त्र न होने के कारण काँपने लगा। उस समय आप रूई से भरी हुई सदरी (जाकेट) पहने हुए थे उसे उतार कर उन्होंने अपने मित्र को पहना दिया। वर्षा से बचाने के लिए उन्होंने अपने मित्र को चट्टान की एक खोह में बैठा दिया और स्वयं भीगते रहे। वर्षा समाप्त होने पर गोविन्द अपने मित्र का लकड़ी का गट्ठा स्वयं उठाकर गाँव तक ले आए। ऐसी ही अनेक घटनाएँ हैं जो गोविन्द के प्रेम, सेवा और दयालुता से भरी हुई हैं।

साधु-सन्तों की सेवा और उनसे सत्संग वार्ता सुनना गोविन्द को अत्यन्त प्रिय था। चिन्जी-मकवाल यद्यपि सुदूर पहाड़ी क्षेत्र की छोटी बस्ती ही थी वहाँ सन्तों के आवागमन की

घटनाएँ विरल ही होती थीं तथापि श्रीभगवत्-कृपा का सुअवसर सहज ही प्राप्त हो गया।

मकवाल की बस्ती से लगा हुआ एक तालाब है और उस तालाब के किनारे ही गोविन्द के पिता जी की दुकानें थीं। तालाब के एक ओर एक विशाल वटवृक्ष था जिसके नीचे एक महात्मा निवास करते थे। गोविन्द पिता के आदेश से कुछ देर दुकान पर बैठते और फिर उन महात्मा जी के पास चले जाते। उनसे भगवत्चर्चा श्रवण करते और उनकी सेवा करते। इस प्रकार दिन भर में कई घण्टे वे उन महात्मा के संग व्यतीत करते। गोविन्द सत्संग के रंग में रंगते चले गये। जागतिक प्रपंच के प्रति उपरामता तो उनमें जन्मजात थी ही और अब सत्संग के प्रभाव से यह उपरामता दिनों-दिन बढ़ने लगी। गोविन्द ने उन संत के निवास के लिए अपने हाथों से परिश्रमपूर्वक एक कुटिया भी बनाई।

गोविन्द की प्रारम्भिक शिक्षा मकवाल में गाँव की पाठशाला में ही हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ प्रारम्भिक कुछ कक्षाओं की ही व्यवस्था थी क्योंकि थोड़ा बड़ा होने पर उन्हें शिक्षा के लिए जम्मू की ओर जाना पड़ा। जम्मू के पास पूरमण्डल नामक एक स्थल है जहाँ देवक नाम की पवित्र नदी बहती है। देवक का उद्गम ऊधमपुर से कुछ आगे की ओर बताया जाता है। वह स्थल शिव-पार्वती विवाह का स्थान है। श्रीपार्वती जी ने विवाह से पूर्व जिस सरोवर में स्नान किया था उसी से देवक नदी प्रकट हुई। इस प्रकार देवक को भगवती पार्वती के श्रीचरणों से प्रकट हुआ माना जाता है। ऊधमपुर से बहते हुए यह नदी पूरमण्डल (जम्मू) से गुजरती है।

पूरमण्डल उस क्षेत्र का एक तीर्थस्थल है। नदी के तट पर अनेक प्राचीन शिवालय हैं। वहाँ की जनता देवक नदी में ही

अस्थि विसर्जन आदि सभी कर्म करती है। उस समय वहाँ नदी के तट पर संस्कृत विद्यापीठ नामक एक विद्यालय था। आगे की कक्षाओं की पढ़ाई के लिये गोविन्द को वहीं रखा गया। विद्यालय का एक अपना छात्रावास था उसमें रहकर गोविन्द ने विद्याध्ययन किया। जैसा कि विद्यालय के नाम से ही स्पष्ट है कि अन्य विषयों के साथ वहाँ प्रधान रूप से देवभाषा संस्कृत की पढ़ाई होती रहती होगी। पूर्वकाल में शिक्षा का स्तर बहुत समुन्नत था। कुछ ही कक्षाओं को उत्तीर्ण कर लेने वाला विद्यार्थी पर्याप्त विद्वता अर्जित कर लेता और उसी के अनुरूप समाज में उसका आदर भी होता।

गोविन्द की पढ़ाई कुल कितनी कक्षाओं तक हुई यह जानने का हमारे पास कोई माध्यम नहीं है? किन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार से यह अनुमान किया जाता है कि ८-९ कक्षाओं तक वे अवश्य पढ़े होंगे। आगे चलकर जब गोविन्द दण्डवती बाबा के नाम से प्रख्यात् हुए तब उन्होंने एक प्रसंग विशेष में ७ वर्ष की आयु में तीसरी कक्षा में पढ़ने की बात कही थी। एक अन्य सन्दर्भ में उन्होंने १५-१६ वर्ष की आयु में गृहत्याग करने की चर्चा की थी। इस प्रकार ८-९ कक्षा तक की उनकी पढ़ाई का अनुमान किया जा सकता है। संस्कृत विद्यापीठ में पढ़ने के कारण उनको संस्कृत भाषा का भी ज्ञान था।

पुरमण्डल के छात्रावास में अध्ययन के अतिरिक्त उनकी क्या-क्या रुचियाँ रहीं एवम् वहाँ उनकी रहनी किस प्रकार की रही यह जानने का हमारे पास अब कोई साधन नहीं है। पूर्व में कहा गया है कि गोविन्द किसी अज्ञात तत्त्व की खोज में लगे रहते थे। उनके नेत्र ही यह बता देते थे कि वे किसी को ढूँढ़ रहे हैं? किसे ढूँढ़ रहे हैं यह स्वयं वे भी उतना नहीं जान पाते थे

किन्तु उनकी खोज निरन्तर जारी थी। सात वर्ष की आयु में एक ऐसी घटना घटी जिसने गोविन्द को उस खोज की एक निश्चित दिशा प्रदान कर दी और उन्हें यह अनुभव होने लगा कि इस जगत् में उनका आगमन इस खोज को अपने लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए ही हुआ है। अब हम इसी घटना का वर्णन करेंगे।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में श्रीभगवान् ने कहा है—**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्** अर्थात् जो मेरा जिस प्रकार से भजन करता है मैं भी उसका उसी प्रकार से भजन करता हूँ। गोविन्द के भीतर जिस तत्त्व की अज्ञातरूप से खोज थी वह परम तत्त्व भी उन्हें अपनी कृपा दृष्टि में लिए हुए था। गोविन्द को अपने परिचय की एक झलक देने के लिए वह भी किसी अवसर की प्रतीक्षा में था। अन्ततः एक प्रसंग विशेष से वह अवसर आकर उपस्थित हो गया।

यह घटना तब की है जब गोविन्द की आयु ७ वर्ष की थी और वे तीसरी कक्षा में पढ़ते थे। उनके घर में दीवार पर एक कलेण्डर लगा हुआ था, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण कालियनाग के फणों पर नृत्य करते हुए दर्शाये गये थे। कुछ दिनों से बालक गोविन्द की दृष्टि उस कलेण्डर पर चली जाती थी। कालियनाग जाति के सर्वाधिक बलशाली एवम् तीक्ष्ण विषवाले नागों में से एक था। वह साक्षात् नागमाता कद्रू का पुत्र था। अपने विष व बल के मद से वह सदैव मतवाला रहता था। उसके १०१ फण थे। भगवान् की लीला भूमि ब्रज में बहने वाली श्रीयमुना जी के एक कुण्ड में वह सपरिवार निवास करता था। उसके विष की भीषण ज्वाला से उस कुण्ड का जल विषाक्त हो गया था। पशु-पक्षी आदि प्राणी उस जल को पीना तो दूर उसके निकट आते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। उस विषैले जल के प्रभाव से

आसपास की भूमि में कोई वनस्पति भी नहीं टिक पाती थी। अभिमानी कालियनाग का मर्दन करने के लिए एक दिन श्रीकृष्ण कदम्ब के ऊँचे वृक्ष पर चढ़कर उस विषैले जल में कूद पड़े। जैसे कोई मत्त गजराज सरोवर या नदी में जाकर जल को उछालकर क्रीड़ा करता है ऐसे ही श्रीकृष्ण कालिय दह का जल उछालने लगे। अपने निवास स्थल में एक गोप बालक को इस तरह जल-क्रीड़ा करते देखकर पहले तो कालिया ठिठका फिर उसने क्रोध में आकर श्रीकृष्ण को अपने शरीर के बंधन में जकड़ लिया। यह दृश्य देखकर श्रीकृष्ण के प्यारे सखा ग्वाल-बाल बहुत पीड़ित हुए। वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। यही दशा गायों की भी हुई। वे भी श्रीकृष्ण को विपत्ति में पड़ा देखकर दुःख से डकराने (रम्भाने) लगीं।

इस घटना से पृथ्वी और आकाश में भी अनेक अशुभ उत्पात होने लगे। श्रीकृष्ण के माता-पिता नन्द-यशोदा एवम् अन्य ब्रजवासी गोप-गोपियाँ इन उत्पातों को देख अपने जीवन सर्वस्व श्रीकृष्ण के लिए चिन्तित हो गए। वे सब दौड़ते हुए कालियदह के तट पर आ गये। जब उन्होंने देखा कि हमारा जीवन धन कन्हैया कालियनाग के द्वारा इस विषैले कुण्ड में बँधा हुआ है तो वे अपनी सुध-बुध भूलकर अत्यन्त व्याकुल हो गए और मृतप्राय से होकर भूमि पर गिर पड़े।

भगवान् श्रीकृष्ण ने जब देखा कि मुझे सर्प से जकड़ा हुआ देखकर मेरे माता-पिता गोप-गोपियाँ एवम् गायें आदि प्राणी बहुत दुःख पा रहे हैं तो उन्होंने ब्रजवासियों को सुखी करने के लिए स्वयं को नाग के बन्धन से छुड़ा लिया। अपने शरीर को इतना स्थूल कर लिया जिससे कालिया की देह टूटने लगी। हारकर उसने स्वयं ही श्रीकृष्ण को छोड़ दिया। फिर दोनों पैंतरा

बदलते हुए एक दूसरे पर चोट करने लगे। इसी बीच श्रीकृष्ण उछलकर कालिया के फणों पर चढ़ गए और अपने भक्तों को सुख देने के लिए उसके १०१ फणों पर नृत्य करने लगे। उस समय आकाश स्थित गन्धर्व, देवता आदि मृदंग, ढोल तथा अनेक प्रकार के बाजे बजाने लगे और देवांगनाएँ गीत गाने लगीं। कालियनाग के फणों पर लाल रंग की अनेक मणियाँ थीं उनकी प्रभा श्रीकृष्ण के सुकुमार तलवों पर पड़ रही थी। नृत्य परायण भगवान् के पदन्यास से कालिय के फण कुचलने लगे। अपने चरणों की प्रचण्ड ठोकर से श्रीकृष्ण उसके फणों को रौंदने लगे। अन्ततः कालिया का घमण्ड चूर हो गया और वह समझ गया कि मेरे फणों पर नृत्य करने वाला यह कोई सामान्य गोप बालक नहीं है अपितु त्रिभुवन पति स्वयं भगवान् ही इस रूप में धरती पर अवतीर्ण हुए हैं।

कालिय के फणों पर नृत्य करते हुए भगवान् की इस छवि को उस कलेण्डर में चित्रित किया गया था। गोविन्द आते-जाते उसे ध्यानपूर्वक देखते थे। कुछ दिनों से उस कलेण्डर को बार-बार देखना उन्हें बहुत अच्छा लग रहा था। उसमें दर्शाए गए चित्र की गाथा से वे परिचित नहीं थे। एक दिन उन्होंने अपनी माँ से पूछा कि यह किसका चित्र है और इसमें दिखाए दृश्य की क्या कथा है? माँ ने संक्षेप में श्रीकृष्ण की कालियमर्दन लीला सुना दी जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में किया गया है।

कालियमर्दन कथा श्रवण से मूर्छा

माँ से यह कथा सुनने के बाद गोविन्द को स्वतः श्रीकृष्ण की कालिय मर्दन लीला का चिन्तन होने लगा। नाग के फणों पर

नृत्य करते हुए कन्हैया की छवि उनके नैन-प्राणों में बस गई। श्रीकृष्ण का अतुल पराक्रम ब्रजवासियों का उनके प्रति अनुपम प्रेम तथा कालिय और उसकी पत्नियों पर उनकी अहैतुकी कृपा, इन सब प्रसंगों से जुड़े हुए भाव गोविन्द के मन में बार-बार उठा करते थे।

इसी अवधि में एक दिन गोविन्द कुछ अस्वस्थ हो गये, उन्हें ज्वर हो गया। ज्वर वशात् कहें अथवा भगवत् विधान से वे मूर्च्छा अवस्था में चले गए। भगवत् विधान इसलिए कहा जा रहा है कि यह मूर्च्छा गोविन्द के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन लेकर आई। तीन दिन वे निरन्तर मूर्च्छित रहे किन्तु यह मूर्छा भी सामान्य नहीं थी। साधारण रूप से मूर्छा गहरी निद्रा के समान ही एक ज्ञान-शून्य अवस्था है। इसमें व्यक्ति को न कोई भीतरी ज्ञान होता है और न बाहरी। परन्तु गोविन्द की मूर्छा भिन्न प्रकार की थी। वे तीन दिनों तक श्रीकृष्ण की कालिय मर्दन लीला का ही दर्शन करते रहे। कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर यमुना में कूदने से लेकर नाग पत्नियों की स्तुति तथा श्रीकृष्ण का कालिय को यमुना छोड़कर जाने के आदेश तक का समस्त कथा-प्रसंग गोविन्द के अन्तर्नेत्रों के सामने घटित होता रहा।

गोविन्द को मूर्छित देख सभी परिवारीजन घबरा गये। विभिन्न प्रकार की चिकित्सा की जाने लगी किन्तु सब विफल रही। चौथे दिन उन्हें स्वत: होश आया। गोविन्द ने देखा उनके माता-पिता रो रहे हैं। वैद्य और जड़ी-बूटी वाले उनके पास खड़े हुए हैं। पुत्र को होश में आया देख माता-पिता आदि परिवारीजन आनन्दित हुए। बालक गोविन्द ने माँ से पूछा कि आप क्यों रो रही हैं? माँ ने कहा तुम मूर्छित हो गए थे इस कारण हम दु:खी हो रहे हैं। गोविन्द ने माँ को धीरे-धीरे सब कुछ बताया कि

उन्होंने किस तरह कालिय मर्दन लीला का प्रत्यक्ष अनुभव किया। उनकी माँ वैष्णव संस्कारों से युक्त थीं। घर में शालिग्राम भगवान् की सेवा-पूजा थी। पुत्र से यह अनुभव सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं और इसे उन्होंने गोविन्द पर भगवत् कृपा के रूप में देखा।

इस घटना के बाद से गोविन्द में व्यापक परिवर्तन दिखाई दिए। उनका वीतरागी चित्त संसार के प्रति पहले से और अधिक उपराम हो गया। यद्यपि वे ७ वर्ष के बालक ही थे तथापि अपनी अन्तर्प्रज्ञा से वे समझने लगे कि कालिय के फणों पर नृत्य करने वाला यह साँवरा सलोना गोप बालक ही उनका अन्तिम लक्ष्य है। अन्य सब कुछ पाकर भी यदि यह नहीं मिला तो महान् हानि है और यदि सब कुछ खोकर भी यह मिल जाय तो लाभ ही लाभ है। गोविन्द के भीतर उदय हुआ यह ज्ञान दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए अपने प्रकाश से उनके अन्तर्मन को आलोकित करने लगा।

ऐसी मन:स्थिति में उनका मन न तो अध्ययन में उतना लग पाता और न खेलकूद आदि अन्य कार्यों में। कालियमर्दन लीला दर्शन ने गोविन्द के मन पर जो छाप छोड़ी उसने उनके अन्त:स्थल में उथल-पुथल सी मचा दी। सात वर्ष की आयु में न तो उतनी विचारशीलता का विकास होता है और ना ही दृढ़तापूर्वक निश्चय करने की क्षमता का, फिर भी वे अनुभव करते थे कि जैसे उनसे कुछ खो गया है। धन-द्रव्य की हानि से जैसे मनुष्य को एक अभाव का बोध होता है कुछ ऐसी ही अनुभूति गोविन्द को भी हुआ करती थी। क्या खो गया है इसे वे बाल्यावस्था के कारण उतना स्पष्टतया जान नहीं पाते थे किन्तु कालिय मर्दन लीला का अनुभव कर उनकी भीतरी खोज जाने अनजाने में उसी ओर अग्रसर हो रही थी। इस घटना के पश्चात्

वे और अधिक अनमनस्क हो गये। इसी स्थिति में वे घर पर भी कब तक टिक पाते?

प्रथम गृहत्याग तथा वापिसी

अन्ततः एक दिन बिना किसी को बताए गोविन्द घर से निकल पड़े। उस समय उनकी आयु लगभग ९ वर्ष की थी। किधर जाना है? किस मार्ग से जाना है? इसकी कोई योजना बालक गोविन्द के मानस पटल पर नहीं थी।

गोविन्द के घर से चले जाने पर उनके माता-पिता तथा अन्य परिवारी जन बहुत दु:खी हुए और उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से उन्हें खोजना प्रारम्भ कर दिया। गोविन्द की जीवन-गाथा का यह अंश जिसमें ९ वर्ष की आयु में वे गृह त्याग कर चल पड़े थे इसका और अधिक विवरण उपलब्ध नहीं होता। इतना ही ज्ञात हो सका है कि कुछ ही दिन बाद परिवार के किसी निकट रिश्तेदार को वे कहीं दिखाई दिए और उन्हें घर ले आया गया।

पूर्व में हम कह चुके हैं कि गोविन्द की प्रारम्भिक शिक्षा चिन्जी-मकवाल में हुई थी। आगे की कुछ कक्षाओं की पढ़ाई उन्होंने जम्मू के पास पूरमण्डल नामक स्थल पर की थी। हमारा अनुमान है कि १२-१३ वर्ष की आयु तक उनका विद्या-अध्ययन चलता रहा और हो सकता है वे आठवीं कक्षा तक पढ़े हों। सात वर्ष की आयु में उनको श्रीकृष्ण की कालियदह लीला का अनुभव हुआ उसके दो वर्ष पश्चात् वे घर छोड़कर निकले थे। गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर पूरमण्डल के छात्रावास तक की सभी बातों को पूर्वापर क्रम से ब्योरेवार लिख पाना हमारे लिए संभव नहीं है क्योंकि इनकी कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती है।

उत्कट वैराग्य

वैराग्य और अनुराग परस्पर एक-दूसरे पर आधारित हैं। वैराग्य से अनुराग का पोषण होता है और उसकी वृद्धि होती है इसी प्रकार अनुराग से वैराग्य में दृढ़ता और गम्भीरता आती है। वैराग्य का अर्थ है सांसारिक भोग और ऐश्वर्य के प्रति घृणा का भाव। अनुराग से तात्पर्य है परम तत्त्व श्रीभगवान् में अथवा उनके किसी रूप विशेष में आसक्ति। ये दोनों परस्पर अवलम्बित होते हुए भी इनमें अनुराग ही साध्य है वैराग्य तो उसका एक प्रमुख साधन है। वैराग्य और अनुराग के सम्बल से साधक परमार्थ मार्ग में अग्रसर होता है। गोविन्द के जीवन-चरित्र का यह भाग भी इन दोनों की प्रमुखता को लिए हुए है। जगत् प्रपंच के प्रति उपरामता तो उनमें बाल्यकाल से ही थी। सात वर्ष की आयु में भगवान् श्रीकृष्ण ने उन पर कृपा की, नाग के फणों पर नृत्य करते हुए अपनी मनोहर झाँकी का आभास कराकर उनमें अपने प्रति प्रबल आकर्षण उत्पन्न कर दिया। इस प्रकार गोविन्द के अन्तर्मन में वैराग्य और अनुराग दोनों ने डेरा डाल लिया। अब उन के अनुराग से वैराग्य का और वैराग्य से अनुराग का निरन्तर वर्धन होने लगा। यह प्रक्रिया उनमें गुप्तरूप से निरन्तर जारी थी। गुप्तरूप से इसलिए कि अन्तर्जगत में होने वाली इस घटना का आभास पाना अन्य लोगों के लिए कठिन ही था। इसी प्रकार दिन बीतने लगे। काल भगवान् की निर्बाध गति से महीने और वर्ष व्यतीत होते चले गए।

गोविन्द अब १५ वर्ष के हो चुके थे। इस आयु में प्रवेश करने पर बालकों में भाँति-भाँति की महत्वाकांक्षाएँ जन्म ले लेती हैं। भविष्य के सुनहरे सपनों में वे खोने से लगते हैं। परन्तु गोविन्द की यह किशोरावस्था अन्य प्रकार की थी। जागतिक

उपलब्धियों को लेकर उनके मन में कोई इच्छा सक्रिय नहीं थी। संसार की इन वस्तुओं को या पद को प्राप्त करना है ऐसी कोई स्फुरणा उनके मन में नहीं थी। अपने भविष्य को लेकर वे चिन्तित अवश्य थे किन्तु इस चिन्ता का कारण पद-प्रतिष्ठा या द्रव्य नहीं था अपितु वे चिन्तित थे श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए। जहाँ कृष्ण प्राप्ति की प्रबल चाह है वहाँ अन्य इच्छाएँ कैसे ठहर सकती हैं। श्रीभगवान् ने गीता में कहा है—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।" अर्थात् जो मुझे जिस भाव से भजता है मैं भी उसे उसी भाव से भजता हूँ। गोविन्द के भीतर श्रीकृष्ण प्राप्ति को जो उत्कण्ठा उमड़ रही थी उससे मानों श्रीकृष्ण भी गोविन्द का आवाहन करने के लिए पधारे क्योंकि यही भगवान् की प्रतिज्ञा है- जो मुझे जैसा भजता है मैं भी उसे वैसे ही भजता हूँ। "गोविन्द ने अनुभव किया जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण स्वयं उनसे कह रहे हों कि गोविन्द! यदि मुझसे मिलना चाहते हो, सदैव के लिए मेरे बनना चाहते हो तो ये सब नाते-रिश्ते छोड़कर मेरे साथ चल पड़ो।" श्रीकृष्ण का यह बुलावा गोविन्द प्रत्यक्ष सुन रहे थे। वे सोचने लगे कि सन्ध्या होते ही मैं अपने प्यारे के संग सबकुछ त्यागकर निकल पड़ूँगा। वैसे भी इस असार संसार की किसी वस्तु या व्यक्ति में गोविन्द का कोई राग शेष नहीं बचा था। ब्रजराज की रूप माधुरी में जिसका मन फँसा हो उसके लिए यह जगत् सर्वथा शून्य ही है, इसमें न कुछ सार है ना ही कोई आकर्षण है, कुछ है तो केवल धोखा ही धोखा। संसार अपनी झूठी मोहकता दिखाकर मनुष्य को फँसा लेता है। इसमें फँसा हुआ मनुष्य अपने जीवन-जन्म को उस पर न्यौछावर कर देता है, इस आशा से कि यह संसार हमें सुख प्रदान करेगा। किन्तु परिणाम उसकी आशा के विपरीत ही होता है। जगत् में सुख नहीं

है केवल सुख की भ्रान्ति है, यह बात समझने में उसे बहुत देर हो जाती है और अन्ततः अपने निष्फल जीवन को बिताकर वह यहाँ से चला जाता है। गोविन्द संसार के इस धोखे से सावधान थे। उनका लक्ष्य तो नन्दनन्दन श्रीकृष्ण थे, जिन्होंने खेल ही खेल में कालियनाग को नाथ कर उसके फणों पर नृत्य किया। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे व्याकुल बने रहते। उन्हें खाने, पीने, सोने आदि में कोई सुख प्राप्त नहीं होता। परिवारीजनों के प्रति उनमें कोई ममता शेष नहीं थी। इसके विपरीत परिवारीजन उन्हें लक्ष्य प्राप्ति की महान् बाधा ही प्रतीत हो रहे थे।

ऐसी मनोदशा में वे भला घर में भी कैसे रह पाते। अन्ततः गोविन्द ने घर से निकलने का मन ही मन निश्चय कर लिया। वे बहुत सी बातों में अन्य मित्रों से अलग जरूर दिखाई देते थे किन्तु ऐसा अनुमान किसी को भी नहीं था कि गोविन्द एक दिन सब कुछ छोड़कर भगवत् प्राप्ति की राह पर अकेले निकल पड़ेंगे। संसारी लोगों को क्या पता कि कृष्ण मिलन की लगन ही ऐसी होती है। श्रीकृष्ण रस का स्वाद ही ऐसा विलक्षण होता है कि जिसे वह एक बार चखने को मिल जाय वह घर कुटुम्ब त्यागकर पक्षियों की तरह कभी कहीं, कभी कहीं बसेरा करता हुआ भिक्षा माँगकर जीवन यापन करने लगता है। श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध भ्रमर गीत में गोपियाँ कह रही हैं—

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति॥

१०/४७/१८

गोपियाँ कह रही हैं—श्रीकृष्ण की लीला कानों को अमृत के समान लगती है। उस लीलामृत का एक कण भी जो चख लेता है उसके सांसारिक दुःख-सुख और रागादि द्वन्द नष्ट हो जाते हैं। उस अमृत की ऐसी मादकता उसको चढ़ जाती है कि वह अपनी घर-गृहस्थी छोड़कर अकिंचन हो जाता है और पक्षियों की तरह चुन-चुनकर अर्थात् यहाँ-वहाँ से भीखमाँग कर अपना निर्वाह करने लगता है। कहने का आशय यह है कि श्रीकृष्ण रस के एक कण का स्वाद चख लेने पर वह व्यक्ति घर-परिवार के किसी भी कार्य का नहीं रहता और दीन दुनिया से कोई मतलब नहीं रखता।

सदैव के लिए गृहत्याग

आज गोविन्द की भी कुछ ऐसी ही दशा थी। नन्दनन्दन की लीला रस का एक बिन्दु चख लेने पर वे भी प्रेम-रस के भिक्षुओं के पथ पर निकल पड़े। चिन्जी-मकवाल का वह मनोरम पर्वतीय क्षेत्र, माता-पिता का लाड़-दुलार, भाई-बहनों की ममता, सखाओं का साहचर्य इनमें से कोई भी उन्हें रोक न सका। घर से निकलते समय गोविन्द ने आवश्यकता का कुछ सामान और थोड़े पैसे साथ में ले लिए। लोगों की दृष्टि से बचते हुए उस समय उपलब्ध साधनों से वे आगे की यात्रा करने के लिए रेलवे स्टेशन की ओर चल पड़े।

गृहत्याग के इस प्रसंग में गोविन्द की आयु १५ वर्ष कही गई है। यह बात यद्यपि अनुसंधान करके ही लिखी गई है तथापि इसमें केवल इतना ही अंतर संभव है कि उस समय उनकी आयु १५ के स्थान पर १६ वर्ष की हो, इससे ज्यादा अन्तर की संभावना नहीं है। गोविन्द का जन्म सन् १९२४ में हुआ अतः

गृहत्याग के समय ईसवी सन् १९३९ या १९४० निश्चित होता है। इस अवधि में हमारा भारत देश अंग्रेजों का गुलाम था। उस समय चिन्जी-मकवाल से निकटतम रेलवे स्टेशन कौन सा रहा होगा यह तो रेलवे विभाग के रिकार्ड को देखकर ही जाना जा सकता है। हमारा अनुमान है कि उन्होंने जिला मुख्यालय कठुआ से ही रेलयात्रा प्रारम्भ की होगी।

श्रीकृष्ण प्राप्ति ही गृहत्याग का फल है। यह दृढ़ निश्चय होते हुए भी गोविन्द के भीतर यात्रा की किसी निश्चित दिशा की अवधारणा नहीं थी। फिलहाल वे शीघ्र ही इस क्षेत्र से दूर चले जाना चाहते थे इसीलिए रेलवे स्टेशन पर प्रथम उपलब्ध गाड़ी में वे चढ़ गए। वह गाड़ी लाहौर जा रही थी। कठुआ से लाहौर की दूरी लगभग १५० किलोमीटर है। रेलगाड़ी अब कठुआ स्टेशन छोड़कर लाहौर की ओर दौड़ने लगी।

जगत् की प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना ईश्वर की इच्छा से ही घटित होती है। भौतिक दृष्टि से भले ही हम यहाँ होने वाली घटनाओं का मर्म न जान पाएँ परन्तु ईश्वरीय विधान से होने वाली प्रत्येक घटना के पीछे उन दयामय प्रभु की अहैतुकी कृपा ही छिपी हुई है। किसी घटना का स्थूल रूप चाहे जितना भी सुखद या भयावह हो, है वह उन विश्वसृष्टा करुणा-सागर का मंगलमय विधान ही। यह तथ्य सभी जीवों पर समान रूप से लागू होता है अर्थात् प्राणीमात्र के जीवन में होने वाली प्रत्येक हलचल के पीछे उस मुरली मनोहर का ही गूढ़ अनुग्रह है, आवश्यकता है केवल उस अनुग्रह को पहचानने की व अनुभव करने की। इस यात्रा में गोविन्द के साथ भी एक ऐसी ही घटना घट गई जिसका बाह्य स्वरूप तो भय उत्पन्न करने वाला था परन्तु वस्तुतः वह ब्रजराज कुँवर की एक कृपामयी लीला ही थी।

डाकुओं का आक्रमण

रेलगाड़ी जब शहदरा स्टेशन पहुँची तो उसमें डाकू आ गए। शहदरा लाहौर के बिल्कुल निकट है। रावी नदी के एक तट पर शहदरा नामक बस्ती है और दूसरे तट पर लाहौर नगर है। लाहौर बड़ा शहर है शहदरा उसके अन्तर्गत आने वाला एक उप-नगर है। गाड़ी में डाकुओं के आ जाने से अफरा-तफरी मच गई। उन्होंने कई यात्रियों को पीटा और उनका सामान छीन लिया। गोविन्द अभी छोटे ही थे उन्होंने ऐसी घटना कभी देखी-सुनी नहीं थी। पहली बार वे देहाती अंचल से दूर यहाँ आए थे। वह अंग्रेजों का शासनकाल था। यद्यपि सब ओर कड़ाई थी फिर भी अराजक तत्त्व तो मौका पाकर अपना कार्य कर ही लेते हैं। लूटमार की यह घटना गोविन्द कुछ दूरी से देख रहे थे। थोड़ी ही देर में वहाँ पुलिस दल आ गया, जिससे कुछ डाकू पकड़े गए कुछ भाग गए।

यह घटना देखकर गोविन्द बहुत भयभीत हो गए। उन्होंने विचार किया कि पास में पैसा व सामान रहने से ही चोर-डाकुओं का भय होता है। अतः भय का मूल कारण यह परिग्रह ही है। ऐसा विचार कर उन्होंने अपना सामान व रुपये उसी समय वहाँ उपस्थित जरूरतमंद लोगों में बाँट दिए। यहाँ तक कि अपने तन के कपड़े भी उतार कर दीन-दुखियों को दे दिए। गोविन्द के पास हरे रंग का एक बड़ा रूमाल था जो प्रायः एक छोटे अंगोछे के बराबर ही था। उसे ही उन्होंने कटि वस्त्र के रूप में बाँध लिया। अब उनके पास संग्रह के नाम पर वह कटि से बँधा अँगोछानुमा रूमाल ही था। इस प्रकार वे सर्वथा अपरिग्रही हो चुके थे। वस्तुतः उन्हें इस प्रकार से परिग्रह शून्य अर्थात् अन्य

आश्रय से रहित कर देना उस नट नागर की लीला ही थी। जो इस घटना के रूप में गोविन्द के साथ घटित हुई।

श्रीभगवान् का अनन्य आश्रय ही परमार्थ पथ का मूल है। अनन्य से तात्पर्य है किसी अन्य व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति का आश्रय शेष न रहे। सर्वतोभावेन पूर्ण रूप से अपने आपको उन पर निर्भर बना देना। साधक जब अनन्य आश्रय की इस कसौटी पर खरा उतरता है उसी समय से भगवत् कृपा भी विशेष रूप से उसकी बाँह थाम लेती है। गोविन्द भगवत् प्राप्ति के लिए सत्यता के साथ घर छोड़कर निकले थे। साथ में सामान और पैसा था वह भी उन्होंने शहदरा स्टेशन पर बाँट दिया। किन्तु घटना क्रम यहीं नहीं थमा, इसके बाद इसमें एक और मोड़ आया।

शहदरा प्लेट फार्म पर गाड़ी में डाकुओं के आ जाने से पुलिस और रेलवे अधिकारी वहाँ उपस्थित थे और स्थिति का जायजा ले रहे थे। तभी भीड़ में एक ओर खड़े गोविन्द पर अचानक टी.टी. की नजर पड़ी। १५ वर्ष का एक अल्प वयस्क किशोर केवल नाम मात्र का कटि वस्त्र पहने, यह दृश्य टी.टी. को विस्मय में डाल रहा था। उसे यह प्रतीत हुआ कि इस लड़के से पूछताछ करनी चाहिए। यह कौन है? किसके साथ है? और कहाँ जा रहा है? वह गोविन्द के पास आया और उन्हें प्लेट फार्म के बाहरी हिस्से में स्थित एक कमरे में ले गया।

वहाँ टी.टी. तथा कुछ अन्य सुरक्षा अधिकारियों ने गोविन्द से पूछना प्रारम्भ किया। तुम कौन हो? कहाँ से आए हो? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? गोविन्द उन्हें इन प्रश्नों का क्या उत्तर देते, माता-पिता का परिचय देने पर तो वे अधिकारी चिन्जी-मकवाल टेलीग्राम भेजकर उन्हें बुला लेते। गोविन्द असमंजस में थे और अपने आपको विषम परिस्थिति में घिरा अनुभव कर रहे थे।

घटना क्रमांक ३

गोविन्द पर ठाकुर जी की भक्तवत्सलता

भगवत् कृपा से गोविन्द के अन्य सभी आश्रय छूट चुके थे अब वे केवल उन्हीं के भरोसे थे जिन्हें ढूँढने घर से निकले थे। जब भक्त ने अपने आपको उनके हवाले कर दिया है तो वे भक्तवत्सल भी उसे अवलम्बन दिए बिना कैसे रह सकते थे। जब कोई मनुष्य दूसरे का सहयोग करता है तो उसमें देरी, दूरी तथा सीमित सामर्थ्य के कारण अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। किन्तु श्रीभगवान् सब जगह हैं, सब समय हैं तथा सर्वसमर्थ हैं इसीलिए उनके कार्य में न दूरी है, न देरी है और ना ही सामर्थ्य जनित कोई न्यूनता है। गोविन्द को उस संकट से निकालने के लिए उन्हें न तो दूर से आना था और न देरी करके आना था। जिस कमरे में अधिकारीगण पूछताछ कर रहे थे उसके बाहर उसी समय एक कार आकर रुकी। उस कार में से एक पंजाबी व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ उतरे और तत्काल उस कमरे में आकर बोले "अरे यह तो हमारा लड़का है। हम इसे कब से ढूँढ रहे हैं। ऐसा कहकर उन्होंने गोविन्द का हाथ पकड़ लिया और चलो-चलो कहते हुए उसे खींचकर मोटरकार तक ले आये। अधिकारियों से बिना वार्ता किए वे गोविन्द को कार में बिठाकर वहाँ से रवाना हो गये। यह सब इतना आकस्मिक और शीघ्र हुआ कि उन अधिकारियों को कहने-सुनने या सोचने का अवसर ही नहीं मिला। पंजाबी दंपति को गोविन्द के माता-पिता मानने में उन्हें कोई शक भी नहीं हुआ। घर से भागा हुआ लड़का अपने माता-पिता के साथ पुनः घर चला गया यह उनके लिए संतोष की बात थी।

वे पंजाबी दंपति गोविन्द को अपने घर ले गए। उनका घर बहुत बड़ा तथा वैभवशाली था। वे कौन थे? शहदरा प्लेट

फार्म पर कैसे पहुँचे? गोविन्द को अपने साथ क्यों ले गए? इन प्रश्नों का उत्तर खोजने का कोई माध्यम नहीं है। उनका बाह्य स्थूल परिचय भले ही अज्ञात हो किन्तु इस घटना का आन्तरिक सूक्ष्म परिचय श्रीठाकुर जी की भक्तवत्सलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

पंजाबी दम्पति ने गोविन्द के लिए प्रथम तो कपड़े आदि की व्यवस्था की फिर उन्हें भोजन कराके निवास के लिए एक अलग कक्ष दे दिया। उनके घर में रूपा नाम का एक नौकर था जिसे गोविन्द की देख-रेख के लिए नियुक्त किया गया। गोविन्द का हाव-भाव व व्यवहार यह जता रहा था कि वे यहाँ रुकना नहीं चाहते हैं। वे सदा ही चिन्तित और विचारों में डूबे हुए दिखाई देते थे। किसी से कोई व्यवहार नहीं करते और पूछी गई बात का हाँ या नहीं में ही उत्तर देते थे। वे पंजाबी दम्पति गोविन्द का मन लगाने के लिए भाँति-भाँति का प्रयास करते थे किन्तु उसका कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता। एक दिन वे उन्हें सरकस दिखाने भी ले गए। गोविन्द उनके साथ चले तो गए किन्तु सरकस के कौतूहल उन्हें किंचित् भी लुभा न पाए। फिर एक दिन वे गोविन्द को सिनेमा दिखाने भी ले गये परन्तु इसका भी उनकी अन्तर्मुखता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अनेक प्रकार के कौतूहल वाले दृश्यों से परिपूर्ण यह सृष्टि भी तो एक सरकस अथवा सिनेमा जैसी ही है। श्रीभगवान् ने अपने लीला-विनोद के लिए इसकी रचना की है। इस विचित्र सरकस के रचयिता ने जिसका मन अपनी ओर खींच रखा हो वह भला इन बनावटी सरकस और सिनेमा में कैसे लुभा सकता है?

इसके भी प्रमाण मिलते हैं कि उन पंजाबी दंपति ने पण्डितों को बुलाकर गोविन्द का नामकरण संस्कार भी करवाया।

इस प्रसंग से अनेक प्रकार के अनुमान खड़े होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गोविन्द जितने दिन उनके घर रहे उन्होंने अपने परिचय को सर्वथा गुप्त रखा। वे कौन हैं? कहाँ से आए हैं? तथा उनके माता-पिता, जाति-वर्ण का क्या परिचय है, इसे उन्होंने व्यक्त नहीं किया। यहाँ तक कि अपना नाम भी नहीं बताया। ऐसी स्थिति में संभव है कि पंजाबी दंपति ने यह मान लिया हो कि यह कोई आश्रय हीन बालक है, जिसका अभी तक विधिवत् नामकरण भी नहीं हुआ इसलिए उन्होंने पण्डितों को बुलाकर गोविन्द का नामकरण कराया।

गोविन्द का यह आचरण शास्त्र की आज्ञा और सन्त परम्परा से सर्वथा अनुमोदित है। विद्वान् होता हुआ भी अविद्वान् की तरह आचरण करे यह शास्त्राज्ञा है। इसी के अनुरूप प्राचीन सन्त-महानुभावों ने भी जीवनशैली अपनाई थी। भीतर से सब जानता हुआ भी बाहर से अज्ञानी की भाँति दिखाई दे। सतत सावधान होता हुआ भी असावधान की भाँति आचरण करे यह शास्त्र का निर्देश है। गोविन्द ने इसी युक्ति का आश्रय लेकर उन पंजाबी दंपति के यहाँ समय व्यतीत किया। उनकी दृष्टि केवल अपने लक्ष्य प्यारे कन्हैया पर टिकी हुई थी। अन्तर्मन में वे आर्तभाव से उन्हें दिन-रात पुकारा करते थे। हे नन्दलाल! हे गोपाल! हे कालीनाग नथैया! यहाँ से मुझे कब निकालोगे। मेरा लक्ष्य तो केवल तुम ही हो फिर मैं यहाँ क्यों पड़ा हुआ हूँ? मुझे केवल उसी पथ पर चलना है जो तुम तक पहुँचा देता है। ये संसार के ऐश्वर्य और भोग इनसे मेरा क्या प्रयोजन? हे नाथ! अब शीघ्र ही मुझे इस अंधेरे कुएँ से निकालो।

जिन पण्डितों को गोविन्द के नामकरण के लिए बुलाया गया था उनसे उन पंजाबी दम्पति ने कहा कि आप लोग इस

बालक को समझाइये कि वह यहाँ हमारे पास ही रुक जाए। उन पण्डितों ने जब गोविन्द को रुकने के लिए कहा तो वे फूट-फूट कर रोने लगे। वे तो वहाँ से निकलने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे, फिर भला उन्हें रुकने की बात कैसे सुहाती?

गोविन्द की जीवन गाथा में भगवत्-प्रेरणा से पंजाबी दम्पति का प्रवेश उन्हें शहदरा प्लेट फार्म वाली विपत्ति से निकालने के लिए हुआ था। कुछ दिन वहाँ रुकने से गोविन्द के वैराग्य में और अधिक दृढ़ता ही आई। जैसे अग्नि में तपकर स्वर्ण और अधिक कान्तिमान हो जाता है, ऐसे ही सांसारिक प्रलोभनों की कसौटी पर कस कर गोविन्द का वैराग्य और अधिक दृढ़ हो गया।

ऐसी भी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं कि वे पंजाबी दम्पति नि:संतान थे। गोविन्द देखने में सुन्दर तथा यज्ञोपवीत आदि चिह्नों से उच्च कुलीन दिखाई देते थे। स्वभाव में शान्ति और शालीनता तो उनमें भरी हुई थी। अतएव वे पंजाबी दम्पति उन्हें अपना दत्तक पुत्र बनाना चाहते थे। गोविन्द की देख-रेख के लिए नियुक्त रूपा नामक अपने नौकर के द्वारा उन्होंने अपना यह आशय गोविन्द को स्पष्ट भी कर दिया था। रूपा से उन्होंने कहलवाया था कि यहाँ का सारा ऐश्वर्य तुम्हारा हो जाएगा अत: तुम अपनी मनोदशा को सुधार कर यहाँ चित्त लगाने का प्रयास करो। परन्तु गोविन्द की मनोदशा कैसे सुधरती? नन्दलाल की रूप छटा, उनके दिव्य गुण तथा अद्भुत महिमा ने मिलकर गोविन्द के मन पर काबू कर रखा था। वे सोने के बने इस पिंजरे में फँसना नहीं चाहते थे। उन्हें तलाश थी वहाँ से निकलने के अवसर की। भगवत् कृपा से उन्हें एक दिन वह अवसर प्राप्त हो ही गया।

इस प्रसंग से अनेक प्रकार के अनुमान खड़े होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गोविन्द जितने दिन उनके घर रहे उन्होंने अपने परिचय को सर्वथा गुप्त रखा। वे कौन हैं? कहाँ से आए हैं? तथा उनके माता-पिता, जाति-वर्ण का क्या परिचय है, इसे उन्होंने व्यक्त नहीं किया। यहाँ तक कि अपना नाम भी नहीं बताया। ऐसी स्थिति में संभव है कि पंजाबी दंपति ने यह मान लिया हो कि यह कोई आश्रय हीन बालक है, जिसका अभी तक विधिवत् नामकरण भी नहीं हुआ इसलिए उन्होंने पण्डितों को बुलाकर गोविन्द का नामकरण कराया।

गोविन्द का यह आचरण शास्त्र की आज्ञा और सन्त परम्परा से सर्वथा अनुमोदित है। विद्वान् होता हुआ भी अविद्वान् की तरह आचरण करे यह शास्त्राज्ञा है। इसी के अनुरूप प्राचीन सन्त-महानुभावों ने भी जीवनशैली अपनाई थी। भीतर से सब जानता हुआ भी बाहर से अज्ञानी की भाँति दिखाई दे। सतत सावधान होता हुआ भी असावधान की भाँति आचरण करे यह शास्त्र का निर्देश है। गोविन्द ने इसी युक्ति का आश्रय लेकर उन पंजाबी दंपति के यहाँ समय व्यतीत किया। उनकी दृष्टि केवल अपने लक्ष्य प्यारे कन्हैया पर टिकी हुई थी। अन्तर्मन में वे आर्तभाव से उन्हें दिन-रात पुकारा करते थे। हे नन्दलाल! हे गोपाल! हे कालीनाग नथैया! यहाँ से मुझे कब निकालोगे। मेरा लक्ष्य तो केवल तुम ही हो फिर मैं यहाँ क्यों पड़ा हुआ हूँ? मुझे केवल उसी पथ पर चलना है जो तुम तक पहुँचा देता है। ये संसार के ऐश्वर्य और भोग इनसे मेरा क्या प्रयोजन? हे नाथ! अब शीघ्र ही मुझे इस अंधेरे कुएँ से निकालो।

जिन पण्डितों को गोविन्द के नामकरण के लिए बुलाया गया था उनसे उन पंजाबी दम्पति ने कहा कि आप लोग इस

बालक को समझाइये कि वह यहाँ हमारे पास ही रुक जाए। उन पण्डितों ने जब गोविन्द को रुकने के लिए कहा तो वे फूट-फूट कर रोने लगे। वे तो वहाँ से निकलने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे, फिर भला उन्हें रुकने की बात कैसे सुहाती?

गोविन्द की जीवन गाथा में भगवत्-प्रेरणा से पंजाबी दम्पति का प्रवेश उन्हें शहदरा प्लेट फार्म वाली विपत्ति से निकालने के लिए हुआ था। कुछ दिन वहाँ रुकने से गोविन्द के वैराग्य में और अधिक दृढ़ता ही आई। जैसे अग्नि में तपकर स्वर्ण और अधिक कान्तिमान हो जाता है, ऐसे ही सांसारिक प्रलोभनों की कसौटी पर कस कर गोविन्द का वैराग्य और अधिक दृढ़ हो गया।

ऐसी भी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं कि वे पंजाबी दम्पति नि:संतान थे। गोविन्द देखने में सुन्दर तथा यज्ञोपवीत आदि चिह्नों से उच्च कुलीन दिखाई देते थे। स्वभाव में शान्ति और शालीनता तो उनमें भरी हुई थी। अतएव वे पंजाबी दम्पति उन्हें अपना दत्तक पुत्र बनाना चाहते थे। गोविन्द की देख-रेख के लिए नियुक्त रूपा नामक अपने नौकर के द्वारा उन्होंने अपना यह आशय गोविन्द को स्पष्ट भी कर दिया था। रूपा से उन्होंने कहलवाया था कि यहाँ का सारा ऐश्वर्य तुम्हारा हो जाएगा अत: तुम अपनी मनोदशा को सुधार कर यहाँ चित्त लगाने का प्रयास करो। परन्तु गोविन्द की मनोदशा कैसे सुधरती? नन्दलाल की रूप छटा, उनके दिव्य गुण तथा अद्भुत महिमा ने मिलकर गोविन्द के मन पर काबू कर रखा था। वे सोने के बने इस पिंजरे में फँसना नहीं चाहते थे। उन्हें तलाश थी वहाँ से निकलने के अवसर की। भगवत् कृपा से उन्हें एक दिन वह अवसर प्राप्त हो ही गया।

कंचन-कीर्ति से छुटकारा

एक रात्रि में जबकि चारों ओर निस्तब्धता थी, वे पंजाबी दम्पति और उनके नौकर-चाकर सब गहरी नींद में सो रहे थे। रात्रि का एक बजा था किन्तु गोविन्द को नींद कहाँ? उनका हृदय तो अपने प्यारे से मिलने के लिए व्याकुल था। अवसर देखकर गोविन्द ने वहाँ से निकलना ही उचित समझा। वे अपनी शैया से चुपचाप उठे और दबे पाँव बिना कुछ आहट किये उस घर से बाहर निकल गए।

बाहर भी चारों ओर गहन रात्रि की निस्तब्धता थी। आकाश अंधेरे की काली चादर से ढ़का हुआ था। सड़क मार्ग जनशून्य था। चारों ओर गम्भीर नीरवता थी। गोविन्द भीतर से सजग थे। वे जानते थे कि शीघ्र से शीघ्र इस बस्ती से बाहर चले जाने में ही उनकी भलाई है और इसका सर्वश्रेष्ठ उपाय यह है कि प्लेट फार्म पर जो भी पहली रेलगाड़ी मिले उसी के द्वारा ही यात्रा की जाय। पैदल चलते हुए गोविन्द जल्दी ही प्लेट फार्म पर आ गए। ऐसा अनुमान होता है कि उन पंजाबी दम्पति के घर से रेलवे-स्टेशन निकट ही था। अत: गोविन्द को किसी से मार्ग पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ी वे शीघ्र ही वहाँ आ गए।

संयोग की बात थी कि गोविन्द को बिना अधिक प्रतीक्षा किए हरिद्वार जाने वाली रेलगाड़ी मिल गई। भगवत् प्रेरणा से उन्होंने भी और कहीं न जाकर हरिद्वार जाने का ही निश्चय किया। गोविन्द की इस हरिद्वार यात्रा से उनके जीवन की आगे की कई घटनाओं के तार जुड़े हुए हैं।

ईसवीं सन् १९४० में हरिद्वार कम आबादी वाली छोटी सी बस्ती थी। आज जो उसका विशाल नगर का स्वरूप है ऐसा पहले नहीं था। संभवत: उस समय हरिद्वार रेलवे स्टेशन से मुख्य

बस्ती भी कुछ दूर ही थी। गोविन्द रेलयात्रा के द्वारा हरिद्वार रेलवे स्टेशन पर आ गए। बाहर निकल कर उन्होंने लोगों से पूछा हरिद्वार कहाँ है? किसी ने हाथ के इशारे से तथा किसी ने कुछ कह कर उन्हें हरिद्वार की दिशा का संकेत कर दिया। इसी बीच एक संन्यासी महात्मा से पूछने पर उन्होंने बताया कि पहाड़ों के बीच में गंगा के किनारे चले जाओ आगे हरिद्वार है। महात्मा जी की इन बातों की गुत्थी सुलझाना कठिन है क्योंकि वहाँ रेलवे-स्टेशन के पास कोई पहाड़ नहीं है। हमारे पास जो लिखित जानकारी है वह इतनी ही है कि हरिद्वार का पता पूछने पर उन महात्मा जी ने पहाड़ों के बीच गंगा के किनारे चलने की प्रेरणा प्रदान की। संभव है कि गोविन्द ने कुछ और भी पूछा हो, उसके उत्तर में महात्मा जी ने इस प्रकार मार्ग बतलाया हो। जो भी हो यह श्रीभगवान् का मंगलमय विधान ही था अथवा यह कहें कि उन सन्त के रूप में श्रीभगवान् ही थे, जिन्होंने कृपापूर्वक गोविन्द का मार्गदर्शन किया। क्योंकि उसी मार्ग पर आगे चलकर हिमालय की पर्वत श्रेणियों में अध्यात्म जगत् के कुछ रहस्यमय योगी गोविन्द की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भगवान् का मंगलमय विधान

महात्माजी के निर्देशानुसार गोविन्द उस दिशा में चलने लगे। आगे जाकर उन्हें पतितपावनी भागीरथी गंगा के दर्शन हुए जो दोनों ओर की पहाड़ियों के बीच से बह रही थी। गोविन्द अब गंगा के किनारे का कच्चा रास्ता पकड़कर चलने लगे। उन्हें केवल एक ही धुन थी ब्रजजन जीवन कृष्ण कन्हैया से मिलने की। इन्हीं विचारों में खोए हुए वे किसी अव्यक्त प्रेरणा से उस दिशा की ओर चलते रहे। जब संध्याकाल निकट आ गया तो वे

गंगा के किनारे एक चट्टान पर बैठ गए। वहाँ से उन्होंने देखा कि जंगल में रहने वाले हाथी एकत्रित होकर कुछ दूरी पर गंगाजल पी रहें हैं। वहाँ आस-पास कुछ बेल के भी वृक्ष थे। गोविन्द ने दो पके हुए बेल तोड़कर उन्हें भगवान् को निवेदित करके प्रसाद पाया। उस रात्रि में वे उसी चट्टान पर सो गए। प्रात:काल देहकृत्य से निवृत्त होकर उन्होंने गंगास्नान किया और उसी चट्टान पर बैठ गए जो अव्यक्त प्रेरणा उन्हें यहाँ तक ले आई थी वह अब और आगे चलने के लिए प्रेरित नहीं कर रही थी। **उर प्रेरक रघुवंश विभूषण** अन्तर्यामी भगवान् ही सबके उर प्रेरक हैं। उनके मंगलमय विधान से गोविन्द ने यात्रा स्थगित कर उसी चट्टान पर रहने का निश्चय किया।

बड़ा ही मनोरम दृश्य था, पर्वतों के बीच से कलकल निनाद करती हुई लोकपावनी गंगा का पुण्य प्रवाह, दोनों तटों पर अनेक भाँति के फल-फूलों से लदे हुए ऊँचे-नीचे वृक्ष और उन वृक्षों पर अपनी-अपनी बोली में चहकते हुए असंख्य पक्षी। कभी-कभी गंगाजल का पान करने के लिए वन प्रदेश से आती हुई मृगमालायें दृष्टिगोचर हो जाती और कभी मतवाले हाथियों का समूह जलकेलि करने के लिए चिंघाड़ते हुए वहाँ आ जाता। मनुष्य के नाम पर कदाचित् ही वहाँ कोई दिखाई देता। प्रकृति की इस मनोरम गोद में विष्णुपदी गंगा के तट पर गोविन्द का समय व्यतीत होने लगा। कृष्ण मिलन की तड़प हृदय में लिए हुए रोते-सिसकते उनके दिन व्यतीत होने लगे। भूख लगने पर वृक्षों के फल और प्यास लगने पर पवित्र गंगाजल यही उनकी जीविका थी। वैसे ज्यों-ज्यों कृष्ण प्रेम का रोग उर अन्तर में बढ़ता चला जाता है त्यों-त्यों क्षुधा-पिपासा भी कम होती चली जाती है। गोविन्द का भी यही हाल था। अपने प्यारे की याद में

सदा खोये रहने से उन्हें भूख-प्यास का भान कम ही होता था। इस प्रकार एक-एक करके पाँच दिन व्यतीत हो गए। अन्तत: पाँचवें दिन की संध्या बेला में गोविन्द के साथ वह घटना घटी जिसके लिए ईश्वरीय प्रेरणा उन्हें इस एकान्त दुर्गम स्थल पर ले आयी थी।

सुमेरु श्रीकृष्ण का स्वरूप

सुमेरु (हिमालय) पर्वत को श्रीभगवान् ने भगवद्गीता में अपनी विभूति बतलायी है—

मेरु: शिखरिणामहम्॥

गीता अध्याय १०/२३

हिमालय का महत्त्व राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक समृद्धि, पर्यावरण संतुलन तथा मानवोपयोगी औषधियों के एक अनुपम भण्डार के रूप में आँका जाता है।

ये सभी दृष्टियाँ यथा तथ्यों पर आधारित हैं और हिमालय पर्वत के उपकारों को हृदयंगम कराने वाली हैं किन्तु इनके साथ ही हिमालय की आध्यात्मिक सम्पदा और उससे होने वाले बहुमूल्य लाभों का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। यह पर्वत प्राचीनकाल से ही ऋषियों, मुनियों, योगियों और साधकों का ध्यान अपनी ओर खींचता रहा है। हजारों किलोमीटर तक फैली इसकी विस्तृत पर्वत शृंखलाएँ, गगनचुम्बी उतुंग शिखर, गंगा-जमुना-सरस्वती जैसी लोक पावनी नदियों के कल-कल निनाद से गुँजायमान पर्वत घाटियाँ तथा निविड़ एकान्त में स्थित पर्वतराज की मनोरम गुफाएँ जो जन कोलाहल से सदैव बची रहती हैं, हिमालय के ये सभी प्रदेश परमार्थ मार्ग पर चलने वाले साधकों के आकर्षण के विषय रहे हैं। बद्री-केदार जैसे जन-आस्था के अनेक तीर्थों का दर्शन करने के लिए बड़ी संख्या में श्रद्धालु दुर्गम यात्रा करके

यहाँ पहुँचते हैं। इनके अतिरिक्त पर्वतराज हिमालय का [illegible] और रहस्यमय आकर्षण है जिसकी चर्चा साधकों को चौंका कर देती है वह रहस्य है इसमें निवास करने वाले सिद्ध योगियों की उपस्थिति।

हिमालय पर्वतमाला में साधनारत योगियों का वर्णन अनेक प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। उनके अनुसार ये योगी वहाँ सैंकड़ों हजारों वर्षों से निवास कर रहे हैं। न इन्हें कोई रोग स्पर्श कर सकता है और न वृद्धावस्था। योगजनित सिद्धियों की ऐसी अपूर्व शक्ति इनके पास है कि ये संकल्प मात्र से कुछ ही क्षणों में कहीं भी पहुँच सकते हैं। इनकी इच्छा के विरुद्ध इन्हें कोई देख भी नहीं सकता। कहीं ये अपने मानवीय आकार में प्रकट होते हैं तो कहीं निराकार रूप में ही अवस्थित होते हैं। इनमें से कई योगी ऐसे भी हैं जो बहुत प्राचीन होते हुए भी सदैव १८-२० वर्ष के ही दिखाई पड़ते हैं और कुछ योगी ऐसे भी हैं जिनका लम्बा कद, लम्बी दाढ़ी, धरती का स्पर्श करती हुई जटाएँ और नेत्रों को ढक रहे उनके भ्रू-केश उनकी परम प्राचीनता का परिचय देते हैं।

पिछले १५० वर्षों के भीतर ऐसे अनेक सन्त-साधक हुए हैं जिन्होंने हिमालय जाकर इन योगियों से सम्पर्क साधा है, उनके दर्शन किए हैं, वार्तालाप किया है और उनसे लाभ उठाया है। ऐसा नहीं है कि इस अवधि के पहले इन योगियों से सम्पर्क करने वाले साधक न हुए हों। हिमालय के रहस्यमय प्रदेशों में सिद्ध योगियों की यह परम्परा सदैव से रही है और साधकगण उनसे सम्पर्क स्थापित कर लाभान्वित भी होते रहे हैं किन्तु इधर १५० वर्षों के लगभग अध्यात्म जगत् में इन योगियों की चर्चा प्रचुरता से होने लगी है। जिन भाग्यवान साधकों ने हिमालय

जाकर इन योगियों का साक्षात्कार किया और उनसे योग-मार्ग के रहस्य प्राप्त किए उनकी एक लम्बी सूची है जिसका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है। इन साधकों में से कुछ ने अपने अनुभवों को लेखबद्ध भी किया, जो प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से जितना साहित्य हमारे देखने-सुनने में आया उसके सार संक्षेप को ही आधार बनाकर यहाँ पर यथामति योग-सिद्धों के बारे में कुछ लिखा जा रहा है।

सिद्ध योगियों का एक वर्ग कैलाश मानसरोवर के पीछे की ओर तिब्बत सीमा में स्थित पर्वत श्रेणियों में विद्यमान है। वहाँ पर्वतों के बीच में शंगरीला नामक विस्तृत घाटी है। इस घाटी में ज्ञानगंज नामक एक विशाल सिद्धाश्रम है इसी में सैंकड़ों की संख्या में सिद्ध योगी निवास करते हैं। ज्ञानगंज योग का एक वृहद विश्व विद्यालय जैसा है जिसमें अनेक अध्यापक हैं तथा अनेक योग-साधक छात्र हैं। इस विश्वविद्यालय के प्रमुख प्राचार्य हैं श्रीमहातपा योगी। महातपा के विषय में पुराणों में भी वर्णन प्राप्त होता है। ये ऋषि प्रवर ज्ञानगंज के सर्वोपरि मार्ग दर्शक पद पर विराजमान हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ज्ञानगंज कोई भौतिक आकार वाला आश्रम नहीं है जिसे कोई भी शंगरीला घाटी जाकर देख सकता है। वस्तुतः उस घाटी में पहुँचकर भी ज्ञानगंज का दर्शन केवल उसी को हो सकता है, जिस पर वहाँ के सिद्ध योगीजन कृपा करें।

सिद्ध योगियों का दूसरा वर्ग बद्री-केदार के पर्वतीय क्षेत्र में निवास करता है। इस वर्ग में भी सैंकड़ों योगी हैं जिनके प्रमुख हैं श्रीमहावतार बाबा। इन्हीं के मार्गदर्शन में ये योगीगण योग-साधना किया करते हैं। हिमालय जाकर महाअवतार बाबा के दर्शन करने वाले अनेक योग मनीषी पहले भी हुए हैं और

वर्तमान में भी हैं। महाअवतार बाबा की आयु १८०० वर्ष से लेकर ५००० वर्ष तक की कही जाती है। कुछ विद्वानों ने महाअवतार बाबा का सम्बन्ध गुरु गोरखनाथ के नाथ सम्प्रदाय से बतलाया है। कहा जाता है कि जब आद्यशंकराचार्य केदार नाथ गए थे तब महाअवतार बाबा ने उन्हें योग मार्ग की दीक्षा दी थी। श्रीमहाअवतार बाबा सदैव १८ वर्ष की तरुण आयु के ही दिखाई देते थे।

यहाँ हिमालय के रहस्यमय स्थलों में निवास करने वाले योगियों के दो वर्णों का उल्लेख किया गया। किन्तु इनसे अतिरिक्त भी योगियों के छोटे-छोटे वर्ग हिमालय में निवास करते हैं। इन वर्गों में प्रत्येक में कुछ ही योगी हैं। यह भी हो सकता है कि वर्ग में न रहकर स्वतंत्र रूप से रहने वाले सिद्ध योगी भी हिमालय में हों। यहाँ जिन कृष्ण प्रेमी गोविन्द की चर्चा की जा रही है उन्हें भी योगियों का अद्‌भुत साक्षात्कार प्राप्त हुआ था।

गंगा के उस एकान्त तट पर रहते हुए आज गोविन्द को ५ दिन पूरे हो रहे थे। संध्याकाल होने को था और वे उस विशाल चट्टान पर बैठे हुए थे। सूर्यास्त हो जाने से दिन का प्रकाश बहुत कुछ लुप्त हो गया था और उसका स्थान ले रहा था रात्रि का निविड़ अन्धकार। गोविन्द गंगा की ओर मुँह करके बैठे हुए थे। उनके मन में वही उथल-पुथल मची हुई थी जिसको लेकर वे घर से निकले थे। वे ब्रजजन जीवन मुरली मनोहर कृष्ण कन्हैया कब मिलेंगे? कहाँ मिलेंगे? दीन हीनों पर दया करने वाले वे नटनागर मुझे कब अपनायेंगे? इन्हीं विचारों में गोविन्द खोए हुए थे तभी अचानक सामने गंगाजी की ओर बिजली की सी एक चमक ने उनका ध्यान खींचा। गोविन्द चौंक उठे। गंगा के दूसरे तट पर यह प्रकाश कैसा? वे कुछ निर्णय कर पाते उससे पूर्व

उन्होंने देखा कि वह सौदामिनी जैसी आभा गंगा के ऊपर से चलती हुई इधर वाले तट पर उनकी ओर ही आगे बढ़ रही है। गोविन्द विस्मित थे, वे विस्फारित नेत्रों से उस ओर देख रहे थे तथा उस दृश्य को समझने का प्रयास कर रहे थे। कुछ क्षणों में धीरे-धीरे उस प्रकाश पुंज का रहस्य खुलने लगा। परन्तु रहस्य खुलने के साथ ही विस्मय कम होने के स्थान पर उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया। गोविन्द ने देखा कि लगभग सात फुट से भी अधिक लम्बाई वाले एक सुन्दर स्वरूप संत गंगा के उद्दाम प्रवाह के ऊपर चलते हुए क्रमशः इस तट की ओर आ रहे हैं। उनकी विशाल जटाएँ हैं जो गंगाजल का प्रायः स्पर्श कर रही हैं। सन्त के शरीर से एक विशेष उज्ज्वल कान्ति स्फुटित हो रही है जिसे प्रथम दृष्टि में गोविन्द ने बिजली की चमक के रूप में देखा था।

इस दृश्य को देखने से पूर्व गोविन्द के भीतर श्रीकृष्ण सम्बन्धी विचारों का प्रवाह बह रहा था वही प्रवाह एक बार फिर नये रूप में उमड़ पड़ा। वे सोचने लगे कि जैसे ये संत आकस्मिक रूप से मेरे सम्मुख आए हैं ऐसे ही मेरे प्यारे श्रीकृष्ण भी अपने विरह से तड़पते भक्तों के सम्मुख अचानक ही प्रकट होते होंगे। जैसे इन संत को गंगा के बहाव से कोई भय नहीं है, ये बहाव के ऊपर चलते हुए ही इधर आ रहे हैं उसी प्रकार नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को भी किसका भय है? समस्त सृष्टि ही उनका एक खिलौना है। जब उनका जी चाहता है अपनी इच्छा मात्र से इस खिलौने को प्रकट कर इसके साथ खेलने लगते हैं और जब उनकी इच्छा होती है इसे तोड़कर फिर अकेले ही बने रहते हैं?

गोविन्द इन्हीं विचारों में थे तब तक वे सन्त गंगा पार कर उनके सम्मुख आकर खड़े हो गए। गोविन्द चकित भाव से उनकी ओर देख रहे थे। ऐसी भव्य, विशाल और असाधारण देह

को कल्पना करना भी अत्यन्त कठिन है, जिसे वे अपने सामने खड़ा देख रहे थे। गोविन्द उनसे क्या वार्तालाप करते? उनके तो विस्मय ने ही उनकी वाणी को रोक रखा है। उन सन्त से परिचय पूछना तो दूर गोविन्द स्वयं अपने परिचय को भी भूल चुके थे। तभी दोनों के बीच की इस नीरवता को भंग करते हुए उन सन्त ने स्वयं ही अपनी मेघ गम्भीर वाणी द्वारा गोविन्द से एक प्रश्न पूछा। कोई सोच सकता है कि वन प्रदेश में गंगा के सुदूर एकान्त तट पर रात्रि के प्रथम प्रहर में एक किशोर बालक की उपस्थित अवश्य ही जिज्ञासा का विषय है अतएव उन सन्त जी ने यही पूछा होगा कि तुम कौन हो? कहाँ से आए हो? यहाँ क्यों बैठे हो? इत्यादि किन्तु ऐसा नहीं है उन सन्त ने जो प्रश्न पूछा उसका इन स्थूल बातों से कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐसे अपूर्व योगी इन उथले प्रश्नों को कैसे पूछ सकते हैं? उनकी दृष्टि गोविन्द की देह पर नहीं थी फिर देह सम्बन्धी प्रश्न वे कैसे पूछते? उनकी दृष्टि थी गोविन्द के अन्तर्मन में हिलोरें ले रही कृष्ण-दर्शन की लालसा पर, अत: उस लालसा को और अधिक जाँचने-परखने के लिए उन सन्त ने पूछा—यदि तुम पत्नी चाहते हो तो यहाँ से वापिस चले जाओ। यही उन सन्त का पहला वाक्य था जो उन्होंने गोविन्द से कहा।

संत मिलन सम सुख जग नाहीं

सन्तजी से यह बात सुनकर गोविन्द सिहर उठे। वे दृढ़ता के साथ गृहत्याग कर लक्ष्य प्राप्ति के लिए निकले थे, पुन: जागतिक प्रपंचों की ओर जाने का कोई विकल्प उनके चित्त में नहीं था। सन्त से यह सुनकर उन्हें रोना आ गया। उन्होंने सन्त जी के चरणों को पकड़ लिया और रोते-रोते केवल इतना ही कहा नहीं! नहीं! नहीं! अबकी बार महात्मा जी का रुख और कठोर था उन्होंने दुबारा

कठोर स्वर में कहा—नहीं! तुम वापस चले जाओ। गोविन्द तो उनके चरणों में लिपटे हुए थे उन्होंने रोते-रोते कहा मैं वापस नहीं जाऊँगा, भले ही आप मुझे जान से मार दें। गोविन्द ने फिर कहा आप महान योगीराज हैं मुझे अपने पास सेवा में रख लीजिए। मुझे केवल दीनानाथ से मिलने की चाह है। आप कृपा करके उनसे मिला दीजिए। गोविन्द के निश्चय की दृढ़ता देख वे सन्त प्रसन्न होकर अपने कोमल स्वभाव में आ गए। वस्तुत: उनकी कठोरता परीक्षा लेने का एक अभिनय मात्र था। सन्त ने गोविन्द को अपनी विशाल भुजाओं से पकड़कर उठाया और अपनी कृपापूर्ण दृष्टि से उन्हें देखकर सान्त्वना प्रदान की।

सन्तजी ने कोमल स्वर में कहा—आओ मेरे साथ। यह कहकर उन्होंने एक हाथ से गोविन्द की भुजा पकड़ ली। उस समय गोविन्द को ऐसा लगा कि सन्तजी के हाथ से विद्युत-तरंगों जैसी कोई ऊर्जा निकल कर मुझमें प्रवेश कर रही है। वे सन्त उन्हें गंगा तट पर ले आए और गोविन्द को जल में उतरने को कहा। सन्त जी उनकी भुजा को निरन्तर पकड़े हुए थे। उनके आदेशानुसार मन्त्र मुग्ध की भाँति गोविन्द ने जैसे ही अपना पैर जलधारा पर रखा तो उनके विस्मय का पारावार नहीं रहा। गोविन्द ने अनुभव किया कि उनका पैर जल में डूबा नहीं है अपितु वे भी अब सन्तजी के समान जल पर चल सकते हैं। चारों ओर निस्तब्ध रात्रि का अन्धकार था, ऐसे में उस नीरव एकान्त स्थल पर उत्ताल तरंगों वाली भागीरथी गंगा की जलधारा के ऊपर चलते हुए दोनों उसे पार कर रहे थे। गंगा का पाट वहाँ विशाल था। कुछ देर में ही दोनों गंगा के परले तट पर पहुँच गए। वह तट और अधिक वृक्षावली से सघन था। वहाँ गोविन्द की भुजा छोड़कर वे बोले तुम यहीं रुको मैं अभी आता हूँ। ऐसा कहकर वह वन-प्रदेश में

भीतर की ओर चले गए। कुछ देर पश्चात् जब वे लौटकर आए तो उनके हाथ में एक कन्द था जिसे उन्होंने गंगाजल में भिगोकर गोविन्द को खाने के लिए दिया। वहाँ गोविन्द को ५ दिन हो गए थे और वे दिन भर केवल १-२ बेल खाकर ही रह रहे थे। इससे उनके शरीर में दुर्बलता आ गई थी। किन्तु अब सन्त जी द्वारा दिया गया वह स्वादिष्ट कन्द जैसे ही उन्होंने खाया, तो न केवल उनकी क्षुधा शान्त हुई अपितु दुर्बलता भी दूर हो गयी और उनमें एक नई शक्ति का संचार हो गया।

महात्मा जी गोविन्द को साथ लेकर उस निविड़ रात्रि में पहाड़ी रास्तों से चलते हुए आगे बढ़ने लगे। सन्तजी आगे चल रहे थे तथा गोविन्द उनके पीछे। कुछ दूर चलने पर किसी चट्टान को चढ़ने के प्रयास में गोविन्द का पैर फिसल गया। मोच आ जाने से उनके लिए पैदल चल पाना अब संभव नहीं हो पा रहा था। यह देखकर सन्तजी ने उन्हें अपने कन्धे पर बैठा लिया। इस प्रकार वह पहाड़ी यात्रा तय हुई। रात्रि का दूसरा प्रहर प्रारम्भ होने पर गोविन्द कुछ नींद सी आने लगी, यह देखकर सन्तजी ने एक उपयुक्त स्थान खोजकर उन्हें सोने के लिए कह दिया। प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में दोनों ने झरनों के जल से स्नान आदि किया। थोड़ी ही देर में उषाकाल हो गया। भगवान् भुवन-भास्कर के प्रकाश से वन-पर्वत आदि सभी आलोकित हो उठे। गोविन्द ने देखा कि वह ऐसे स्थान पर है जहाँ चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं। अब दोनों पर्वतीय रास्ते से ऊपर की ओर बढ़ने लगे। वह क्षेत्र सर्वथा जन-शून्य था। इन दोनों के अतिरिक्त वहाँ अन्य मानव की उपस्थिति का कोई चिह्न नहीं था। गगनचारी पक्षियों का कलरव और झरनों के जल का कल-कल निनाद इसी प्राकृतिक संगीत से वहाँ की घाटियाँ म[illegible] हो रही थीं। कितनी ऊँचाई तक और

कितनी दूर तक गोविन्द उन सन्तजी के साथ चलते रहे, इसे निश्चित रूप से कह पाना हमारे लिए कठिन है।

घटना क्रमांक ४

गुफा के अन्दर योगीराज से वार्ता

ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को पार करते हुए यह यात्रा जारी रही। कहीं-कहीं पुण्य सलिला गंगाजी के दर्शन हो जाते थे। कभी गंगा के किनारे चलते हुए, तो कभी पर्वतीय शिलाओं पर चढ़ते हुए मार्ग तय होता रहा। अन्ततः वे दोनों किसी ऐसे स्थल पर पहुँच गए जो अधिक विस्तृत नहीं था। एक दूसरे के निकट पर्वतों के बीच में जैसे वह कोई सुरम्य विश्राम स्थल ही था। वहाँ एक ओर पर्वत से सटी हुई एक विशाल शिला थी। सन्त जी उस शिला के निकट गये और उन्होंने बिना प्रयास के सहज ही उस शिला को आगे सरका दिया। अनेकों व्यक्तियों द्वारा भी जोर लगाने पर जिसे हिला पाना संभव नहीं था उसे उन्होंने सहज ही सरका कर एक ओर कर दिया। गोविन्द यह देखकर चकित हो गए। किन्तु वे तब और अधिक विस्मित हो गए जब शिला के हटाने पर उसके पीछे का दृश्य उन्हें दिखाई दिया। एक विशाल और गहरी पर्वतीय गुफा उन्हें दिखाई दी, जिसके मुहाने पर वह शिला द्वार के रूप में स्थापित थी।

सन्त जी के साथ गोविन्द ने गुफा में प्रवेश किया। गुफा भीतर से बड़ी थी और कुछ गहरी भी। भीतर एक झरना भी बह रहा था। जिसके जल प्रवाह से वहाँ कल-कल निनाद हो रहा था। इस कल-कल निनाद के साथ ही वायु वेग की एक ध्वनि सुनाई दे रही थी जैसे किसी का दीर्घ श्वास-प्रश्वास हो। गुफा के भीतर सन्त जी गोविन्द को उस स्थान पर ले गए जहाँ से वायु

ध्वनि आ रही थी। वहाँ पहुँच कर जो दृश्य गोविन्द के सम्मुख आया वह अद्‌भुत था। अभी तक की घटी घटनाएं—चलते हुए गंगा पार करना, विशाल शिला को सहज ही सरका देना इत्यादि घटनाओं से भी गोविन्द उतने चकित नहीं हुए थे जितना कि इस दृश्य को देखकर। गोविन्द देख रहे थे एक विशालकाय सन्त को जिनकी देह पर बड़े-बड़े बाल थे। वे सन्त आसन लगाकर ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे हुए थे। उनके नेत्र बन्द थे और भौंहों के केश नेत्रों पर तथा मुख पर इधर-उधर फैले हुए थे। गोविन्द ने उन सन्त का कई वर्षों बाद अपनी शिष्य मण्डली के सम्मुख जो वर्णन किया था उसके अनुसार आसन लगाकर बैठे हुए उन सन्त की उस अवस्था की ऊँचाई वहाँ खड़े हुए गोविन्द की कुल लम्बाई के लगभग बराबर थी। गुफा में व्याप्त झरने के कल-कल के साथ जो वायु ध्वनि सुनाई पड़ रही थी वह उन सन्त के श्वास-प्रश्वास की थी।

गोविन्द के साथ आए हुए महात्मा जी ने उन बैठे हुए सन्त के निकट जाकर उनकी पीठ पर एक विशेष रीति से मालिश की। उसके साथ ही कुछ विशेष नाड़ियों की भी मालिश की। इसके प्रभाव से उन सन्त की चेतना बहिर्जगत में आई और उनके नेत्र धीरे-धीरे खुलने लगे।

प्रकृतिस्थ होने पर उन्होंने सन्तजी को और उनके साथ आए गोविन्द को देखा। अपने मेघ गम्भीर स्वर में उन्होंने सन्तजी से कहा—"आ गए हो, इसे कहाँ से ले आए हो? महात्मा जी ने कहा—यह आपका ही बालक है। गुफा में बैठे सन्त ने कहा—हाँ है तो।

हमारी जानकारी के अनुसार दोनों सन्तों का यह वार्तालाप संस्कृत में ही हुआ। इसके अतिरिक्त भी उन दोनों के बीच बहुत

सी बातें होती रहीं जो संस्कृत में ही थीं। गोविन्द को संस्कृत का कुछ प्रारम्भिक ज्ञान था इसलिए वे उस वार्तालाप का कुछ अंश ही समझ पाए। वस्तुतः उनका ध्यान वार्तालाप की ओर उतना था ही नहीं। वे तो गुफा में बैठे उन प्राचीन योगीराज सन्त के दर्शन करते हुए गद्‌गद् एवम् पुलकित हो रहे थे। उन योग सिद्ध विभूति का दर्शन कर उन्होंने स्वयं को धन्य अनुभव किया। कुछ देर पश्चात् गोविन्द को खाने के लिए कुछ फल और एक कटोरे में कुछ पेय पदार्थ दिया गया जिसे पीकर उन्हें सात दिन तक भूख-प्यास नहीं लगी। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि वह पेय कुछ विशिष्ट वन्य औषधियों का रस रहा होगा।

गुफा के बाद यात्रा का पहला पड़ाव

इसके पश्चात् महात्मा जी और गोविन्द उस गुफा से बाहर आए। गुफा के प्रवेश मार्ग को ढ़कने वाली उस शिला को पुनः ज्यों का त्यों स्थापित कर दिया गया। दोनों ने वह रात्रि उसी परिसर में व्यतीत की। अगले दिन प्रातः स्नान आदि देह-कृत्यों से निवृत्त होकर पुनः और ऊँचाई की ओर यात्रा प्रारम्भ की गई। यह आगे की यात्रा कितनी लम्बी थी, इस विषय में कुछ विशेष विवरण प्राप्त नहीं हैं किन्तु हमारा अनुमान है कि गुफा के आगे की यात्रा भी कम से कम एक दिन की अवश्य रही होगी। इस अनुमान का आधार यह है कि ऊपरी गन्तव्य से पुनः गंगा तट तक आने में गोविन्द को तीन दिन लगे थे।

गुफा के आगे की यात्रा जहाँ समाप्त हुई वहाँ एक बहुत बड़ी चट्टान थी। चारों ओर पर्वत माला के नयनाभिराम दृश्य थे। निकट और दूर अनेक छोटे-छोटे बड़े जलप्रपात दृष्टि को आकर्षित कर रहे थे। वृक्षों पर चहकते पक्षियों का कलरव वहाँ

के सुन्दर पर्यावरण को संगीत से अलंकृत कर और अधिक सुन्दर बना रहा था।

जिस विशाल चट्टान की बात ऊपर कही गयी उस पर पाँच सन्त बैठे हुए थे। गोविन्द को लाने वाले महात्मा जी को देखकर वे बोले आइए हम आपकी चार दिनों से प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसा अनुमान होता है कि वे पाँचों सन्त गोविन्द को साथ लाने वाले महात्मा जी के समकक्ष और समानमना थे। आगे के विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि वे महात्मा जी उन पाँच सन्तों के साथ वहीं निवास करते थे। वहाँ पहुँचकर गोविन्द को यह आभास हो गया कि अब और यात्रा नहीं करनी है तथा जितने दिन भी इस पर्वतीय क्षेत्र में रहना है इसी स्थान पर निवास करना है।

उपलब्ध सामग्री के अनुसार गोविन्द वहाँ लगभग एक वर्ष तक रहे। भोजन के लिए कन्दमूल एवम् फल, पीने के लिए पहाड़ी झरनों का निर्मल जल, यही वहाँ का आहार था। ग्रीष्म में खुले आकाश के नीचे रात्रि व्यतीत होती थी तथा वर्षा एवम् शीतकाल में कभी सघन वृक्षों की छाँह में तो कभी पर्वत कन्दराओं में। उस स्थान में एक विशेषता और थी कि वहाँ जंगली हाथी नहीं दिखाई देते थे इसका एकमात्र कारण यह था कि उस क्षेत्र में सिंह रहा करता था, जिस के भय से हाथी वहाँ नहीं आते थे।

घटना क्रमांक ५

बालयोगी के रूप में गोविन्द

उन छः योगी सन्तों से गोविन्द यथा अवसर सत्संग वार्तालाप का लाभ लेते रहे। आध्यात्मिक जगत् के अनेक विषयों पर वे सन्त गोविन्द को सारगर्भित उपदेश दिया करते थे। वहाँ रहने से गोविन्द का परिवेश भी बदल गया। उन सन्तों ने पहनने के लिए उन्हें गेरुआ वस्त्र दिया। इससे पूर्व वे देशकाल के

अनुसार चाहे जो वस्त्र पहनते हों किन्तु अब सन्तों द्वारा प्रदत्त गेरुआ वस्त्र पहनकर गोविन्द दूसरे ही रूप में शोभायमान हुए। वे गौर वर्ण के थे, मध्यम कद, छरहरा बदन तथा लगभग सत्रह वर्ष की अवस्था इस प्रकार वे उन ज्ञान-वयोवृद्ध योगियों के बीच में एक बाल योगी के रूप में दिखाई देते थे। बाहरी रूप से ऐसा होते हुए भी गोविन्द का उन योगियों के साथ एक भीतरी भेद था, वह यह कि वे सन्त तो योगमार्ग पर आरूढ़ विलक्षण विभूति थे और गोविन्द ठहरे प्रेमयोगी। उनकी निष्ठा तो अपने प्यारे कन्हैया को ही पुकारती रहती थी, उनके नेत्र वहाँ भी उस चित्तचोर को ही ढूँढ़ते रहते। वे सिद्ध योगी सन्त इस बात को अच्छी तरह जानते थे यह बालक प्रेमपथ का पथिक है, इसे आगे चलकर ब्रज में निवास करते हुए श्रीराधामाधव की उपलब्धि करनी है जो केवल आन्तरिक प्रेम से ही होती है। योग, ज्ञान और कर्म इत्यादि साधनाएँ उन तक नहीं पहुँचा सकतीं। इसलिए उन योगियों ने गोविन्द को अपने योगमार्ग में दीक्षित नहीं किया। प्राय: किसी मार्ग विशेष में दीक्षित होने पर गुरु द्वारा गेरुआ अथवा अन्य प्रकार के वस्त्र शिष्य को प्रदान किए जाते हैं जो इस तथ्य के परिचायक होते हैं कि यह परमार्थ प्राप्ति के लिए गृह-प्रपंच का त्यागकर अपने आत्म-कल्याण का साधन करने को कटिबद्ध हुआ है। उन सन्तों द्वारा गेरुआ वस्त्र देना मात्र इसलिए सम्भव हुआ कि गोविन्द श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए दृढ़ निश्चयी थे, उनके पुन: सांसारिक प्रवृत्तियों की ओर लौटने की कोई सम्भावना नहीं थी। अत: एक गृहत्यागी का परिवेश निर्धारित करते हुए उन्हें ये वस्त्र दिए गए। दूसरे शब्दों में गोविन्द के ये वस्त्र केवल उनके विरक्त आश्रमी होने के परिचायक थे न कि किसी सम्प्रदाय विशेष में शामिल होने के।

घटना क्रमांक ६

सिंह की आँखों में मुरली मनोहर के दर्शन

जब उस सन्त मण्डली में आए गोविन्द को कुछ ही दिन हुए थे तब की एक रोमाचंक घटना हमें लिखित रूप में प्राप्त हुई है। एक दिन वे उन सन्तों के साथ बैठे हुए थे कि उन्हें पहाड़ों में एक तरफ शोर सा सुनाई दिया। उस ओर दृष्टि डालने पर जो दृश्य दिखाई दिया उसे देख गोविन्द सिहर उठे। एक बारहसिंगा मृग अपनी प्राण रक्षा के लिए भागा चला आ रहा था और उसके पीछे भाग रहा था एक सिंह। मृग भागता हुआ उसी ओर आ रहा था जहाँ ये बैठे हुए थे। यह देख कर गोविन्द भयभीत हो उठे, उन्होंने भयवशात् निकट बैठे सन्त के चरण पकड़ लिए। इतनी देर में मृग वहाँ आ गया और उन सन्तों के निकट से भागता हुआ दूसरी दिशा में चला गया। क्षण दो क्षण के विलम्ब से सिंह भी वहाँ आ गया, किन्तु आश्चर्य यह हुआ कि वह मृग का पीछा छोड़कर सन्तों के निकट ही रुक गया। सिंह को वहाँ रुका देख गोविन्द और भी अधिक भयभीत हो उठे उन्होंने सन्त के चरणों को और दृढ़ता से पकड़ लिया। सिंह कुछ क्षणों तक इधर-उधर ताकता रहा फिर धीरे-धीरे उस ओर बढ़ा जहाँ ये सब बैठे हुए थे। गोविन्द का हृदय जोर से धड़क रहा था। वे सोचने लगे कि आज जीवन-लीला समाप्त हो ही जाएगी। जीवन तो एक दिन समाप्त होना ही है किन्तु फिर प्यारे कन्हैया के दर्शन कब होंगे?

गोविन्द यह सोच ही रहे थे इतने में वह सिंह उनके निकट ही आकर बैठ गया। वहाँ उपस्थित अन्य छः सन्त इस घटनाक्रम का आनन्द ले रहे थे। उन्हें सिंह का कोई भय नहीं था। कभी वे सिंह की ओर देखते और कभी गोविन्द की ओर देखकर मुस्कुराने लगते। शान्तभाव से बैठा हुआ वह पशु अब

बार-बार गोविन्द का स्पर्श करने लगा। कभी अपनी पूँछ को उन पर डाल देता और कभी अपनी देह को उनसे धीरे-धीरे रगड़ने लगता। उसकी इन क्रियाओं से गोविन्द का भय भी कम होने लगा। वे अब लगभग सामान्य स्थिति में आ गए। सिंह की अपने साथ क्रीड़ा देखकर और यह देखकर कि ये उपस्थित सन्त इससे बिल्कुल भयभीत नहीं हैं, गोविन्द का भय भी जाता रहा। तभी एक सन्त ने कहा—गोविन्द! सिंह की आँखों में देखो और पहचानो, देखो उसकी आँखों में क्या है? सन्त के आदेशानुसार उन्होंने बड़े ध्यानपूर्वक सिंह की आँखों में देखा। वहाँ उन्हें जो दृश्य दिखाई दिया उसे देखकर वे रोमांचित हो गए। आनन्द की तरंगें उनकी देह में अठखेलियाँ करने लगीं। सिंह की आँखों में तो वे ही मुरली मनोहर हैं जिन्हें वे खोज रहे थे। ललित त्रिभंग वपु से बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण उन्हें सिंह की आँखों में दिखाई दिए। गोविन्द के नेत्रों से प्रेम के आँसू बहने लगे। आदेश देने वाले उन सन्त ने पुनः कहा कि इन्हीं श्रीकृष्ण की बातें तुम कहते रहते हो और अब वे जब सिंह के रूप में सामने आए हैं तो डरते क्यों हो? इनसे मिलते क्यों नहीं? ऐसा कहकर उन सन्त ने गोविन्द का हाथ पकड़कर सिंह के शरीर पर फिराया। यह बहुत विलक्षण अनुभव था। गोविन्द तो पहले से ही पुलकित हो रहे थे अब और अधिक रोमांचित हो उठे। वे सर्वथा निडर होकर स्वयं ही उस पर हाथ फिराकर सहलाने लगे। कुछ देर पश्चात् वह सिंह उठकर वन-प्रान्त की ओर चला गया।

उन पर्वतीय सिद्ध सन्तों के पास गोविन्द लगभग एक वर्ष रहे। यह एक वर्ष उनके जीवन में विविध प्रकार के अनुभवों से भरा हुआ था। उनके संग गोविन्द ने जो तप, संयम, तितिक्षा आदि सद्गुणों का अर्जन किया वे विरक्त साधु जीवन के लिए

अनिवार्य हैं। योग, कर्म, ज्ञान आदि साधन मार्गों का विशद परिचय उन्हें वहाँ प्राप्त हुआ। यह सब होते हुए भी गोविन्द मूलतः एक कृष्ण प्रेमी साधक थे। ब्रजराज नन्दनन्दन को खोजने के लिए ही वे घर से निकले थे।

घटना क्रमांक ७

सन्त द्वारा ब्रज जाने का आदेश

गोविन्द के भीतर की इस माँग को वे सन्त भी अच्छी तरह जानते थे। गोविन्द की मूल प्रकृति और उनका लक्ष्य भिन्न प्रकार का था। जिसका भलीभाँति निर्वाह तो ब्रज में और ब्रज-प्रेमी सन्तों के संग ही संभव था। लगभग एक वर्ष पश्चात् उन सन्तों ने गोविन्द को ब्रजभूमि की ओर जाने का आदेश दिया। वे सन्त जो गोविन्द को ऊँचे पर्वतों में लाए थे उन्होंने कहा—वत्स! तुम कृष्ण कन्हैया के प्रेमी हो, तुम्हें ब्रज में जाना है, तुम ब्रजवासी ही हो इसलिए तुम्हें वहाँ जाकर निवास करना है। तुम्हें अपने पास रखने का प्रयोजन अब पूर्ण हो चुका है इसलिए अब तुम वृन्दावन जाओ, वहीं तुम्हें अपने लक्ष्य की प्राप्ति होगी।

पहाड़ों से नीचे लाकर हरिद्वार तक का मार्ग दिखाने के लिए एक सन्त को गोविन्द के साथ जाने के लिए कहा गया। विदाई के क्षणों में गोविन्द भावुक हो उठे। उन्होंने एक-एक करके सभी सन्तों के चरणों में मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया। अन्त में जब वे उन महात्मा जी के निकट आए जो उन्हें यहाँ लाए थे तब गोविन्द अपने को सँभाल नहीं पाए उनके चरणों में मस्तक रखकर वे अपने प्रेमाश्रुओं से उनका अभिषेक करने लगे। भीतर के श्रद्धा-कृतज्ञता आदि भाव सब एक साथ उमड़ पड़े। इन संतों ने जो उपकार किए हैं उसके बदले में मैं इन्हें क्या दे सकता हूँ?

यहाँ रहकर मुझसे इनकी कुछ भी सेवा नहीं बन सकी, यह सोचकर गोविन्द व्याकुल हो गए।

उन महात्माजी ने अपनी विशाल भुजाओं से पैरों पर पड़े हुए गोविन्द को उठाया और हृदय से लगाया। गोविन्द की वहाँ से विदाई के इन अन्तिम क्षणों में उन महात्मा जी ने एक चौंकाने वाली बात कही जिसका गोविन्द के आगे के भविष्य से गहरा सम्बन्ध था। मानों उन्होंने गोविन्द की झोली में एक अनुपम रत्न डाल दिया जिससे आगे चलकर गोविन्द का अन्तरतम आलोकित हो गया। वे महात्मा जी बोले—

'ब' नामक ग्राम में संत मिलन होगा वत्स गोविन्द! तुम्हें भविष्य में मुझ जैसे एक सन्त और मिलेंगे। उनसे तुम्हारी भेंट ब्रजभूमि के किसी ऐसे स्थल पर होगी जिसका नाम **'ब'** से प्रारम्भ होता है। वहाँ वे तुम्हारी प्रतीक्षा करते हुए मिलेंगे। उनकी कृपा प्राप्त कर तुम अपने लक्ष्य तक पहुँच जाओगे।

गोविन्द इन बातों को सुनकर विस्मित भी हो रहे थे और आनन्दित भी। उन्हें लग रहा था कि जैसे उन्हें विदाई में एक अनोखा उपहार दिया गया है, जिससे उनका यहाँ आना सर्वथा सार्थक हो गया। उन्होंने एक बार फिर कृतज्ञतापूर्ण हृदय से उन महात्मा जी के चरणों में प्रणाम किया। इस प्रकार गोविन्द वहाँ से विदा हुए।

देवर्षि नारद ने भक्ति-सूत्र में महत् पुरुषों के संग को दुर्लभ, अगम्य एवम् अमोघ कहा है—

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च॥३९॥

इसका तात्पर्य यह है कि महापुरुषों से मिलन होना अत्यन्त दुर्लभ है। यह केवल भगवत् कृपा से ही संभव है किन्तु यह दुर्लभ के साथ-साथ अमोघ भी है। अमोघ का तात्पर्य है

व्यर्थ न होने वाला। एक बार भी यदि सौभाग्य से किसी को महत् पुरुषों का दुर्लभ संग प्राप्त हो जाए तो उसका परमार्थ प्राप्ति का द्वार खुल जाता है। गोविन्द को भी महापुरुषों का अमोघ संग पर्वतीय क्षेत्र में प्राप्त हुआ। विदाई के अवसर पर महात्मा जी ने जो अन्तिम बात गोविन्द से कही वह महत् संग के अमोघ होने का प्रमाण है। वे सन्तजन योगी थे और गोविन्द के संस्कार भक्तिमार्ग के थे। इसलिए उन्होंने गोविन्द को ब्रज में भेजा और इसके साथ ही एक ऐसे महापुरुष के मिलन का संकेत दे दिया जिनसे मिलकर गोविन्द की इस मार्ग में दिन-दूनी, रात-चौगुनी प्रगति हुई। सन्त हृदय में परोपकार की जो सहज वृत्ति होती है उसका यह उदाहरण है। उन योगी सन्तों ने बिना किसी कारण के गोविन्द का वास्तविक परोपकार किया। श्रीरामचरितमानस में श्रीभगवान् और उनके प्रिय सन्त दोनों का एक ही स्वभाव बताया गया है; वह है बिना किसी कारण के दूसरों का उपकार करना–

हेतु रहित जग जुग उपकारी।
तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥

जैसा कि पूर्व में कहा गया है गोविन्द को पहाड़ों के नीचे गंगा पार तक छोड़ने के लिए एक साधु को साथ भेजा गया। गंगा पार तक आने में उन्हें तीन दिन लगे इससे अनुमान होता है कि वे योगी सन्त गोविन्द को पर्याप्त दूरी एवम् ऊँचाई तक ले गए थे। गंगा पार कराके साथ में आए सन्त वापस चले गए। लगभग एक वर्ष पश्चात् गोविन्द फिर गंगा तट पर थे। अबकी बार वे जहाँ थे वह स्थान पहले जैसा निर्जन नहीं था। लोगों का आना-जाना वहाँ बना रहता था। गोविन्द को एक ही धुन थी कब वृन्दावन पहुँचूं और कब अपने प्यारे कन्हैया से मिलूँ। वे [illegible] गंगा मैया से प्रार्थना करते कि हे गंगे! कृपा

करके शीघ्र ही मुझे वृन्दावन पहुँचा दीजिए। उनका परिवेष अब बदला हुआ था, उन सन्तों द्वारा प्रदत्त गेरुआ वस्त्र उन्होंने पहन रखा था। घाट पर आने वाले श्रद्धालुओं में कोई उन्हें फल दे देता तो वे उसे पा लेते किन्तु अपनी ओर से भोजन का प्रयास नहीं करते। किसी व्यक्ति से उन्होंने पूछा यहाँ से वृन्दावन कितनी दूर है? उत्तर मिला पाँच सौ मील। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तर देने वाले ने ठीक से अनुमान न कर सकने के कारण दूरी अधिक ही बताई। यद्यपि हमें यह निश्चित जानकारी नहीं है कि हरिद्वार से कितनी दूर गोविन्द थे तो भी इसमें सन्देह नहीं कि यह दूरी चार सौ किलोमीटर से अधिक नहीं थी। दूरी को पैदल शीघ्र तय नहीं किया जा सकता यह विचार कर लोगों से मार्ग पूछकर गोविन्द हरिद्वार स्टेशन की ओर चल दिये।

घर से निकलने के बाद से ही गोविन्द के साथ जिस प्रकार की अप्रत्याशित घटनाएँ होती रहीं उनका वर्णन ऊपर किया गया है। ये समस्त घटनाएँ सर्वथा आकस्मिक थीं, इनका कोई पूर्व अनुमान सम्भव नहीं था। इस क्रम ने हरिद्वार स्टेशन पर भी गोविन्द का पीछा नहीं छोड़ा। वे किसी ऐसी रेलगाड़ी में बैठ गए जो ब्रजभूमि के मथुरा रेलवे स्टेशन की ओर नहीं जाती थी। यह प्रसंग ई. सन् १९४१-४२ का है अत: अनुमान किया जा सकता है कि उस समय रेलवे-स्टेशनों पर जानकारी की उतनी सुविधाएँ नहीं होती होंगी जितनी की अब हैं। गलत गाड़ी में बैठने का यह भी कारण हो सकता है अपनी ही धुन में रहने के कारण गोविन्द उतनी पक्की सूचना नहीं प्राप्त कर सके। यह दूसरा कारण ही अधिक सम्भावित जान पड़ता है, क्योंकि वहाँ से चलने के बाद गाड़ी में सैंकड़ों किलोमीटर की यात्रा तय कर ली किन्तु गोविन्द यात्रियों से जानकारी लिए बिना गाड़ी में बैठे रहे।

फिर जब एक बड़े स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो गोविन्द नीचे उतरे। उन्होंने लोगों से पूछा यह कौन सा स्टेशन है उत्तर मिला मुगलसराय। गोविन्द ने पूछा यहाँ से वृन्दावन कितनी दूर है? उत्तर मिला ५०० मील। गोविन्द को समझते देर न लगी कि वे गलत गाड़ी में बैठकर दूसरी ही दिशा में आ गए हैं।

घटना क्रमांक ८

बाबा विश्वनाथ की कृपा से कामिनी से छुटकारा

कुछ देर बाद ही उन्हें एक दूसरी गाड़ी मिली जिसमें बैठकर वे बनारस आ गए। संभवत: वह गाड़ी बनारस तक ही थी। भगवान् विश्वनाथ की नगरी काशी में पहुँचकर उन्हें सन्तों की एक टोली मिली जिनसे गोविन्द का अच्छा परिचय हो गया। उस टोली के प्रमुख एक वयोवृद्ध सन्त थे। गोविन्द जब काशी पहुँचे उसके पन्द्रह दिन बाद ही चन्द्रग्रहण का योग था। काशी में चन्द्रग्रहण का स्नान करने के लिये बड़ी संख्या में लोग एकत्रित होते हैं। अन्तर्यामी श्रीभगवान् की प्रेरणा से गोविन्द ने वहाँ चन्द्रग्रहण तक रुकने का निश्चय किया।

सन्तों की जिस टोली से गोविन्द का परिचय हो गया था उन्हीं के साथ वे प्रतिदिन गंगा स्नान करते और विश्वनाथ भगवान् के दर्शन करते। उन्हीं के साथ वे मधुकरी भिक्षा के लिए भी निकलते। एक दिन जब वे सन्तों के साथ भिक्षा के लिये निकले थे, उन्होंने एक भवन के सम्मुख भिक्षा के लिए पुकार लगाई। गोविन्द के साथ के महात्मा आगे निकल गए इसलिए उस स्थल पर वे अकेले ही थे। वह भवन देखने में किसी धनाढ्य व्यक्ति का प्रतीत होता था। पुकार लगाने के कुछ क्षणों बाद भवन का द्वार खुला और एक महिला जो हाथ में भिक्षान्न लिए हुई थी

बाहर आयी। वह मारवाड़ी संस्कृति की वेषभूषा पहने हुए थी। गोविन्द उस समय किशोरावस्था पार कर युवावस्था की ओर बढ़ रहे थे। नव यौवन के अतिरिक्त वे देखने में भी सुन्दर व आकर्षक थे। उनमें गौरवर्ण के साथ कुछ लालिमा का भी समावेश था जो उन्हें और चित्ताकर्षक बना रही थी। वह महिला कुछ क्षणों तक उन्हें एक-टक देखती रही फिर बोली सन्तजी ! आप भीतर भवन में आकर भोजन कर लीजिए। गोविन्द भीतर चले गए। उस महिला ने सम्मानपूर्वक उन्हें भोजन कराया। इसके बाद वह बोली कि आप चाहें तो हमारे घर पर रह सकते हैं। गोविन्द ने उन्हें मना कर दिया। वह महिला बोली यदि यहाँ आप का मन न लगे तो आप कलकत्ता में भी रह सकते हैं वहाँ हमारे बड़े-बड़े कारोबार हैं। गोविन्द ने इस प्रस्ताव को भी नहीं माना किन्तु वह मारवाड़ी महिला उनसे बार-बार आग्रह करती ही रही। अन्तत: उससे पीछा छुड़ाने के लिए उन्होंने एक युक्ति निकाली। उन्होंने कहा कि मैं एक वयोवृद्ध संत के आश्रय में रहता हूँ यदि वे आज्ञा दे दें तो मैं आपकी बात मान सकता हूँ। महिला ने उनके निवास का पता पूछा जिसे गोविन्द ने सहज भाव से बता दिया। इसके बाद वे उस भवन से अपने डेरे पर चले आए। वे भीतर से आश्वस्त थे कि यह महिला भले ही आग्रह कर रही है किन्तु इसके डेरे पर आने की संभावना नहीं है।

गोविन्द का अनुमान सही नहीं निकला। अगले दिन वह महिला पूछते- पूछते उनके डेरे पर पहुँच गयी। उसके साथ एक नवयुवती महिला और थी जो सफेद वस्त्र पहने हुए थी। उसका परिवेष देखकर उसके बाल-विधवा होने का सन्देह होता था। उस मारवाड़ी महिला ने आकर सन्त को प्रणाम किया और उनसे गोविन्द की ओर इशारा करके निवेदन किया कि इन्हें मैं अपने

साथ ले जाना चाहती हूँ। इनके निवास आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था मैं करूँगी। आप इन्हें मेरे साथ जाने की आज्ञा दे दें।

गोविन्द की परीक्षा इतने मात्र से ही समाप्त नहीं हुई। महिला की बात सुनकर वृद्ध सन्त ने जो उत्तर दिया उससे यह परीक्षा और अधिक जटिल हो गई। गोविन्द भगवत् प्राप्ति के मार्ग पर निकले थे। इस मार्ग में कनक और कामिनी ये ही प्रमुख बाधाएँ मानी जाती हैं। रसिक सन्त श्रीहरिराम व्यासजी ने लिखा है—

व्यास कनक अरु कामिनी ये लम्बी तलवार।
चले थे हरि भजन को बीचहिं लीन्ही मार॥

सन्त श्रीमलूकदास जी ने कहा है—

इक कंचन इक कामिनी दुर्गम घाटी दोय।

कंचन-कामिनी की इन दोनों दुर्गम घाटियों को पार किए बिना कोई परमार्थ प्राप्ति नहीं कर सकता। गृहत्याग के बाद गोविन्द इन्हीं परीक्षाओं से गुजर रहे थे। इसके पूर्व एक परीक्षा वे दे ही चुके थे जिसमें मुख्य रूप से कंचन अर्थात् धन का आकर्षण विद्यमान था। शहदरा स्टेशन पर घटी घटना को पाठक पढ़ ही चुके हैं। किस प्रकार एक पंजाबी दम्पति गोविन्द को अपने घर ले गए और वे उन्हें अपना दत्तक पुत्र बनाकर अपनी समस्त सम्पत्ति उन को सौंपना चाहते थे इसका उल्लेख वहाँ किया गया है। गोविन्द इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। वे प्रलोभन के बन्धनों को तोड़कर आधी रात को वहाँ से निकल पड़े। अब यह जो घटना काशी में घट रही थी इसमें कामिनी अर्थात् स्त्री की प्रधानता दिखाई देती है। गोविन्द को इस परीक्षा में भी उत्तीर्ण होना था।

बार-बार आग्रह करने पर महिला के निवास से वे यह कह कर चले आए थे कि हमारी टोली के वृद्ध सन्त यदि आज्ञा

दे देंगे तो मैं आपके यहाँ ठहर जाऊँगा। यह कहने के पीछे उनका विचार यह था कि प्रथम तो यह महिला डेरे पर आयेगी ही नहीं और यदि आ भी गई वे सन्त मुझे ऐसी आज्ञा देंगे ही नहीं और उनकी ओट लेकर मैं इस महिला से बच जाऊँगा किन्तु जैसा गोविन्द ने सोचा था ठीक वैसा सब नहीं हुआ। डेरे पर आई हुई महिला का अनुरोध सुनकर उन सन्त ने तटस्थ सा होते हुए अलग ही प्रकार का उत्तर दिया। सन्त ने कहा—अगर इनकी मरजी हो तो इन्हें ले जाओ हमें कोई आपत्ति नहीं है।

अब निर्णय गोविन्द को ही लेना था। साधक के जीवन में ऐसे क्षण उसकी अग्नि-परीक्षा के रूप में ही आते हैं। इसमें उत्तीर्ण होकर ही वह अध्यात्म के मार्ग पर आगे बढ़ सकता है अन्यथा अनुत्तीर्ण होने पर उसकी प्रगति वहीं रुक जायेगी। गोविन्द वृद्ध-सन्त का आश्रय लेकर इस प्रसंग से बचना चाहते थे किन्तु ऐसा नहीं हुआ। अपने विवेक और मनोदशा के अनुसार मारवाड़ी महिला को उन्हें ही उत्तर देना पड़ा। सांसारिक प्रलोभन के इस अवसर पर गोविन्द के भीतर कोई विकार नहीं आया। यह उनके उत्कट वैराग्य का ही परिचायक है। गोविन्द की उपमा उस हंस से दी जा सकती है जो मानसरोवर का लक्ष्य कर नीलगगन में उड़ता चला जा रहा है। मार्ग में पड़ने वाले बरसाती गँदले जलाशय भला उनका चित्त अपनी ओर कैसे खींच सकते हैं? श्रीकृष्ण तो रस के अगाध मानसरोवर हैं उनको पाने के लिए ही गोविन्द घर से निकले थे। फिर वे इन प्रलोभनों में कैसे फँसते? उन्होंने दृढ़ता के साथ उस मारवाड़ी महिला को स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया कि मुझे आपके साथ नहीं जाना है। यह कहकर वे और अधिक वहाँ नहीं रुके और तत्काल डेरे से बाहर चले गए।

इस घटना से गोविन्द अनमने और कुछ दुःखी हो गए। वे भीतर से सजग थे। उनका विवेक उनसे बार-बार कह रहा था कि अब और यहाँ रुकना ठीक नहीं। चन्द्रग्रहण का पर्व सम्भवतः एक दो दिन पूर्व ही हो चुका था। गोविन्द ने अब बनारस छोड़ने का निर्णय ले लिया। डेरे से निकलकर वे सीधे स्टेशन की ओर चल पड़े। यह लगभग ई. सन् १९४२ की बात है। उस काल में गाड़ियों की इतनी बहुतायत नहीं थी जितनी कि आज है। कई घण्टा प्रतीक्षा करने पर किसी दिशा की ओर जाने वाली गाड़ी मिलती थी इसलिए गोविन्द ने निश्चय किया कि जो भी गाड़ी उन्हें सर्वप्रथम मिलेगी उसी में बैठकर अज्ञात दिशा को चले जाएँगे किन्तु जैसे भी होगा शीघ्र बनारस छोड़ देंगे।

स्टेशन पहुँचने पर उन्हें गया की ओर जाने वाली गाड़ी मिली। भगवान् विश्वनाथ को मन ही मन प्रणाम कर वे उस गाड़ी में बैठ गए। गयाधाम हिन्दू समाज में श्राद्ध-कर्म के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ भगवान् गदाधर का एक प्राचीन मन्दिर है। भगवान् गदाधर के वरदान से गयाधाम में श्राद्ध करने पर पितरों की अक्षय तृप्ति होती है। गया पहुँचकर गोविन्द बस्ती में न जाकर बस्ती से थोड़ी दूर जंगल में चले गए और वहाँ एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ गए। वहाँ कुछ देर पश्चात् श्याम रंग का एक स्थूल व्यक्ति आया और गोविन्द से बोला—हे बाबू चाटवो, चाटवो! स्थनीय भाषा के इन शब्दों को समझना गोविन्द के लिए कठिन था। प्रति उत्तर न मिलने पर वह व्यक्ति जान गया मेरी बात नवयुवक साधु की समझ में नहीं आई। अब की बार वह हिन्दी में बोला—सन्त जी कुछ खाओगे! गोविन्द को भूख तो लगी ही थी अतः उन्होंने उत्तर में हाँ कहा। उस व्यक्ति के पास थोड़ा सा सामान था उसमें से उसने चिवड़ा और दही निकाल कर

गोविन्द को दिया। वे दही चिवड़ा खाने लगे, इस बीच इन दोनों में कुछ परिचयात्मक बातें भी होने लगीं। यह जानकर कि गोविन्द गया में नये हैं वह व्यक्ति उन्हें फल्गु नदी के किनारे स्थित एक हनुमान जी के मन्दिर में ले गया। वहाँ सब प्रकार की सुविधाएँ थीं। अतः गोविन्द उस मन्दिर में रुक गये।

गया निवास की अवधि में गोविन्द ने भजन-साधना का अपना एक क्रम निर्धारित कर लिया। दिनचर्या के निश्चित किए गए नियमों के अनुसार भोजन-शयन आदि सभी कार्य होने लगे। मन्दिर में दर्शनार्थियों का आना-जाना था तथा आसपास कुछ बस्ती भी थी, तो भी गोविन्द जन सम्पर्क से दूर रहते हुए उस मन्दिर में एकान्त साधना करने लगे। इस प्रकार कई दिन बीत गए। मन्दिर में कुछ कमरे तथा एक बरामदा भी था। बरामदे से संलग्न एक कमरे में वे रहा करते।

कुछ दिनों पश्चात् वहाँ के स्थानीय निवासी गोविन्द को जानने लगे। उनके उत्कट वैराग्य की और भजन-साधनमय जीवन की चर्चा लोगों में होने लगी। मन्दिर में आने वाले श्रद्धालु गोविन्द के प्रति भाव रखते थे। उन्हें किस वस्तु की कब आवश्यकता है तदनुसार अन्न, जल, वस्त्र आदि की सेवाएँ लोग श्रद्धापूर्वक करते। धीरे-धीरे गोविन्द का प्रभाव फैलने लगा। लोग उन्हें प्रचुर द्रव्य भी भेंट करते किन्तु गोविन्द ने यह नियम बना लिया था कि वे रुपये पैसे का स्पर्श नहीं करेंगे। इसलिए वह भेंट द्रव्य मन्दिर सेवा के लिए दे दिया जाता।

गया धाम में पुत्र प्राप्ति हेतु आशीर्वाद

सन्त-महात्माओं की सेवा करने के पीछे लोगों में अनेक बार लौकिक कामनाएँ भी होती हैं जिन्हें वे सन्त के आशीर्वाद से

प्राप्त करना चाहते हैं। मन्दिर के निकट की बस्ती में लखन नामक एक व्यक्ति निवास करते थे। विवाह के कई वर्ष पश्चात् भी वे निःसंतान थे, अतएव उन्होंने दूसरा विवाह किया। लखन बाबू का प्रारब्ध प्रबल था, द्वितीय विवाह के बाद भी उन्हें सन्तान नहीं हुई। उनका परिवार गोविन्द के प्रति श्रद्धा रखता था। एक दिन उनकी द्वितीय पत्नी अपनी माँ के साथ उनके दर्शन के लिए आई। गोविन्द के समक्ष उसने अपनी बेटी के निःसंतान होने का दुःख व्यक्त किया और प्रार्थना की कि वे इसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दें।

गोविन्द अपने भजन-साधन की धुन में रहते थे। उनकी दृष्टि अपने लक्ष्य पर टिकी रहती। घर-गृहस्थी की सांसारिक प्रवृत्तियों का तो वे त्याग करके ही आए थे। जागतिक उपलब्धियों का उनकी दृष्टि में कोई महत्त्व भी नहीं था इसलिए अपनी बेटी के लिए आशीर्वाद माँगने वाली उस महिला के अनुरोध को उन्होंने उपेक्षित भाव से सुन लिया। किन्तु उस महिला ने पुनः-पुनः वही बात दुहराई। लखन बाबू का परिवार गोविन्द के प्रति श्रद्धावान था। उनकी त्याग-तपोमयी जीवन शैली और अन्तर्मुखी साधन परायणता को वे लोग परखते रहते। उन्हें विश्वास था कि यदि ये सन्त अपनी कृपा दृष्टि डाल दें तो हमारी अभिलाषा अवश्य पूर्ण हो जाएगी। महिला के बार-बार कहने पर गोविन्द का हृदय द्रवित हो गया किन्तु फिर भी वे किसी को पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद कैसे दे देते? उन्होंने सोच-विचार कर उस महिला से कहाँ- माताजी! आप श्रीभगवान् के मंगलमय विधान तथा उनकी अमोघ कृपा शक्ति पर विश्वास रखिए और निश्चिन्त रहिए। इस प्रकार समझा-बुझाकर उन माँ-बेटी को गोविन्द ने घर भेजा।

अपने आश्वासन में गोविन्द ने भगवान् की अमोघ कृपाशक्ति पर विश्वास रखकर निश्चिंत होने की बात कही थी। नियति ने इसे सन्त के आशीर्वाद के रूप में परिणत कर दिया। श्रीनाभादास जी रचित भक्तमाल ग्रन्थ में कहा गया है कि श्रीठाकुर जी चारों युगों में अर्थात् सदा सर्वदा अपने भक्त की वाणी को सत्य बना देते हैं–

चारों युग चतुर्भुज सदा भक्त गिरा साँची करन॥"

छप्पय सं. ५२

इस छप्पय में श्रीनाभा जी ने ऐसे अनेक भक्तों का संक्षिप्त परिचय दिया है जिनके मुख से परिस्थितिवशात् कोई ऐसी बात निकल गई जो देशकाल के अनुसार उस समय उतनी वास्तविक नहीं थी अथवा भक्त के मुख से निकली हुई इस बात का प्रत्यक्ष में कोई चिह्न उपलब्ध नहीं था, केवल अपने दृढ़ विश्वास के आधार पर ही ऐसा कहा गया था परन्तु भक्तवत्सल श्रीभगवान् ने प्रकृति के नियमों में उलट-फेर कर भक्तों के मुख से निकली हुई बातों को सर्वथा सत्य कर दिया। गयाधाम में गोविन्द के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। भगवत् कृपा ने गोविन्द के मुख से सहज निकले हुए वचनों को उनके आशीर्वाद का रूप दे दिया। लखन बाबू की छोटी पत्नी गर्भवती हुई और समयानुसार उन्हें पुत्र (सन्तान) की प्राप्ति हुई।

गया निवास की अवधि की एक अन्य घटना भी यहाँ उल्लेखनीय है जो कई वर्ष बाद स्वयं गोविन्द ने सुनाई थी। प्रोफेसर राधामोहन नामक एक व्यक्ति गोविन्द के विषय में किसी से सुनकर उनसे मिलने के लिए आया। प्रथम दर्शन से ही राधामोहन के मन में गोविन्द के प्रति श्रद्धाभाव का ऐसा उन्मेष हुआ जो फिर जीवन भर बना रहा। कुछ दिनों के अन्तर से वह

बार-बार गोविन्द से मिलने आने लगा। उसकी माता का नाम बच्ची देवी था। वह भी राधामोहन के साथ प्रायः गोविन्द से मिलने आया करती थी। ऐसा अनुमान होता है कि राधामोहन गया में नहीं रहते थे अपितु आस-पास के किसी शहर में उनका निवास था।

घटना क्रमांक ९

विलक्षण पहेली

एक दिन राधामोहन की माँ बच्ची देवी गोविन्द से मिलने आईं। इसके पूर्व वे जब भी आती थीं अपने पुत्र के साथ ही आती, किन्तु आज वे अकेली ही आई थीं। गोविन्द ने उन्हें जल पिलाया और उनसे पूछा कि आज आप अकेली कैसे आईं? बच्ची देवी ने इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया। उसे थका हुआ जानकर गोविन्द ने अपने कक्ष के बाहरी बरामदे में उसे विश्राम करने के लिए भेज दिया। बच्ची देवी बरामदे में जाकर विश्राम करने लगीं। कुछ देर पश्चात् गोविन्द उससे समाचारों को जानने के लिए बरामदे की ओर गए किन्तु वह वहाँ नहीं थी। बरामदे के निकट ही श्रीहनुमान जी का मन्दिर था। गोविन्द उसे खोजने के लिए वहाँ गए किन्तु वहाँ भी वह नहीं मिली। फिर मन्दिर से बाहर आकर इधर-उधर जहाँ तक सम्भव हो सका उसे खोजा किन्तु बच्ची देवी दिखाई नहीं दी। अब गोविन्द को कुछ चिन्ता होने लगी। उस महिला का अकेले ही आना और कुछ देर के पश्चात् बिना कुछ सूचना दिए चले जाना, इससे गोविन्द चिन्तित हो गए। उन दिनों मात्र पत्राचार ही सम्पर्क का प्रमुख साधन था। गोविन्द ने तत्काल राधामोहन को एक पत्र लिखा जिसमें बच्ची देवी के आने और फिर बिना कहे चले जाने की सारी घटना लिखकर चिन्ता प्रकट की।

पत्र प्राप्त होते ही राधामोहन अपनी माँ बच्ची देवी को लेकर गोविन्द के पास गयाधाम आए। वहाँ आकर राधामोहन ने जो कहा वह सर्वथा चौंकाने वाली बात थी। उसने बताया कि मेरी माँ कहीं भी नहीं गई थी वह घर में ही थी। जिस दिन आप उसके गया आने की बात कह रहे हैं उस दिन भी वह परिवार के साथ घर पर ही थी। इस प्रकार बच्ची देवी का गया आना एक पहेली बनकर रह गया। वह राधामोहन के साथ पहले भी कई बार आ चुकी थी इसलिए उसे पहचानने में कोई भ्रम हो इसकी भी सम्भावना नहीं है। गोविन्द ने उसे बच्ची देवी के नाम से सम्बोधित किया और परिवार की कुशलक्षेम भी पूछी, यदि वह कोई अन्य महिला होती तो अपने नाम व परिवार के विषय में हुए भ्रम का उसी समय निराकरण कर देती किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हमें यह घटना इतनी ही प्राप्त है जो वर्षो बाद गोविन्द ने बताई थी। वे स्वयं इस पहेली को कैसे हल करते थे इसकी हमें कोई जानकारी नहीं है। परन्तु चरित्र लेखन के इस प्रयास में इस घटना को यहीं छोड़ देना भी उचित नहीं होगा। अतएव अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार हम इस पहेली को हल करने का यथामति प्रयास कर रहे हैं।

धर्मग्रन्थों के अनुसार यह भौतिक जगत् जिसमें हम रह रहे हैं ईश्वर रचित सृष्टि इतनी ही नहीं है। भौतिक जगत् तो उस सृष्टि का सबसे स्थूल ऊपरी खोल है इसके भीतर सृष्टि के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अनेक स्तर हैं जो हमें चर्म चक्षुओं से दृष्टिगोचर नहीं होते। जब वे हमें दिखाई ही नहीं देते तो हम अपनी इच्छा से उनमें प्रवेश कर सके यह तो असम्भव ही है। सृष्टि के इन सूक्ष्म स्तरों में देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, योग-सिद्ध पुरुषों तथा ऋषियों आदि का निवास रहता है। जगत् का मानव इन्हें प्रत्यक्ष रूप से

नहीं जान सकता। वह केवल इनके विषय में पढ़-सुन कर परोक्ष रूप से जान सकता है। परन्तु सूक्ष्म स्तरों पर रहने वाले ये अधिकारीगण स्थूल जगत् को अपने ज्ञान तारतम्य के अनुसार प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं। इतना ही नहीं वे जब भी चाहें अपनी सीमाओं के अनुसार स्थूल जगत् में प्रत्यक्ष रूप से आ भी सकते हैं। ऐसे अवसरों पर ये किसी भी परिचित-अपरिचित मानव का अथवा पशु-पक्षी का रूपधारण कर स्थूल जगत् में उपस्थित हो सकते हैं।

सभी शास्त्रों ने तथा सन्त-महापुरुषों ने मानव शरीर को ही भगवत् भजन के लिए उपयुक्त माना है। इस शरीर से ही परमार्थ-साधना करते हुए जीव मुक्ति को प्राप्त हो सकता है। अन्य योनियों में यह सम्भव नहीं है। सृष्टि के अदृश्य स्तरों में रहने वाले ये देवता आदि जब किसी बड़भागी मनुष्य को अनन्यनिष्ठा के साथ भगवद्-भजन के मार्ग पर चलता हुआ देखते हैं तब वे उसका प्रत्यक्ष दर्शन एवम् सान्निध्य लाभ पाने के लिए कोई रूपधारण कर कभी-कभी उसके निकट आते हैं। अपना अभीष्ट पूरा होने पर ये देव आदि विभूतियाँ पुनः स्थूल जगत् से उन सूक्ष्म स्तरों में चली जाती हैं जहाँ से ये आई थीं। यहाँ गोविन्द और बच्ची देवी के जिस घटना-प्रसंग का वर्णन किया गया वह इसी प्रकार का प्रतीत होता है। गोविन्द की भगवत् परायणता एवम् भजन-निष्ठा से आकृष्ट होकर सूक्ष्म जगत् की ही कोई विभूति बच्ची देवी का रूप धारण कर उनके पास आई थी और उनका दर्शन लाभ प्राप्त कर पुनः चली गई।

ब्रजभूमि को लक्ष्य बनाकर गोविन्द घर से निकले थे। प्राण प्यारे कन्हैया की प्राप्ति उनकी नित्यलीला भूमि ब्रज वृन्दावन में ही होगी ऐसा मानकर वे चले किन्तु आगे के घटना क्रम में उन्हें

कहाँ-कहाँ पहुँचा दिया यह हम पिछले पृष्ठों में देख ही आए हैं। गयाधाम में भी उनका आगमन आकस्मिक रूप से एक घटना प्रसंग के कारण हुआ इसका वर्णन किया जा चुका है। गया में वे कितने समय तक ठहरे इसका निर्णय कर पाना कठिन है। जो कुछ थोड़ी सामग्री हमारे पास उपलब्ध है उससे अनुमान होता है कि उनकी गया निवास की अवधि कुछ महीने की हो सकती है। फिर भी इस विषय में कुछ निश्चित कह पाना कठिन है।

गोविन्द का मन ब्रज-वृन्दावन पहुँचने के लिए अकुला रहा था। गयाधाम में मिले श्रद्धालु भक्तों के मोहजाल में वे नहीं पड़ना चाहते थे। वहाँ और अधिक रहना जनसम्पर्क को बढ़ावा दे सकता था। इन सब कारणों से गोविन्द ने वृन्दावन जाने का दृढ़ निश्चय किया जो उनका वास्तविक लक्ष्य था। एक दिन किसी से बिना कहे वे गया से निकल पड़े। उस समयावधि में रेल सुविधाओं का उतना विस्तार नहीं था इसलिए एक ही गाड़ी द्वारा इतनी यात्रा सम्भव नहीं थी तदनुसार जहाँ-तहाँ गाड़ियाँ बदलते हुए गोविन्द वृन्दावन पहुँचे। उनके वृन्दावन आगमन का समय निश्चित कर पाना कठिन है इसका कारण यह है कि उनकी गया निवास की अवधि निर्धारित नहीं है। इसलिए अनुमान को ही आधार बनाया जा सकता है। जैसा कि हम पूर्व में कह आये हैं कि गृहत्याग के समय गोविन्द की आयु १५-१६ वर्ष की थी। उनका जन्म ई. सन् १९२४ निश्चित है। तदनुसार सन् १९३९-४० ई. में उन्होंने गृहत्याग किया। हिमालय के सिद्धि योगियों के निकट वे एक वर्ष रहे। लगभग इतनी ही अथवा इससे कुछ कम अवधि गया निवास की रही ऐसा अनुमान किया जा सकता है। शहदरा (पंजाब) और बनारस के प्रसंगों को इनमें

मिलाने पर अनुमान होता है कि गृहत्याग के लगभग २७-२८ माह पश्चात् ही गोविन्द वृन्दावन आए होंगे।

श्रीधाम वृन्दावन आगमन

गोविन्द ई. सन् १९४२ में वृन्दावन आए तब उनकी आयु १८ वर्ष की थी।

आज गोविन्द का मनोरथ पूर्ण हुआ। पिछले कई वर्षों से वे नट नागर श्रीकृष्ण और उनके नित्य धाम श्रीवृन्दावन का चिन्तन करते रहते थे। घर से निकलते समय भी उनका लक्ष्य वृन्दावन ही था। किन्तु उसके बाद के घटनाक्रम से उन्हें यहाँ आने में कुछ विलम्ब हुआ। श्रीवृन्दावन के दर्शन कर वे परम आनन्दित हुए। उनका हृदय कृष्ण कृपा का अनुभव कर गद्गद् हो गया। जैसे किसी धनहीन को विशाल धनराशि मिलने पर उसे अह्लाद का अनुभव होता है ऐसा ही अनुभव गोविन्द को वृन्दावन आने पर हुआ। उनके हृदय में परमानन्द की बाढ़ सी आ गई और उनका शरीर रोमांचित हो गया।

उस समय वृन्दावन में भवनों का उतना विस्तार नहीं था जैसा कि वर्तमान में दिखाई देता है। यहाँ की बस्ती छोटी थी और बस्ती का बाहरी भाग बाग-बगीचों अथवा बन प्रदेश से घिरा हुआ था। परिक्रमा मार्ग कच्चा तथा दोनों ओर वृक्ष लताओं से सुशोभित था। गोविन्द जब वृन्दावन आए तब यहाँ बिजली की सुविधा नहीं थी, स्थान-स्थान पर शासन की ओर से लालटेन टँगी रहती थी जिन्हें सन्ध्या के समय शासकीय कर्मचारी तेल डालकर जलाया करते।

इस प्रकार कुछ दिन वृन्दावन रहने के पश्चात् वे दर्शन करने के लिये बरसाना चले गए। बरसाना श्रीराधारानी का प्राकट्य

स्थल तथा उनकी लीला-भूमि है। यह ब्रजमण्डल के अन्तर्गत है तथा वृन्दावन से उसकी दूरी लगभग ४५ कि.मी. है। बरसाना में पर्वत के ऊपर श्रीराधारानी का भव्य निजमहल है। उस समय प्रायः पद यात्राएँ ही अधिक होती थीं। गोविन्द भी कच्चे मार्गों से पैदल चलते हुए बरसाना पहुँचे। पर्वत के ऊपर श्रीलाड़ली-लाल के दर्शन कर वे भाव-विभोर हो गए। उसी भावावस्था में उन्होंने पुजारी जी से प्रसाद माँगा। परन्तु पुजारी की ओर से ऐसा उत्तर मिला जिसकी उन्हें आशा नहीं थी। पुजारी ने दो टूक शब्दों में कहा—रुपये देने वालों को ही प्रसाद मिलता है यदि प्रसाद चाहिए तो पहले रुपये भेंट करो। पुजारी से यह उत्तर सुनकर गोविन्द कुछ दुःखी हुए उनके पास रुपया तो था नहीं जो पुजारी को देते। कुछ देर रुककर वे दर्शन करते रहे फिर मन्दिर से निकल कर नीचे जाने के लिए सीढ़ियों के मार्ग से उतरने लगे।

सीढ़ियों से नीचे उतरते समय गोविन्द के चित्त में एक उथल-पुथल हो रही थी। पुजारी के रूखे उत्तर से उनका मन कुछ आहत हो गया। सम्पूर्ण जगत् में तो पैसे वालों की ही कदर होती है किन्तु क्या यहाँ भी पैसे वालों का ही महत्व है? इस विचार से वे अशान्त हो रहे थे। खिन्न मन से मन्दिर की सीढ़ियों से उतरते हुए वे नीचे की ओर जा रहे थे।

पुजारी का कहना भले ही नीरसता लिए हो किन्तु जिनकी सेवा में वे नियुक्त थे वे वृषभानुनन्दिनी श्रीलाड़ली जी और नन्दनन्दन श्रीश्यामसुन्दर दोनों परात्पर रस की साक्षात् मूर्ति हैं। वे भला अपने द्वार से किसी को निराश होकर जाते हुए कैसे देख सकते हैं। श्रीधाम बरसाना में यह ख्याति है कि वहाँ श्रीलाड़ली जी किसी को रात्रि में भूखा नहीं सोने देती हैं। किसी न किसी को प्रेरणा प्रदान कर अथवा अन्य कोई लीला रचकर वे उस

क्षुधित व्यक्ति तक भोजन पहुँचा ही देती हैं फिर चाहे वह व्यक्ति भजन-परायण संत हो अथवा कोई बहिर्मुख संसारी। इस विषय में अनेक उदाहरण हैं। उनमें से एक घटना का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है जो श्रीलाड़ली जी की करुणा और निजजन वत्सलता से सम्बन्ध रखती है। इस घटना का अनेक सन्त-महात्माओं ने वर्णन किया है—

बरसाना यात्रा एवं 'श्रीजी' की भक्तवत्सलता

बरसाना में एक चमार-जाति का व्यक्ति रहता था। वह मजदूरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण किया करता। यद्यपि उस व्यक्ति की आयु अधिक हो चुकी थी लेकिन उसकी परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि उसे विवश होकर मजदूरी का कार्य करना पड़ता था। एक बार उसे नन्दगाँव में मजदूरी प्राप्त हुई। वह प्रतिदिन प्रात: अपना भोजन व जल लेकर नन्दगाँव जाता और अपना कार्य कर बरसाना लौट आता। प्राय: मजदूर अपने साथ भोजन तो ले जाते। जल तो सर्वत्र उपलब्ध हो ही जाता है। परन्तु वह मजदूर पीने के लिए जल भी साथ में ले जाता था। इसका कारण जानने के लिए हमें बरसाना वासियों के पारम्परिक प्राचीन भावों को हृदयंगम करना होगा।

बरसाना और नन्दगाँव ब्रजमण्डल के ये दोनों गाँव एक दूसरे से ८ किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। बरसाना श्रीराधारानी का गाँव है और नन्दगाँव मनमोहन श्रीकृष्ण का। यद्यपि श्रीराधाकृष्ण उपासना के कई दृष्टिकोण हैं। किन्तु ब्रजवासियों की तथा इन दोनों गाँवों के निवासियों की उपासना रीति लोकवत् माधुर्य से परिपूर्ण और परम रसमयी है। इन दोनों गाँवों के निवासी श्रीराधाकृष्ण की अवतार-कालीन लीला के समय से

ही परस्पर एक दूसरे के प्रति सजनता (सम्बन्धी) का भाव रखते आए हैं। नन्दगाँव के निवासी अपने को श्रीठाकुर जी का परिकर मानते हुए वर पक्ष का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार श्रीधाम बरसाना के निवासी स्वयं को श्रीलाड़ली जी का परिकर मानते हुए उस नाते से वधू पक्ष का अभिमान रखते हैं। कुछ बरसाना निवासी श्रीलाड़ली जी को अपनी स्वामिनी एवम् स्वयं को उनकी दासी मानते हुए ब्रजरस जन श्रीलाड़ली जी के प्रति लाली (पुत्री) का भाव रखते हैं। इस प्रकार बरसानावासियों का नन्दगाँव के प्रति लाड़ली जी की ससुराल है यह भाव रहता है।

ऊपर बरसाना निवासी चमार जाति के जिस मजदूर की चर्चा की गई है उसके अन्तर्मन में भी यही भाव दृढ़ता से विराजमान था। वृषभानुनन्दिनी हमारी लाली हैं जो नन्दगाँव के राजा महाराज नन्दराय के पुत्र श्रीश्यामसुन्दर को ब्याही गई हैं। इसी अनूठे भाव से वह भी ब्रज की प्रेममयी उपासना किया करता था। अब जबकि उसे नन्दगाँव में मजदूरी का कार्य प्राप्त हुआ तो भारतीय संस्कृति के अनुसार पुत्री के ससुराल का अन्न-जल ग्रहण करना निषिद्ध होने के कारण वह अपने साथ भोजन व जल ले जाता था।

कई दिन तक चलने वाले इस कार्य में प्रात: नन्दगाँव जाना तथा दिन भर अपना कार्य करके रात्रि के पूर्व ही बरसाना लौट आना यही क्रम चलता रहा। एक दिन कार्य की अधिकता होने से उसे अतिरिक्त काल तक श्रम करना पड़ा। रात्रि हो जाने से अब उसके लिए बरसाना लौटना संभव नहीं था अत: उसे नन्दगाँव में रुकना पड़ा। रात्रि भोजन के लिए उसके पास सामग्री शेष थी किन्तु पीने के लिए जल नहीं बचा था। उसने भोजन तो कर लिया किन्तु जल न होने से वह प्यासा ही रहा। ग्रीष्मकाल

का समय था। प्यास के कारण उसका कण्ठ सूख रहा था। उपासना भाव में वह इतना दृढ़ था कि एक बार भी उसके मन में नन्दगाँव का जल पीने का संकल्प नहीं हुआ।

रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो गया। जैसे-जैसे रात्रि गहन होने लगी प्यास के कारण उसके प्राण भी आकुल होने लगे। प्रखर ग्रीष्मकाल होने से जल के अभाव में उसकी व्याकुलता शनैः शनैः बढ़ने लगी। ऐसी स्थिति में नींद आने की भी कोई संभावना नहीं थी। किन्तु उसका निश्चय दृढ़ था। हम कन्या पक्ष के हैं अतः हम बरसाना वासियों के लिए नन्दगाँव का अन्न जल ग्रहण करना मर्यादा के विपरीत है अपने इसी भाव को हृदय में लिए वह मजदूर शान्त भाव से बैठा रहा। तेज प्यास होने पर भी भाव की दृढ़ता के कारण उसके अन्तर्मन में कोई हलचल नहीं थी। उसके इस आत्मीयता के भाव के कारण श्रीवृषभानु महल में विराजमान श्रीलाड़ली जी के हृदय का करुणासिन्धु उमड़ पड़ा। श्रीकिशोरी जी यह कैसे देख सकती है कि उनके पक्ष का अभिमान रखने के कारण कोई भक्त ग्रीष्मऋतु की मध्यरात्रि में प्यासा रहे। तत्काल वे एक अल्प व्यस्क ग्रामीण बालिका का वेषधारण कर हाथ में जल पात्र लिए हुए नन्दगाँव में वहाँ पहुँची जहाँ वह व्यक्ति बैठा हुआ था।

नीरव रात्रि में एक बालिका जो अपने कोमल हाथ में लोटा लिए हुए थी अपनी ओर आता देखकर वह व्यक्ति कुछ विस्मित हुआ। निकट आकर बालिका ने कहा लो बाबा! मैं तुम्हारे लिए जल लाई हूँ तुम्हें प्यास लगी है न।

बालिका का दर्शन कर और उस की स्नेहपूरित वाणी सुनकर उसका हृदय विगलित हो गया। उसने गद्‌गद् कण्ठ से

उत्तर दिया हाँ लाली! मुझे प्यास तो लगी है किन्तु मैं नन्दगाँव का जल नहीं पीता हूँ।

बाबा! यह जल नन्दगाँव का नहीं है बरसाने का है। मैं बरसाने से ही आई हूँ तुम्हारे लिए जल लेकर।

लाली! तुम बरसाने से आई हो जल लेकर। तो लाओ मैं इसे पी लेता हूँ।

बालिका ने जलपात्र उस मजदूर के हाथ में दिया और वह उसे पीने लगा। आवश्यकता के अनुरूप जल परम शीतल था और उसमें मन-प्राणों को तृप्त करने वाली अनुपम मधुरता थी। जल पीने से उसे पूर्ण तृप्ति का अनुभव हुआ। जल पीकर उसने खाली पात्र बालिका को दिया। और वह बिना कुछ कहे जिस दिशा से आई थी उसी दिशा में लौट गई तथा कुछ ही क्षणों में अदृश्य हो गई।

जब तक वह बालिका सम्मुख थी तब तक वह व्यक्ति कुछ विशेष विचार नहीं कर पाया किन्तु उसके अदृश्य होते ही उसके भीतर विचारों का प्रवाह उमड़ पड़ा। यह घटना जब घटी थी तब बिजली का अविष्कार नहीं हुआ था। चारों ओर मध्यरात्रि का गहन अन्धकार था। जहाँ वह व्यक्ति रुका हुआ था वह क्षेत्र जन शून्य था सर्वत्र नीरवता और स्तब्धता थी। वह व्यक्ति सोचने लगा इस गहन रात्रि में यह सुकुमारी बालिका बरसाने से यहाँ कैसे आ गई? उसे कैसे पता चला कि मैं प्यासा हूँ? और इस निर्जन स्थल पर बैठा हुआ हूँ? यह विचार कर उसके विस्मय का कोई वारापार नहीं रहा। इन प्रश्नों का उत्तर देने वाला वहाँ कोई नहीं था। किन्तु शीघ्र ही उसे अपने भीतर ही इन प्रश्नों का समाधान प्राप्त हो गया। वह समझ गया कि यह बालिका कोई और नहीं श्रीवृषभानु गोप की कुलमणि स्वयं श्रीलाड़िली

श्रीराधाजी थीं। उनकी करुणा का अनुभव कर वह रात्रि भर बैठा हुआ अपने रुदन से वहाँ के नीरव वातावरण को विक्षुब्ध करता रहा। रात्रि बीत गई पर उसका रोना नहीं थमा।

श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के सुललित प्रेमी कवि श्रीभोलानाथ जी (भोरी सखी) ने इस घटना का वर्णन एक पद में इस प्रकार किया है–

कहाँ जो मुख कहि आवत बात।
ऐसी और न बान काहू की सत्य कहौ सो खात॥
सकल लोक चूड़ामणि प्यारो, चरण न सीस नवात।
सो चमार के हेत लिए जल, धावत आधी रात॥

प्रेम की पीर १९४

इस घटना का उल्लेख यहाँ उस प्रसंग में किया गया जिसमें श्रीलाड़ली जी का मन्दिर बरसाना धाम के सेवाधिकारी गोस्वामी जी से गोविन्द ने राजभोग का प्रसाद माँगा किन्तु उन गोस्वामी जी ने रूखा सा उत्तर देते हुए रुपये देने पर ही प्रसाद प्राप्त करने की बात कही। इस व्यवहार से गोविन्द का मन आहत हुआ और वे दुःखी मन से वहाँ से चल दिए। मन्दिर की सीढ़ियों से नीचे उतरते हुए वे यही विचार कर रहे थे कि क्या यहाँ पर भी पैसे वालों की ही कदर होती है? निर्धन को कोई नहीं पूछता। परन्तु श्रीमन्दिर में जो साक्षात् श्रीलाड़ली जी का दरबार है वहाँ तो ऐसा नहीं होना चाहिए। उनका तो नाम ही गरीब-निवाज है फिर यहाँ ऐसा व्यवहार मेरे साथ क्यों हुआ?

इन्हीं विचारों में खोए हुए गोविन्द धीरे-धीरे मन्दिर की सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे। दोपहर का समय होने से उन्हें भूख भी लगी थी। तभी उन्हें पीछे की ओर से कुछ पुकारने का शब्द सुनाई दिया। बाबा! ओ बाबा! इस प्रकार कोई पुकार रहा था।

गोविन्द ने उस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया क्योंकि वहाँ उन्हें कौन पुकारता? उनका किसी से परिचय तो था नहीं जो उन्हें पुकारे। वह स्वर क्रमशः उनके निकट आता चला गया फिर भी उन्होंने पुकारने वाले को पलटकर नहीं देखा। अन्ततः पुकारने वाला व्यक्ति जिसके साथ उसका एक अन्य साथी भी था दोनों ने गोविन्द के अगल-बगल आकर उनका मार्ग रोक लिया। उस व्यक्ति ने कहा अरे बाबा तुमको इतनी बार पुकारा पर तुमने पलट कर नहीं देखा। अब वापस मन्दिर चलो और श्रीजी का प्रसाद पाओ। गोविन्द यह सुनकर आश्चर्यचकित हुए कि थोड़ी ही देर में यह कैसा परिवर्तन हो गया जो मुझे श्रीजी का प्रसाद पाने के लिए आमन्त्रित किया जा रहा है। किन्तु गोविन्द के मन का क्षोभ अभी भी दूर नहीं हुआ वे उस व्यक्ति से बोले कि मेरे पास तो रुपये नहीं हैं और प्रसाद तो रुपये देने वालों को ही मिलता है फिर मैं कैसे चलूँ? गोविन्द का यह वाक्य पूरा हुआ ही था कि उन दोनों व्यक्तियों ने उनकी भुजाओं को पकड़ लिया और उन्हें बलपूर्वक ऊपर मन्दिर में ले गए। वहाँ उन्हें भाव-चाव पूर्वक श्रीजी का राजभोग प्रसाद पवाया गया। पेट भर जाने पर भी वे लोग आग्रहपूर्वक गोविन्द को परोसते रहे।

वे दोनों व्यक्ति कौन थे? और किसके कहने पर गोविन्द को मन्दिर में ले गए तथा उन्हें प्रसाद पवाया, यह सब जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। वस्तुतः इसे जानने की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि बिना जाने ही इन प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट हैं। वृषभानुनन्दिनी श्रीलाड़ली जी के अतिरिक्त इतना स्नेह, इतना वात्सल्य और इतनी पर दुःख कातरता और किस में हो सकती है? प्रसाद न मिलने पर हृदय में क्षोभ लेकर मन्दिर की सीढ़ियों से नीचे उतरने वाले के भावों को उनके अलावा और कौन जान

सकता है? उन्होंने ही दो व्यक्तियों को प्रेरणा देकर गोविन्द को ऊपर बुलवाया और अपने कृपा प्रसाद से उनके मन का क्षोभ दूर कर उन्हें भाव विभोर कर दिया।

गोविन्द की इस प्रथम बरसाना-यात्रा की जो थोड़ी जानकारी हमें प्राप्त हुई है उससे अनुमान होता है कि कुछ दिन तक वे बरसाना रुके रहे और श्रीजी के मन्दिर में इसी प्रकार नित्य प्रति उनकी प्रसाद व्यवस्था होती रही।

इसके पश्चात् गोविन्द बरसाना से प्रेम सरोवर आ गए। यह स्थल बरसाना से नन्दगाँव जाने वाले मार्ग पर है। यहीं राधाकृष्ण का प्रथम मिलन हुआ था। नित्य मिलन स्थली होने से इसे प्रेम सरोवर कहा जाता है। यहाँ गोविन्द कब तक रुके यह ज्ञात नहीं है। इसके बाद वे संकेत वन आए। यह स्थान नन्दगाँव-बरसाना के मध्य में है। संकेत वन श्रीराधाकृष्ण की नित्यलीला भूमि है। गोविन्द जब यहाँ आए तब उनके साथ एक वयोवृद्ध महात्मा भी थे। संकेत वन पहुँचकर वे महात्मा बोले कि मुझे भूख लग रही है कुछ खाने को होता तो इस समय खा लेते। गोविन्द ने कहा महाराज! मेरे पास लाड़िली जी के मन्दिर का प्रसाद तो है किन्तु मैं आपको नहीं दे सकता क्योंकि वह मेरा जूठा है। यह सुनकर महात्मा जी ने कहा कि श्रीजी का प्रसाद हर स्थिति में दिव्य ही होता है। किसी के पा लेने से वह जूठा अथवा अग्राह्य नहीं होता। प्रसाद दिव्य, पवित्र और ग्रहण करने योग्य होता है। इस प्रकार उन महात्मा जी ने गोविन्द को प्रसाद महिमा का बोध कराया फिर दोनों ने मिलकर प्रसाद पाया। इस यात्रा में गोविन्द आसपास की तपोवन आदि कई लीला स्थलियों के दर्शन करने गए। इसके पश्चात् वे पुनः वृन्दावन लौट आए।

जैसा कि हम पूर्व में कह चुके हैं कि गोविन्द के जीवन चरित्र सम्बन्धी जानकारियाँ अधिक प्राप्त नहीं होती हैं। यद्यपि वे कुछ वर्ष पूर्व तक धराधाम पर विराजमान थे तो भी उनके विषय में उपलब्ध सामग्री इतनी कम है कि उसके आधार पर एक व्यवस्थित चरित्र लेखन कर पाना कठिन कार्य है। गोविन्द के वृन्दावन आने के पश्चात् की जानकारियाँ तो और भी कम प्राप्त होती हैं। अपनी वृद्धावस्था में एक बार किसी व्यक्ति के सम्मुख उन्होंने गृहत्याग से लेकर वृन्दावन आगमन तक की कुछ घटनाओं का उल्लेख किया था। जिन्हें उस व्यक्ति ने तत्काल लिपिबद्ध कर लिया। कई वर्ष पश्चात् वह सामग्री हमें प्राप्त हुई जिसका उपयोग यहाँ किया गया है। गृहत्याग से पूर्व की अर्थात् चिन्जी-मकवाल की कुछ घटनाओं को हमने उनके पारिवारिक सूत्रों से प्राप्त किया। परन्तु वृन्दावन आगमन के पश्चात् की सूचनाओं को एकत्रित कर पाने में कठिनाइयाँ आती रहीं। गोविन्द के वृन्दावन निवास की अवधि लगभग ६० (साठ) वर्ष है। इस सुदीर्घ अवधि के उनके परिचय की प्रचुर सामग्री प्राप्त होनी चाहिए किन्तु वह एक चौथाई भी प्राप्त नहीं होती। उनके साक्षात् शिष्यों से तथा उनके सम्पर्क में रहे अन्य लोगों से पूछने पर वे भी अल्प ही जानकरी दे पाते हैं। इन लोगों के द्वारा प्राप्त सूचनाएँ ही यहाँ से आगे के पृष्ठों में लिखे जा रहे चरित्र-लेखन का आधार है। श्रीवृन्दावन-धाम में अनेक वैष्णव सम्प्रदाय अवस्थित हैं। भगवान् श्रीराधामाधव की यह विहार- भूमि वैष्णवता और वैष्णव सम्प्रदाओं के लिए अत्यन्त उर्वरक है। यहाँ अनेक वैष्णव सम्प्रदाय हैं जिनमें से कई अपने प्रचार-प्रसार के कारण बड़े हैं और अन्य कई उस दृष्टि से छोटे हैं। यहाँ के स्थानीय निवासी तथा बाहर से आकर बसने वाले प्रवासी ये सभी प्रायः इन वैष्णव सम्प्रदायों के

अनुयायी हैं। यद्यपि वैष्णव के अनेक लक्षण होते हैं जो उनकी आन्तरिक वैष्णवता के वास्तविक-परिचायक होते हैं तथापि मुख्य रूप से भाल पर उर्ध्वपुण्ड्र तिलक और कण्ठ में तुलसी माला ये दो ही वैष्णव के चिह्न होते हैं। इन दोनों को धारण करने वाले को वैष्णव सम्प्रदाय का अनुयायी माना जाता है और वह वैष्णव कहलाता है।

जैसा कि पूर्व में कहा गया है गोविन्द जब वृन्दावन आए तब वे हिमालय के सिद्ध योगियों के द्वारा प्रदत्त गेरुआ वस्त्र पहने हुए थे। न उनके भाल पर उर्ध्वपुण्ड्र था और ना कंठ में तुलसी माला। इस प्रकार उनका परिवेष किसी वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी का न होकर अन्य मतावलम्बी का प्रतीत होता था। जहाँ तक विभिन्न वैदिक संत सम्प्रदायों की उपासना के पार्थक्य का विषय है तो उस दृष्टि से भी गोविन्द की उपासना पद्धति पूर्णरूपेण वैष्णव मत की थी। इस प्रकार उनकी आन्तरिक उपासना और बाह्य परिवेष दोनों में असमानता थी। इस कारण श्रीवृन्दावन में गोविन्द को अनेक संत-भक्त वैष्णव बनने की प्रेरणा प्रदान करने लगे। श्रेष्ठ पुरुषों से इस बात को बार- बार सुनकर गोविन्द इस पर विचार करने लगे। उन्हें यह बात ठीक जँची, क्योंकि उपासना भाव के अनुरूप ही वेषभूषा, आचार-विचार, आहार-विहार एवम् सत्संग आदि होने से भजन मार्ग में शीघ्र उन्नति होने की संभावना होती है। इन्हीं कारणों से गोविन्द ने वैष्णव सम्प्रदाय का अनुसरण करने का निश्चय किया। अब वे अनुसंधान करने लगे कि किस सम्प्रदाय का अनुसरण किया जाए क्योंकि वृन्दावन में अनेक सम्प्रदाय हैं।

सामान्यतया नवागन्तुक श्रद्धालु भक्त किसी व्यक्ति से प्रेरणा प्राप्त कर अथवा सत्संग श्रवण कर या फिर साहित्य

अध्ययन कर किसी विशिष्ट सम्प्रदाय के प्रति आकृष्ट होकर उसके अनुयायी हो जाते हैं किन्तु गोविन्द ने इस चुनाव के लिए एक निराला ही मानदण्ड अपनाया। वे ध्यानपूर्वक वैष्णव संत-भक्तों के भाल पर सुशोभित उर्ध्वपुण्ड्र तिलक को देखा करते थे। चूँकि वैष्णव सम्प्रदाय अनेक हैं अतः उनके अनुसार तिलक रचनाएँ भी अनेक प्रकार की हैं। जो वैष्णव जिस सम्प्रदाय का अनुयायी होता वह अपने भाल पर उसी की तिलक रचना करता है। यहाँ तक कि किन्हीं सम्प्रदायों में तो एक सम्प्रदाय के ही कई अवान्तर तिलक भेद हैं। गोविन्द इन सब तिलकों को ध्यान से देखा करते थे। अन्तर्यामी श्रीठाकुर जी की प्रेरणा से उन्होंने यह निश्चय किया कि जो तिलक मुझे सर्वाधिक आकृष्ट करेगा मैं उसी सम्प्रदाय का अनुसरण करुँगा। परम्परा को चुनने का यह ढंग बिल्कुल नया और अनूठा था।

वैष्णव मान्यताओं के अनुसार तिलक को श्रीभगवान् के चरण-कमलों का ही स्वरूप माना गया है। सम्भवतः इसीलिए तिलक को स्वरूप कहने का भी प्रचलन है। ग्रन्थों में तिलक को हरि मन्दिर भी कहा गया है–

"विचित्र हरिमंदिरं न रचयन्ति भालस्थले"

श्रीराधासुधानिधि श्लोक-८१

हरि मन्दिर कहने का भाव यह है कि तिलक में श्रीप्रभु का निवास है। निष्कर्ष यह है कि तिलक सम्प्रदाय परम्परा को सूचित करने वाला मात्र रेखांकन नहीं है अपितु वैष्णव के भाल पर देदीप्यमान तिलक साक्षात् भगवान् श्रीहरि का निवास मन्दिर है। तिलक-रचना के द्वारा सम्प्रदाय के चयन की गोविन्द की यह युक्ति इन दृष्टियों से आध्यात्मिक और सर्वथा अर्थपूर्ण प्रतीत होती है। भाव यह है कि वैष्णव मात्र के भाल पर भिन्न-भिन्न

आकृतियों में विराजमान श्रीभगवान् अपनी जिस आकृति
द्वारा भी आकृष्ट करेंगे उसमें निश्चय ही मेरा परम हित
परमार्थपथ में रुचि की विविधता के कारण ही उपासना
तत्संबंधी भावों का विकास होता है। रुचि की यह विविधता
अंशों में प्राचीन संस्कारों पर आधारित होती है। गोविन्द
आशय यहाँ यह प्रतीत होता है कि मेरे लिए मेरे प्राचीन
संस्कारों के अनुसार जो उपासना प्रणाली उपयुक्त होगी, भिन्न
भिन्न तिलकों के रूप में विद्यमान प्रभु अपने उसी रूप से मुझे
आकृष्ट करेंगे। गोविन्द की यह युक्ति पूर्णतः शरणागति
समर्पण पर आधारित है।

अब गोविन्द वैष्णवों के भाल पर सुशोभित तिलक
विशेष रूप से दर्शन करने लगे। इसके साथ ही उनके अन्दर
आर्त पुकार भी बनी रहती कि "हे नाथ! मुझे आकर्षित
शीघ्र ही मेरा पथ प्रदर्शित करने की कृपा करें। भक्तवत्सल
श्रीभगवान् ने शीघ्र ही गोविन्द की पुकार को सुन लिया और
पर अनुग्रह किया। गोविन्द का मन अब एक विशेष तिलक-रचना
की ओर बार-बार खिचने लगा। श्रीवृन्दावन की परम पावन
से अंकित किया जाने वाला यह तिलक नासा मूल से प्रारम्भ
होकर भाल के उर्ध्व भाग तक दो रेखाओं के रूप में है। इसके
साथ ही भ्रकुटियों के कुछ ऊपर आज्ञाचक्र स्थल पर श्याम
की मृत्तिका "श्याम श्री" से एक मनोहर विन्दु इस में रहता है।
यह तिलक श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय का है जिस के प्रवर्तक
प्रेमरसावतार श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु पाद हैं।

सामान्यतया वैष्णवों के चार सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं। इनके
नाम हैं श्री, रुद्र, ब्रह्म और सनकादि। इन चारों से प्रत्येक की
एक-एक स्वतंत्र शाखा भी कालक्रमानुसार विकसित हुई। इस

प्रकार हर सम्प्रदाय अपने मूल रूप में तथा एक स्वतंत्र शाखा के
रूप में इस प्रकार दो रूपों में विभक्त हो गया। अतएव वैष्णवों के
उक्त चार सम्प्रदाय आठ रूपों में विद्यमान होकर वर्तमान में जन
समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं। वैष्णवों के इन सम्प्रदायों के
अतिरिक्त भी अनेक सम्प्रदाय हैं जो उक्त ४ या ८ सम्प्रदायों से
भिन्न हैं किन्तु अपने वैष्णवोचित सिद्धान्त, उपासना और सदाचार
के कारण वैष्णव सम्प्रदाय ही माने जाते हैं और उक्त ४ या ८
सम्प्रदायों के संगठित स्वरूप के साथ विधिवत् संलग्न भी हैं।

श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय भी एक ऐसा ही सम्प्रदाय है
जो वैष्णव के ४ या ८ सम्प्रदायों में परगणित न होता हुआ भी
उनके संगठन का अविभाज्य अंग है और उनसे एकात्मरूप से
संलग्न है। इसके संस्थापक श्रीहरिवंश महाप्रभु ने श्रीराधा चरणों
की प्रधानता वाली महामधुर युगलोपासना का प्रवर्तन किया था
जो इस सम्प्रदाय का मुख्य सैद्धान्तिक आधार है।

श्रीसद्गुरु की प्राप्ति

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि गोविन्द के चित्त को
राधावल्लभीय तिलक ने विशेष रूप से आकर्षित किया। इसके
पश्चात् गोविन्द का श्रीराधावल्लभ मन्दिर में प्रधानरूप से आना
जाना हो गया। ठाकुर श्रीराधावल्लभलाल श्रीहरिवंश महाप्रभु के
कर कमलों से सेवित हैं और इस सम्प्रदाय के आराध्य देव हैं।
उनके श्रीमन्दिर की सेवा श्रीहरिवंश महाप्रभु के वंशजों द्वारा
होती है जो गोस्वामी कहलाते हैं। गोविन्द के समय मन्दिर के
प्रधान सेवाधिकारी गोस्वामी श्रीरूपलाल जी थे। गोविन्द ने अपनी
अन्तः प्रेरणा के आधार पर इन्हीं गोस्वामी श्रीरूपलाल जी से
विधिवत् मन्त्रदीक्षा ग्रहण की। गोस्वामी श्रीरूपलाल जी एक

प्रभावशाली आचार्य थे और श्रीराधावल्लभ मन्दिर के तिलकाय अधिकारी थे। इस प्रकार गोविन्द श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के विधिवत् अनुयायी बन गए और श्रीहित हरिवंश महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित श्रीराधाचरण प्रधान रसोपासना में प्राणपन से जुट गए।

गोविन्द अब गेरुआ वस्त्र न पहन कर वैष्णव समाज में प्रचलित श्वेतधवल वस्त्र धारण करने लगे। भाल पर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, कण्ठ में दुलरी-तुलसीमाला एवम् शरीर पर वैष्णव विरक्त साधु का परिधान, इस प्रकार वृन्दावन के वैष्णव समाज में गोविन्द एक नवागन्तुक साधु के रूप में सुशोभित हुए। परन्तु अभी भी परम्पराओं के सम्यक् निर्वाह करने के लिये गोविन्द को एक विधि की और आवश्यकता थी। वह विधि है विरक्त वैष्णव दीक्षा। यह विधि मन्त्र-दीक्षा से पृथक् होती है। विरक्त दीक्षा मंत्र प्रदाता गुरु से भी ग्रहण की जा सकती है अथवा अन्य किसी विरक्त आचार्य से भी ली जा सकती है। गोविन्द ने अब विरक्त वेष-दीक्षा लेने के लिए किसी निवृत्ति परायण सन्त को ढूँढ़ना प्रारम्भ कर दिया जिन पर वे पूर्ण श्रद्धाभाव से समर्पित हो सकें। जिस प्रकार गोविन्द ने सम्प्रदाय चयन के लिए तिलक आकृति को अपनी अन्त: प्रेरणा के अनुसार मानदण्ड बनाया उसी प्रकार वेष प्रदाता गुरु को समर्पित होने के लिए उन्होंने पूर्ण वैराग्य और भजनपरायणता को आधार बनाया। उनका विचार था कि वेष प्रदाता सन्त में विरक्त साधु जीवन के त्याग, वैराग्य, तितिक्षा आदि समस्त सद्गुण विराजमान होना अनिवार्य है और ऐसे ही सन्त का दर्शन होने पर मैं उनसे विरक्त वेष ग्रहण करूँगा। यद्यपि ये समस्त सद्गुण श्रीवृन्दावन के आदरणीय साधु-समाज में सर्वत्र पाए जाते हैं तथापि गोविन्द ने अपने अन्तर्यामी श्रीठाकुर जी की प्रेरणा को प्रमाण मानते हुए यह अन्वेषण प्रारम्भ कर दिया।

उस समयावधि में बाबा श्रीनवेलीशरण जी महाराज नामक एक वीतराग सन्त वृन्दावन में निवास किया करते थे। वे श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। बुन्देलखण्ड के महोबा जिले के अन्तर्गत एक चरखारी नामक रियासत है। चरखारी को बुन्देलखण्ड का कश्मीर कहा गया है। बुन्देलखण्ड के इतिहास में चरखारी राजवंश की शौर्य गाथाओं का उल्लेख आता है। बाबा श्रीनवेलीशरण जी का जन्म चरखारी के राजवंश में हुआ था। राजकुमारों में पाई जाने वाली बहिर्मुखता और अभिमान का इनमें बाल्यकाल से ही अभाव था। इसके विपरीत बचपन से ही वे विनम्र अन्तर्मुख और शान्त स्वभाव के आचार्य थे। ११ वर्ष की उम्र में ही वे चरखारी छोड़कर वृन्दावन आ गए। कुछ समय पश्चात् ही उन्होंने श्रीराधावल्लभ मन्दिर के सेवाधिकारी श्रीरूपलाल गोस्वामी से मंत्र दीक्षा ग्रहण की और उसके पश्चात् परम पूज्य बाबा श्रीसन्तदास जी से विरक्त वेष प्राप्त कर वे त्याग, वैराग्यपूर्वक अनवरत भजन-साधन में जुट गए। विरक्त संस्कार होने पर उनका नाम बाबा नवेलीशरण पड़ा।

बाबा के विषय में बहुत अधिक जानकारियाँ प्राप्त नहीं होती हैं इसका मुख्य कारण उनकी आत्मसंगोपन प्रकृति ही प्रतीत होती है जो सभी सन्तों का सहज स्वभाव होता है। कई वर्षों तक बाबा मदनटेर नामक स्थान पर भी रहे। यह स्थान परिक्रमा मार्ग में बाराह घाट के निकट है। मदनटेर निवास की अवधि में उन्होंने साधु सेवा का अपूर्व निर्वाह किया। उस जमाने में आज जितने आश्रम या अन्नक्षेत्र नहीं थे। इस कारण यहाँ निवास करने वाले अभ्यागत साधु-सन्तों की और वृन्दावन में आने वाले नये विरक्त सन्तों की भोजन-प्रसाद के द्वारा समुचित सेवा की जा सके इस विचार से बाबा ने मदनटेर पर प्रसाद-सेवा

का कार्य प्रारम्भ किया। सन्तों के प्रति बाबा की निष्ठा उनकी पवित्रतम जीवन शैली का ऐसा अद्भुत प्रभाव लोगों पर पड़ा कि दिन प्रतिदिन अधिक से अधिक श्रद्धालु सेवा में सहयोग देने के लिए बाबा से जुड़ने लगे। इसके परिणाम स्वरूप मदनटेर पर सन्त सेवा का निरन्तर विस्तार होता चला गया। उस समय श्री में श्रीवृन्दावन में मदनटेर साधु सेवा का प्रथम अग्रणी स्थान माना जाता था। ऐसा निरन्तर अनेक वर्षों तक चलता रहा। ऐ सब होते हुए भी बाबा अपने त्याग वैराग्य और भजन निष्ठा के प्रति सजग बने रहे प्रतिदिन होने वाली विपुल साधु सेवा और लोगों का आवागमन बने रहने पर भी बाबा अन्तर्मुख होकर अपने भजन-साधन में लगे रहते थे। उन्होंने सन्त-सेवा को कभी दम्भ अथवा मान-प्रतिष्ठा का साधन नहीं बनने दिया। दान दाताओं को आकृष्ट करने के लिए कोई क्रिया उनके द्वारा कभी नहीं होती थी फिर भी सन्त सेवा का विस्तार मदनटेर पर होता चला गया। विनीतभाव से सन्तों को भोजन-प्रसाद पवाकर वे अपने इस सेवा कर्म को श्रीराधावल्लभलाल के चरणों में समर्पित कर दिया करते थे।

कई वर्षों तक ऐसा चलता रहा फिर समय ने करवट ली। इस कारण बाबा वृन्दावन से लगभग ४५ कि.मी. दूर स्थित शेरगढ़ नामक स्थान पर चले गये। वहाँ वे कितना समय रहे यह ज्ञात नहीं है। अन्तत: कुछ लोगों के आग्रह पर वे पुन: वृन्दावन आ गये और श्रीराधावल्लभलाल जी के मन्दिर में निवास करने लगे। मन्दिर परिसर में ही बाबा श्रीनवेलीशरण जी महाराज ने अपनी भौतिक देहत्याग कर श्रीराधावल्लभलाल की नित्य सेवा को प्राप्त किया।

गोविन्द जब किन्हीं विरक्त सन्त से साधु वेष दीक्षा लेने के लिए उत्सुक थे तब बाबा महाराज मदनटेर पर निवास किया करते थे। पूज्य बाबा अपने उदात्त गुणों के कारण सभी के आदरणीय थे। शीघ्र ही गोविन्द भी उनके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखने लगे। इस संयोग को श्रीराधावल्लभ लाल की अहैतुकी कृपा मानकर गोविन्द ने पूज्य बाबा से विरक्त दीक्षा लेने का निश्चय किया। बाबा से कृपापूर्वक अनुमति मिलने पर वहाँ उपस्थित संतों के सान्निध्य में गोविन्द का दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ। यथा समय वेदों द्वारा निर्देशित आश्रम व्यवस्था के अनुसार विरक्त दीक्षा चतुर्थ आश्रम अर्थात् संन्यास आश्रम में प्रवेश के लिए होती है। संन्यास आश्रम में प्रवेश को नूतन जन्म के समान ही माना जाता है। प्राचीन इच्छाओं, संस्कारों और प्रवृत्तियों को सर्वथा मिटाकर केवल श्रीभगवान् की प्राप्ति के लिये पूर्णतत्परता के साथ समर्पित होना यही विरक्त साधुजीवन का आदर्श है।

संन्यास आश्रम में प्रवेश के समय की जाने वाली पूजा विधियों में दीक्षा लेने वाले के श्राद्ध आदि कर्म भी कराये जाते हैं जो मृत्यु के पश्चात् सम्पन्न होते हैं। इससे स्पष्ट है कि साधु जीवन में प्रवेश एक नूतन जन्म ही है। इसमें दीक्षित होने पर एक नये ही व्यक्तित्व का प्रादुर्भाव होता है जिसका नाम और गोत्र भी नया होता है। इस विधि का पालन करते हुए साधु वेषधारी को गुरु द्वारा नया नाम प्रदान किया जाता है तदनुसार बाबा श्रीनवेलीशरण जी ने भी अपने नूतन शिष्य गोविन्द को राधावल्लभशरण यह नाम प्रदान किया। वृन्दावन के वैष्णव समाज में साधु के नाम के आगे बाबा शब्द लगाने की प्रथा है। अतएव गोविन्द का नया नाम हुआ बाबा श्रीराधावल्लभशरण। आगे चलकर उनके शिष्य एवं श्रद्धालु उन्हें महाराज जी के नाम

से सम्बोधित करते थे। नाम परिवर्तन के साथ ही हम भी ... चरित्र लेखन में उनके पूर्व गोविन्द नाम को यहीं छोड़ रहे हैं। आगे के पृष्ठों में उनका नया नाम श्रीराधावल्लभशरण जी अथवा बाबा या महाराज जी निर्देश से सम्बोधित किया जायगा।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी ने वृन्दावन निवास की अपनी प्रारम्भिक अवधि सन्त निवास नामक स्थल पर व्यतीत की है। सन्त निवास रमणरेती क्षेत्र में है यहाँ एक दूसरे से संलग्न अनेक कुटियायें हैं जिनमें सन्तजन रहते हैं। मिली जानकारी के अनुसार बाबा इस संत निवास में अनेक वर्षों तक रहे। इस समयावधि में वे निरन्तर अपने भजन-साधन में लगे रहे। निवृत्ति परायणता और एकान्त सेवन ये उनके अनुपम गुण थे। इनके प्रभाव से वे अनेक प्रकार के व्यवहार प्रपंचों से दूर रहकर अपनी उपासना में लगे रहते थे। श्रीराधावल्लभीय उपासना प्रणाली में नाम और वाणी को प्रधान स्थान दिया गया है। श्रीराधावल्लभीय सिद्धान्त के प्रथम और सर्वोपरि व्याख्याता श्रीदामोदरदास 'सेवकजी' ने अपने ग्रन्थ में कहा है—

नाम वाणी जहाँ। श्याम श्यामा तहाँ॥

× × × × ×

नाम वाणी निकट। श्याम श्यामा प्रकट॥

नाम से तात्पर्य अपने आराध्य के सुमधुर नाम से है और वाणी का अर्थ है श्रीहित हरिवंश प्रभु जी रचित संस्कृत और ब्रजभाषा वाणी रचनाएँ। महाप्रभु की ब्रजभाषा रचनायें श्रीहित चौरासी, स्फुटवाणी एवं श्रीमुखपत्री हैं। संस्कृत भाषा में उनकी श्रीराधासुधानिधि एवं यमुनाष्टक दो रचनाएँ हैं। बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी इन्हीं वाणी रचनाओं के चिन्तन, मनन, गायन में लगे रहते थे। इसके साथ ही निरन्तर नाम जप भी किया

करते थे। श्रीराधासुधानिधि २७० श्लोकों का एक अनुपम स्तोत्र काव्य है। बाबा एकान्त में बैठकर अपने सुमधुर कण्ठ से इस ग्रन्थ के श्लोकों को गाया करते और साथ ही इनमें वर्णित लीलाओं का भाव विभोर होकर चिन्तन किया करते थे। इस प्रकार संत निवास में तत्परतापूर्वक साधन भजन करते हुए उन्होंने अनेक वर्षों तक निवास किया।

संत भवन में पंक्ति बद्ध अनेक कमरे थे। भवन के व्यवस्थापकों द्वारा वे सभी कमरे भजन पारायण संतों के लिए दिए गए थे। प्रत्येक कमरे में एक-एक सन्त निवास करते थे। भवन का संचालन एक ट्रस्ट द्वारा होता था। संतों के भोजन के लिए उन्हें कच्चा सीदा सामान दिया जाता था। प्रत्येक सन्त अपनी रसोई अलग बनाया करते थे। ट्रस्ट के द्वारा आटा, दाल, चावल तथा अन्य सामान प्रत्येक माह दिया जाता था। अन्तर्मुख होकर भजन करने के लिए आहार शुद्धि का बहुत महत्व माना गया है। शुद्ध आहार लेने से अन्त:करण की शुद्धि होती है और तभी भजन पर आगे बढ़ा जा सकता है। आहार शुद्धि के अनेक स्तर हैं जिसमें प्रथम न्यायोपार्जित धन द्वारा आहार की वस्तुएँ जुटाई जानी चाहिए। उसके पश्चात् स्थान है रसोई पाक करने वाले के संस्कार एवं भोजन बनाते समय उसके द्वारा पालन किए गये आचार-विचार के नियम। भोजन बनने तक की इस प्रक्रिया में यदि किंचित् भी प्रमाद अथवा अनाचार होगा तो उतने अंशों में आहार शुद्धि में न्यूनता आ जायेगी। ऐसा आहार व्यक्ति के अन्त:करण को दूषित करता है। आहार से उत्पन्न यह दूषण सामान्य व्यक्ति के अनुभव में तत्काल नहीं आता क्योंकि उसका अन्त:करण पहले ही अनेक कारणों से दूषित है। जिस प्रकार गहरे रंग के वस्त्र पर पड़ा हुआ दाग उतना दिखाई नहीं देता

जितना की श्वेत वस्त्र पर। उसी प्रकार जिनका मन पहले से ही बहुत मलिन है उनके ऊपर अशुद्ध आहार से पड़ने वाले प्रभाव का तत्काल कोई अनुभव नहीं होता। यद्यपि इसका विनाशकारी दूरगामी परिणम उन्हें भी भुगतना पड़ता है। दूसरी और जिन सत्पुरुषों का अन्त:करण अपेक्षाकृत शुद्ध है मन को मलिन करने वाली विषय वासनाओं के प्रभाव से जिन्होंने अपने को बचा कर रखा ऐसे भजन परायण साधक संतों को यदि कभी परिस्थितिवशात् अशुद्ध आहार करना पड़ जाय तो उसके प्रभाव का उन्हें तत्काल अनुभव होता है जैसे ठीक ऐसे ही जैसे श्वेतधवल वस्त्र पर पड़ जाने वाला दाग उसी समय तथा तीव्रता से अनुभव में आता है। बाबा श्रीराधावल्लभशरण भी ऐसे ही शुद्ध अन्त:करण वाले संत थे। आहार शुद्धि का वे प्रारम्भिक काल से ही जीवन पर्यन्त सजकतापूर्वक ध्यान रखते थे किन्तु फिर भी यदि उसमें किसी कारणवशात् कोई व्यतिक्रम आ जाय तो ऐसे अशुद्ध आहार का उनके मन-मस्तिष्क पर तत्काल प्रभाव पड़ता था जो उसी समय उनके अनुभव में भी आ जाता था। ऐसी ही एक घटना का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

एकबार वे अपने किसी परिचित व्यक्ति के आग्रह करने पर एक सन्त-भोज में गए। उसका आयोजन एक महिला द्वारा हुआ था जो वृन्दावन के बाहर की थी और सन्तों का भण्डारा करने के लिए यहाँ आई हुई थी। बाबा श्रीराधावल्लभशरण भी उस भण्डारा में सम्मिलित हुए और अनेक सन्तों के साथ उन्होंने वहाँ भोजन ग्रहण किया। इसके पश्चात् वे सन्त भवन लौट आए। कुछ समय पश्चात् जब अपराह्न काल आया तो वे स्नान आदि कार्यों से निवृत होकर अपने दैनिक नियम साधन करने के लिए कुटिया का द्वार बन्द करके बैठ गए। भजन करते हुए कुछ

देर बाद ही उन्होंने अनुभव किया कि आज चित्त की [illegible] असामान्य जैसी है। मन में सदा रहने वाली [illegible] स्वाभाविक प्रसन्नता और भजन के प्रति उत्सुकता अनुभव नहीं आ पा रही थी। भजन करते हुए वे अपने आराध्य का निरन्तर स्मरण किया करते थे परन्तु आज वह नहीं हो पा रहा था। चित्त की इस अवस्था से वे दुखी हुए और उन्होंने बार-बार मन को अपने लक्ष्य पर स्थित करने का प्रयास किया किन्तु सफलता नहीं मिली। वे जो चिन्तन करना चाहते थे वह नहीं हो पा रहा था किन्तु इसके साथ ही विचलित करने वाला एक और प्रसंग उनके भीतर घटित होने लगा। भजन प्रारम्भ करने के कुछ देर बाद ही उनके मानस पटल पर अर्थियों के दृश्य उभरने लगे। भजन साधन की उस अवधि में अन्त:करण में अर्थियाँ दिखाई देना यह एक कष्टदायक प्रसंग था। बाबा ने पुनः पुनः प्रयास किया उन अमांगलिक दृश्यों को अपने मानस पटल से हटाने का किन्तु कोई सफलता नहीं मिली। अन्तर्मन में क्षोभ उत्पन्न करने वाले अर्थियों के उन दृश्यों को हटा नहीं पाए। अन्ततः विचलित होकर वे उठ खड़े हुए और बाहर निकलकर टहलते हुए इस प्रसंग पर विचार करने लगे। कुछ ही देर में इसके मूलकारण पर उनका ध्यान गया। अवश्य ही यह अशुद्ध आहार का परिणाम है। मन की ऐसी अवस्था बनने का और कोई कारण नहीं हो सकता है। आहार दोष से ही यह बाधा उत्पन्न हुई। यह उन्होंने निश्चय किया किन्तु एक विषय को जानना अभी शेष था कि अशुद्ध भोजन के कारण एक ही तरह के दृश्य क्यों मन में आते रहे? क्यों अर्थियाँ ही दिखाई देती रहीं? उनके [illegible] और कोई दृश्य क्यों नहीं दिखाई दिये? इस गुत्थी को सुलझाने के

लिए बाबा ने अगले दिन उस महिला से मिलकर [illegible] निश्चय किया जिसने सन्त भण्डारा किया था।

अगले दिन प्रातः उस महिला के निवास का पता [illegible] बाबा वहाँ पहुँचे। महिला ने उनका यथोचित सत्कार किया [illegible] फिर उनसे आगमन का कारण पूँछा। बाबा ने उनसे कहा [illegible] माताजी! सत्य-सय बताइएगा आपने जिस द्रव्य से कल भण्डारा करवाया था वह द्रव्य आपको किससे प्राप्त हुआ? उसे कमाने का क्या माध्यम है? महिला ने कहा आप सन्त हैं मैं आपसे झूठ नहीं कहूँगी और कुछ नहीं छिपाऊँगी। हमारी जाति में ऐसा प्रचलन है कि जब किसी की मृत्यु हो जाती है तब उसे घर से विदा करते समय परिवारीजन उसकी अर्थी पर कुछ द्रव्य रखते हैं उसके बाद ही वह शव यात्रा घर से प्रारम्भ होती है। हमारे परिवार में किन्हीं की मृत्यु हो गयी थी उनकी अर्थी पर चढ़ाया गया सारा धन सम्भालकर मैंने रख लिया। उसी से कल साधु सन्तों का भण्डारा करवाया गया था।

भजन साधन के समय बार-बार अर्थियों के दिखाई देने की गुत्थी अब सुलझ चुकी थी। दूषित अन्न का चित्त पर पड़ने वाला प्रभाव कितना निश्चित और शीघ्र होता है यह देखकर बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी चकित हो गए। उन्होंने इस विषय में भविष्य में और अधिक सावधानी रखने का निश्चय किया। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि केवल आहार शुद्धि के द्वारा मुमुक्षु साधक को भगवत् प्राप्ति संभव है। श्रुति का यह उद्घोष है–

आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्यशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।

(छा. ७/२६/२)

अर्थात् "आहार शुद्धि से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण शुद्धि से निरन्तर भगवत्स्मृति होती है। भगवत्स्मृति से हृदय की समस्त ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है।"

जैसा कि हम पूर्व में लिख चुके हैं कि बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं होती है यद्यपि वे कुछ वर्ष पूर्व तक धराधाम पर विद्यमान थे एवं उनके अनेक शिष्य वर्तमान में हैं किन्तु उनसे प्राप्त सामग्री इतनी अल्प और अस्त व्यस्त है कि उसके आधार पर बाबा के जीवन चरित्र को व्यवस्थित एवं विशालरूप में लिख पाना एक कठिन कार्य है जो थोड़ी घटनाएं हमारी जानकारी में आ पाई हैं उन्हें ब्योरेवार लिखना उतना सहज नहीं है। घटनाओं को सन् सम्वतों से जोड़कर उनका पूर्वा पर क्रम निर्धारित करना भी उतना आसान नहीं है। ये बातें यहाँ पर इसलिए कही जा रही हैं कि पाठक यह जान सके कि जीवन चरित्र में लिखी घटनायें हमारी जानकारी के अनुसार सत्य तो हैं किन्तु उनमें कौन सी पहले की हैं और कौन सी बाद की हैं इसे हम निश्चित रूप से नहीं बता सकते हैं।

पूज्य बाबा से सम्बन्धित एक अन्य घटना है जो उनके युवा अवस्था के समय की ही है। एक बार उन्हें पीलिया रोग हो गया। उस काल में उतनी आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था नहीं थी जितनी कि आजकल उपलब्ध है। बाबा ने एक वैद्य से सम्पर्क साधा और उनके द्वारा दी गई आयुर्वेदिक औषधियाँ लेते रहे। जैसे तैसे वह रोग नियंत्रित हुआ। अन्ततः वैद्यजी ने उन्हें जलवायु परिवर्तन करने का परामर्श दिया। बाबा के लिए यह एक समस्या ही थी किन्तु वे क्या करते? स्वास्थ्य रक्षा के लिए उन्हें ब्रजभूमि से बाहर जाना ही पड़ा। जलवायु परिवर्तन के लिए उन्होंने हरिद्वार

क्षेत्र का चयन किया। हरिद्वार के निकट स्थित एक गाँव ... पहुँचे। वहाँ एक श्रद्धालु व्यक्ति से उनकी भेंट हुई। ... गाँव में कुछ काल तक निवास करने के लिए आग्रह ... उसने गाँव के बाहरी क्षेत्र में स्थित एक कुआँ के पास की ... जमीन पर उनके लिए एक झोपड़ी बनवा दी। वह ... समयानुसार बाबा के लिए भोजन प्रसाद ले आता था। उस ... कुटिया में रहकर बाबा अपना दैनिक भजन साधन करने लगे। ... एकान्त प्रिय थे और अनावश्यक व्यवहार से दूर रहते थे इसलिए ... वे गाँव के भीतर बहुत कम जाते थे। वहाँ का वातावरण मनोरम ... था गाँव से थोड़ी ही दूरी पर कुछ पहाड़ियाँ भी थीं।

कुछ दिन वहाँ निवास करने के पश्चात् एक दिन लगभग ... सन्ध्या के समय बाबा की दृष्टि अनायास ही गाँव से थोड़ी दूरी ... पर स्थित एक पहाड़ी की ओर गई। बाबा ने देखा कि ४-५ ... व्यक्ति किसी को खटिया पर लिटा कर पहाड़ी से नीचे गाँव की ... ओर उतर रहे हैं। बाबा ने इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया ... और न यह जानने की कोई चेष्टा ही की कि खटिया पर डालकर ... किसे लाया जा रहा था। संयोग की बात है अगले दिन उसी समय ... पर बाबा की दृष्टि फिर उस पहाड़ी की ओर गई और उन्हें पुनः ... वही दृश्य दिखाई दिया। जिसे उन्होंने कल देखा था अर्थात् कुछ ... व्यक्ति किसी असमर्थ को खटिया पर लिए हुए गाँव की ओर आ ... रहे हैं अब बाबा के भीतर इसका रहस्य जानने का विचार आया। ... तीसरे दिन भी कौतूहलवशात् बाबा ने सन्ध्या काल में उस ओर ... देखा तो फिर वही दृश्य दिखाई दिया। इस प्रकार प्रतिदिन ही ... होता रहा। अब उनकी जिज्ञासा बढ़ने लगी कि नित्यप्रति किस ... व्यक्ति को पहाड़ के नीचे लाया जाता है?

अगले दिन जब वह श्रद्धालु भक्त समय पर भोजन प्रसाद लाया तब बाबा ने उससे इस विषय में पूछा। बाबा के पूछने पर वह व्यक्ति बहुत दुखी होकर बोला—महाराज जी! आप परम विरक्त और भजनपरायण सन्त हैं हम अपनी घर गृहस्थी का रोना आपके सामने कैसे रोएँ? आपको विच्छेप न हो इसलिए मैंने इस विषय में आपसे कोई चर्चा नहीं की थी अब आपके पूछने पर मैं बता रहा हूँ। सन्ध्या के समय खटिया पर डालकर जिसे लाया जाता है वह मेरी पुत्री है। मैंने कुछ समय पूर्व उसका विवाह कर दिया था किन्तु ससुराल जाकर थोड़े दिन बाद वह बीमार रहने लगी। उसके परिवार के लोगों ने यथाशक्ति उसकी चिकित्सा भी करवाई किन्तु वह ठीक न हो सकी अन्ततः एक दिन मेरा दामाद उसे मेरे पास छोड़ गया। यहाँ पीहर में आने के बाद तो उसकी बीमारी ने एक नया ही रूप ले लिया। प्रतिदिन सन्ध्या से कुछ समय पूर्व वह बहुत आश्चर्यजनक रूप से घर से आकर इस पहाड़ी की ओर भागने लगती है उस समय चाह करके हम उसे रोक नहीं पाते हैं। उस समय उसके शरीर में एक अलग ही प्रकार की शक्ति आ जाती है। पहाड़ी की ओर जाने का उसका वेग भी हमें चकित कर देता है। हमलोग उसका पीछा करते हैं किन्तु वह इतनी शीघ्रता से पहाड़ी पर चढ़ जाती है जिसे देखकर समस्त ग्रामवासी विस्मित हो जाते हैं। जब हाँफते हुए, थके हारे हम लोग वहाँ पहुँचते हैं तो वह प्रतिदिन एक निश्चित जगह पर पड़ी मिलती है। उस समय उसका शरीर शक्तिहीन होता है, भागना तो दूर वह पैदल चलकर पहाड़ी से नीचे उतरने की स्थिति में भी नहीं होती। इसलिए उसे प्रतिदिन चारपाई पर डालकर नीचे गाँव में लाना पड़ता है। गाँव में कुछ लोग इसे मानसिक रोग बताते हैं कुछ लोग इसे प्रेत बाधा कहते हैं। मेरी

समझ में यह नहीं आता कि मैं इसकी क्या चिकित्सा कराऊँ। बेटी के कारण मेरा पूरा परिवार बहुत दुखी है हमें न भोज सुहाता है और नहीं हम चैन की नींद सो पाते हैं।

यह आप बीती सुनाते हुए वह व्यक्ति फूट-फूट कर रो लगा। उसने बाबा राधावल्लभशरण जी के चरन पकड़ लिए और बोला महाराज आप ही कोई ऐसा आशीर्वाद दीजिए जिससे मेरी बेटी स्वस्थ हो जाय। यह कहकर वह व्यक्ति चुप हो गया किन्तु बाबा के चरण पकड़कर उसका रोना जारी रहा। सन्तों का हृदय तो नवनीत के समान होता ही है। उसकी आप बीती सुनकर बाबा का हृदय करुणा से द्रवित हो गया। उन्होंने उसे उठाया और सान्त्वना प्रदान की। बाबा ने कहा कि समस्या जटिल अवश्य है किन्तु तुम चिन्ता मत करो। श्रीराधावल्लभलाल की कृपा से तुम्हारा यह दु:ख शीघ्र ही दूर हो जायगा। उनकी असीम करुणा और कृपा तथा उनके विलक्षण और अनन्त सामर्थ्य पर विश्वास रखो। वे शीघ्र ही तुम्हें चिन्तामुक्त कर देंगे। इस प्रकार बाबा ने उसे आश्वासन दिया और समझा-बुझाकर घर भेज दिया।

रात्रि में बाबा इस विषय पर विचार करते रहे। भगवद् अश्रित सन्त हर प्रसंग में श्रीभगवान् की कृपा की ओर ही निहारते हैं। परिस्थिति कैसी भी हो उनका अन्तिम आश्रय भगवत् कृपा ही होती है। बाबा भी इस विषय में जब किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे तो उन्होंने श्रीराधावल्लभलाल की अहैतुकी कृपा का ही स्मरण किया। श्रीहित हरिवंश महाप्रभु के प्रधान शिष्य श्रीसेवक जी ने अपनी वाणी में कहा है–

राधावल्लभ भजत भजि भली-भली सब होइ।
जिते विनायक शुभ अशुभ विघ्न करैं नहि कोइ॥

अर्थात् प्रभु के भक्तों का आश्रय लेने से विघ्न उत्पन्न करने वाली सभी शक्तियाँ मार्ग छोड़कर दूर हट जाती हैं। उस व्यक्ति ने भी पूज्य बाबा के चरणों का आश्रय लिया अत: अब उसकी पारिवारिक सुख शान्ति में विघ्न डालने वाला यह प्रसंग समाप्त होना निश्चित था बाबा ने श्रीजी की पावन कृपा का स्मरण कर यह निश्चय किया कि श्रीयुगल सरकार का मंगलमय नाम जो अनन्त शक्तियों से सम्पन्न है उसका आश्रय लेने से इस समस्या का निश्चित ही निवारण हो जायगा।

अगले दिन जब वह व्यक्ति भोजन प्रसाद लाया तब बाबा ने उससे दो नये मटका और एक छोटी हाण्डी मँगवाई। मटकों में कुआँ का जल भरवाकर बाबा ने उन्हें अपने पास रख लिया और उस व्यक्ति से कहा कि वह अपने आवश्यक कार्यों को निपटाकर कुछ देर बाद यहाँ आये। बाबा मटकों के सामने आसान बिछाकर बैठ गये और भावपूर्वक राधेश्याम नाम का उच्चस्वर से जप करने लगे। इस प्रकार बाबा ने नामरूपी मंत्र से उस जल को अभिमंत्रित कर दिया। कुछ काल बाद जब वह व्यक्ति बाबा के पास आया तो उन्होंने उसे निर्देश दिया कि हाण्डी की पेंदी में एक सूक्ष्म छिद्र करके, मटके का जल उसमें डालकर राधेश्याम नाम का उच्चारण करते हुए सम्पूर्ण गाँव की जलधारा परिक्रमा लगाई जाय। बाबा के निर्देशानुसार उस व्यक्ति ने अपने सहयोगियों के साथ नाम कीर्तन करते हुए गाँव की जलधारा परिक्रमा लगाई बाबा की कुटिया और स्थित कुआँ को भी परिक्रमा के भीतर लिया गया। इस प्रकार खण्डित न होने वाली जलधारा के द्वारा गाँव के चारों ओर एक अखण्ड सुरक्षा रेखा का निर्माण हो गया जो भगवन्नाम की असीम शक्ति से परिपूर्ण था।

सन्ध्या से कुछ समय पूर्व ही वह लड़की अपनी सुध-बुध भूलकर उस पर्वत की ओर दौड़ने लगती थी। ऐसा प्रतिदिन ही

होता था। अब जबकि समूचे गाँव को श्रीभगवन्नाम के
घेरे में ले लिया गया था तो बाबा को पूर्ण विश्वास था कि
से ऐसा कुछ नहीं होगा। नाम की असीम शक्ति पर उनका
अटूट विश्वास था। बाबा के इस विश्वास से वह परिवार
बहुत कुछ आश्वस्त था कि पूज्य बाबा ने जब यह उपाय
तो अवश्य ही इसका अच्छा परिणाम होगा और वास्तव में
भी ऐसा ही। बाबा के इस उपाय से नाम की अद्भुत सामर्थ्य
प्रत्यक्ष दिखाई दी। इसका अनुभव अन्य ग्रामवासियों को
कि नहीं किन्तु बाबा को इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

उस दिन संध्याकाल से कुछ पूर्व बाबा अपनी कुटिया
के बाहर बैठे हुए थे। पास में ही कुआँ था। तभी कुआँ के
की ओर से उन्हें एक उच्चस्वर सुनाई दिया। बाबा ने सुना
कोई चिल्लाकर कह रहा है यहाँ किसने आग लगाई है? कौन
जो मुझे गाँव में नहीं जाने दे रहा है? गाँव के चारों ओर आग
परकोटा किसने बनाया है?

बाबा ने इन वाक्यों को स्पष्ट सुना किन्तु जिधर से
ध्वनि आ रही थी उस ओर झाँकने पर उन्हें कोई दिखाई
दिया। बाबा को समझते देर न लगी कि यह चिल्लाने का
उस लड़की की समस्या से जुड़ा हुआ है। अब बाबा ने भी
स्वर से गरजकर पूछा "कौन हो तुम? अपना परिचय दो।
प्रकार पूछने पर उधर से पुन: आवाज आई कि मैं उस लड़
का वास्तविक पति हूँ।

बाबा ने फिर पूछा कि तुम उस लड़की के पति कैसे
वह तो अमुक गाँव में रहती है। बाबा के ऐसा पूछने पर उधर
स्वर सुनाई दिया। "मैं पास के अमुक गाँव का निवासी था।
लड़की और मैं एक ही विद्यालय में पढ़ते थे। हम दोनों में

प्रेम हो गया था। यह बात लड़की की माँ जानती थी। एक बार मैं लड़की की माँ से मिला। उसने मुझे आश्वासन दिया कि वह अपनी लड़की का विवाह मेरे साथ कर देगी पर लड़की के पिता जी ने उसका विवाह हठपूर्वक किसी दूसरे गाँव में कर दिया। यह दुख मुझसे सहन नहीं हुआ और मैंने आत्महत्या कर ली।

बाबा ने फिर गरजकर पूछा कि अब तुम यहाँ क्यों आए हो? सामने से आवाज आई "मरने के बाद भी मैं इसके पीछे लगा रहा और अब प्रतिदिन गाँव में आकर इसे सामने वाली पहाड़ी पर ले जाता हूँ।"

अब बाबा के सामने सारी स्थिति स्पष्ट हो चुकी थी। उस लड़की का पूर्व प्रेमी जिसने आत्महत्या कर ली थी वह प्रेतयोनि को प्राप्त हो गया था। उसके प्रभाव से विवाह के बाद से ही वह लड़की अस्वस्थ रहने लगी। कुछ समय तक परिवार वालों ने अनेक प्रकार की चिकित्सा करवाई किन्तु कोई लाभ न होने पर वे उसे पीहर में छोड़ गए। यहाँ प्रतिदिन ही वह प्रेतात्मा बरबस पहाड़ी पर उसे ले जाता था और उसके साथ विषय भोग करता था। इस कारण वह लड़की शक्तिहीन हो जाती थी और उसे खाट पर लिटाकर गाँव में लाया जाता था।

कुछ देर पश्चात् जब वह श्रद्धालु व्यक्ति बाबा के पास आया तो बाबा ने उसे अपने और प्रेतात्मा की बीच हुए सम्वाद का निष्कर्ष सुनाया। इसे सुनकर वह व्यक्ति भी विस्मित हो गया क्योंकि इस सम्वाद के सभी तथ्यों से वह भी परिचित नहीं था। लड़के द्वारा आत्महत्या करना, प्रेतयोनि को प्राप्त होना और लड़की को इस प्रकार पीड़ित करना इन सब बातों से वह परिचित नहीं था। बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी ने उससे कहा कि अपनी पुत्री को इस व्याधा से सर्वथा मुक्त करने के लिए तुम सब परिवारीजनों

को श्रीभगवान् के नाम का अनन्य आश्रय लेना चाहिए। उस व्यक्ति ने हाथ जोड़कर कहा बाबा आप ही बतलाइये हमें क्या करना होगा? किस विधि से हम नाम का आश्रय ग्रहण करें? पूज्य बाबा ने उसे आदेश दिया कि तुम्हारे घर में एक वर्ष तक राधेश्याम नाम का अखण्ड कीर्तन होना चाहिए। कीर्तन लड़की के निकट होना चाहिए जिससे वह नाम श्रवण करती रहे। स्नान आदि देहकृत्य के अतिरिक्त लड़की सदैव नाम कीर्तन के निकट ही रहे। कीर्तन एक समय में भले ही एक व्यक्ति के द्वारा हो किन्तु वह दिन-रात अखण्ड होना चाहिए। इस प्रकार एक वर्ष तक यह नाम कीर्तन का अनुष्ठान घर में होना चाहिए।

बाबा के आदेशानुसार इसी विधि से एक वर्ष तक नाम कीर्तन आयोजित हुआ। इस अवधि में उस लड़की को कोई बाधा नहीं हुई और कीर्तन के पश्चात् भी वह प्रेत बाधा से सर्वथा मुक्त ही रही। इस घटना को आगे चलकर पूज्य बाबा ने अपने किसी शिष्य को सुनाया था और उस शिष्य द्वारा यह घटना हमें ज्ञात हुई। उन्होंने हमें यह भी बताया इस एक वर्ष की अवधि में बाबा उस गाँव में ही रहे। कीर्तन पूर्ण होने के पश्चात् उस लड़की का पति सम्मानपूर्वक अपनी पत्नी को घर ले गया। सम्पूर्ण परिवार ने बाबा से मंत्र दीक्षा भी ग्रहण की थी। एक वर्ष पश्चात् बाबा वृन्दावन आ गये।

इस घटना से भगवान् नाम के अद्‌भुत प्रभाव का परिचय प्राप्त होता है। नाम का आश्रय लेने से समस्त प्रकार की आधिव्याधियाँ दूर हो सकती है भले ही वे कितनी भी दुसाध्य क्यों न हों। सभी प्रकार के रोग मानसिक क्लेश अथवा दुष्ट प्राणियों द्वारा पहुँचाई जाने वाली पीड़ा इन सब समस्यों का समूल विनाश श्रीभगवान् के सर्वसमर्थ नाम के द्वारा सम्भव है। परन्तु यहाँ यह

स्मरण रखना चाहिए यह समस्त लाभ भी नाम के द्वारा प्राप्त होने वाले वास्तविक लाभ की तुलना में अत्यन्त नगण्य हैं। नाम का वास्तविक लाभ है महादुर्लभ श्रीभगवत् प्रेम की प्राप्ति। प्रेम प्राप्त होने पर कुछ और पाना शेष नहीं रहता। इसी उपलब्धि को भगवत् प्राप्ति अथवा मोक्ष कहा गया है।

पूर्व में हम कह आये हैं कि बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी घर से निकलने के पश्चात् प्राय: एक वर्ष तक उत्तराखण्ड की पहाड़ियों में निवास करने वाले सिद्ध योगियों के पास रहे। वहाँ से विदा होते समय उन योगियों ने बाबा से कहा था कि "**ब**" अक्षर से प्रारम्भ होने वाले एक स्थान में तुम्हें किसी दुर्लभ महापुरुष की प्राप्ति होगी। उसके पश्चात् बनारस और गया होते हुए वे वृन्दावन आ गये। योगियों द्वारा कही हुई वह बात उनकी स्मृति पटल पर ज्यों की त्यों अंकित रही। कई बार वे इस बारे में सोचा करते थे। '**ब**' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले स्थान विशेष को मैं कैसे खोजूँ? कई ग्रामों और नगरों का नाम '**ब**' से प्रारम्भ होता है उनमें किस स्थान पर मुझे उन महापुरुष की प्राप्ति होगी उसका पता कैसे चले? इस प्रकार के अनेक विचार रह-रह कर आया करते थे। वस्तुत: यह दुर्लभ संयोग किसी के स्वयं के प्रयत्न से बनता भी नहीं है। इसके लिए तो श्रीराधावल्लभलाल की अहैतुकी कृपा ही उपाय है। साधक जीवन में सद्‌गुरु स्वरूप दुर्लभ महापुरुष की प्राप्ति केवल कृपा से ही सम्भव है। श्रीमद्-भगवद्‌गीता में भगवान् ने स्वयं कहा है—

श्लोक—**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।**
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

गीता अध्याय ९/२२

अर्थात् "जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए भलीभाँति उपासना करते हैं, मुझमें निरन्तर लगे हुए उन भक्तों का योग क्षेम (अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा) मैं वहन करता हूँ।"

श्लोक में आए योगक्षेम का अर्थ योग-अप्राप्त की प्राप्ति क्षेम-प्राप्त की रक्षा है। श्रीभगवान् अपने भक्त की आवश्यकतानुसार उसे समय पर वस्तु व्यक्ति, परिस्थिति आदि उपलब्ध कराते हैं और भक्त के लिए उपयोगी इन सभी पदार्थों का रक्षण स्वयं भगवान् ही करते हैं। योगक्षेम का यह प्रचलित अर्थ है। किन्तु परमार्थ पथ के पथिक एक साधक के संदर्भ में इसका एक अन्य अर्थ भी है। साधक को आवश्यक सन्त, सद्गुरु, सत्संग आदि की उपलब्धि भी श्रीभगवान् के योग विधान के अन्तर्गत ही होती है, और संत-सद्गुरु के चरणाश्रय में निरपराधपूर्वक निवास करते हुए उनसे प्राप्त उपलब्धियों का रक्षण यह भगवान् कृपा का क्षेम विधान है। इस प्रकार ठाकुर जी की महती कृपा ही साधक के जीवन में योगक्षेम के रूप में अवतरित होती रहती है। पूज्य बाबा को योगियों द्वारा सांकेतिक **"ब"** नामक स्थान में किसी अद्भुत महापुरुष की प्राप्ति यह श्रीराधावल्लभलालजी की कृपा करुणा का ही योगक्षेम विधान था जो एक घटना के माध्यम से उपस्थित हुआ।

एक दिन पूज्य बाबा अपने नियमानुसार श्रीराधावल्लभ मन्दिर में दर्शन करने गये। उस समय वृन्दावन के मन्दिरों में उतनी भीड़ नहीं हुआ करती थी जितनी अब दिखाई देती है। बाबा जब मन्दिर गए वहाँ कुछ गिनती के ही लोग थे। वे श्रीठाकुर जी के निकट जाकर कटहरा (रैलिंग) का आश्रय लेकर दर्शन करने लगे। बाबा के निकट एक अन्य व्यक्ति खड़ा हुआ था। उसी समय एक दर्शनार्थी सामने वाले कटहरा पर आकर खड़ा

हुआ। बाबा के निकट खड़ा व्यक्ति उस नवागन्तुक का परिचित था। अपने परिचित को सामने सहसा देखकर उस नवागन्तुक ने पूछा— "अरे! तुम बहुत दिनों बाद दिखाई दिए, कहाँ चले गये थे? बाबा के निकट खड़े व्यक्ति ने उत्तर दिया मैं बाद ग्राम चला गया था, वहाँ कुछ दिन रुक गया।

बाबा उस समय ठाकुर श्रीराधावल्लभलालजी को निहार रहे थे। उन दोनों व्यक्तियों का संक्षिप्त संवाद बाबा ने सुना। यद्यपि उन दोनों व्यक्तियों से कोई परिचय नहीं था अतएव उनके इस सम्वाद का भी बाबा के लिए कोई व्यक्तिगत महत्व नहीं था तो भी उनके सम्वाद में आया बादग्राम शब्द उनके मन मस्तिष्क में बैठ गया। इस शब्द ने बाबा का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लिया। सहसा बाबा को हिमालय के उन योगियों की बात स्मरण हो आयी जिसमें उन्होंने **"ब"** नामक स्थान पर तुम्हें किसी महापुरुष की प्राप्ति होगी। ऐसा बाबा से कहा था। बाबा के मन में बार-बार यह आने लगा कि मुझे एकबार बादग्राम जाकर अवश्य ही उन महापुरुष को खोजना चाहिए। इसके पूर्व भी उन्होंने **"ब"** अक्षर से प्रारम्भ होने वाले अनेक स्थानों के नाम सुने थे किन्तु ऐसा विचार कभी नहीं आया जैसा कि आज आया। यह श्रीराधावल्लभलालजी का परम अनुग्रह ही था जिसने उनकी भेंट बादग्राम में निवास करने वाले एक अलौकिक महापुरुष से करवाने का पूर्ण सहयोग उपस्थित कर दिया। शीघ्र ही एक दिन पूज्य बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी वृन्दावन से बादग्राम के लिए चल पड़े।

बादग्राम वृन्दावन से लगभग २५ कि.मी. दूर आगरा की ओर है। यह गाँव देहली-आगरा राजमार्ग पर है। श्रीराधा-वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोस्वामी श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु

का जन्म इसी गाँव में हुआ था। उनके पिताश्री व्यास मिश्र देववन्द जिला साहरनपुर उ.प्र. के निवासी थे। वे उस समय किसी राजा के राज-ज्योतिषी थे। इतिहास ग्रन्थों में उस राजा पृथ्वी पति बादशाह आदि नामों से कहा गया है। उससे अनुमान होता है कि व्यास मिश्र जी उस समय के दिल्लीश्वर सिकन्दर लोदी के राज ज्योतिषी थे। इतिहास के अनुसार आगरा शहर को बसाने में सिकन्दर लोदी की बहुत बड़ी भूमिका है इसी से आगे चलकर आगरा मुगल बादशाहों की उपराजधानी बन सका। आगरा को विकसित करने के लिए सिकन्दर लोदी को बार-बार दिल्ली से आगरा जाना पड़ता था। इतिहास में उसे हिन्दू विरोधी कट्टर मुस्लिम शासक बतलाया गया है किन्तु ज्योतिष विद्या गणनाओं पर आधारित प्रत्यक्ष चमत्कारिक विज्ञान है। इसलिए वह कट्टर मुस्लिम बादशाह होते हुए व्यास मिश्र जी का बहुत आदर करता था और उनसे ज्योतिषीय परामर्श लेता रहता था। ऐसे ही एक अवसर पर जब सिकन्दर लोदी दिल्ली से आगरा जा रहा था तब उस यात्रा दल में व्यास मिश्र जी भी उसके साथ थे। व्यास मिश्र जी के साथ उनकी धर्मपत्नी तारारानी भी उनके साथ ही थी जो उस समय गर्भवती थी। मिश्र जी के अनेक परिवारीजन भी उनके साथ थे। इस यात्रा में मथुरा से ६ मील दूर स्थित बादग्राम में पड़ाव डालकर रह रहे श्रीव्यास मिश्र जी की पत्नी श्रीतारारानी के गर्भ से प्रेमावतार श्रीहित हरिवंश महाप्रभु का प्राकट्य हुआ। उस दिन वि.सं. १५५९ (ईसवी सन् १५०२) के वैशाख मास की शुक्ला एकादशी थी।

'बाद' आज भी बहुत बड़ा गाँव नहीं है और ५०० वर्ष पूर्व तो वह एक छोटा सा गाँव रहा होगा। गाँव के आस-पास प्रायः वन प्रदेश ही था। गाँव के बाहर एक सरोवर है जो अति

प्राचीन है। सरोवर का सम्बन्ध श्रीकृष्ण की धेनुकासुर की उद्धार लीला से जोड़ा जाता है। जहाँ धेनुकासुर का वध हुआ वह स्थल बादग्राम से ३-४ कि.मी. की दूरी पर है। धेनुका का उद्धार करके श्रीकृष्ण ने सखाओं सहित इस सरोवर में जलकेलि किये थे ऐसा बतलाया जाता है। इसीलिए इसे **"कृष्ण सरोवर"** कहते हैं। सरोवर के तट पर कम ऊँचाई वाला टीला है। टीले के एक ओर एक वटवृक्ष है जिसे **"कृष्णवट"** कहा जाता है। श्रीव्यास मिश्र जी ने जब यात्रा के मध्य अपने परिवारीजनों के साथ यहाँ पड़ाव दिया था तब कृष्णवट के आस-पास और अनेक ऊँचे-ऊँचे वृक्ष थे। सरोवर होने से वहाँ मनुष्यों और मवेशियों के लिए जल की पर्याप्त सुविधा थी। सरोवर के तट पर ही सघन वृक्षावली होने से शीतल छाया भी उपलब्ध थी। यह सब देखकर उस स्थल पर श्रीव्यास जी ने सपरिवार रुकने का निश्चय किया।

वटवृक्ष के प्रायः नीचे ही व्यासजी के निजी निवास के लिये उस समय के संसाधनों के अनुसार कनात, चँदोआ एवं तम्बू आदि से निर्मित अस्थाई निवास बनाया गया। इसी प्रकार वटवृक्ष के आस-पास की भूमि पर उनके परिवारीजनों एवं परिचारकों के निवास बनाये गये। कृष्णवट के नीचे ही श्रीश्याम- सुन्दर की वंशी के अवतार श्रीहित हरिवंश महाप्रभु का प्रादुर्भाव हुआ।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी जब वहाँ गये थे तब उस स्थल पर दो मन्दिरों का निर्माण हो चुका था। मन्दिर आकार में छोटे ही थे, आगे चलकर उनके सामने व आस-पास कुछ और निर्माण कर मन्दिरों को और अधिक भव्यरूप प्रदान किया गया। बाबा जब वहाँ पहुँचे तब कृष्णवट का परिसर क्षेत्र प्रायः वृक्षों और झाड़ियों से व्याप्त था। दो या तीन सन्त वहाँ निवास करते थे। बाबा ने [illegible]कर मन्दिरों के दर्शन किए और पुजारी के

निर्देशानुसार एक कक्ष में अपना झोला रखकर आसन लि... लिया श्रीहरिवंश महाप्रभु की जन्मस्थली का प्रथमवार दर्शन क... वे भाव-विभोर हो उठे। सेवकवाणी की निम्नलिखित पंक्तियाँ जैसे उनके सामने मूर्त हो उठी हों—

मथुरा मण्डल भूमि आपनी। जहाँ बाद प्रगटे जगधनी।
भनी अवनि वर आप मुख॥
शुभ वासर शुभ ऋक्ष विचार। माधव मास व्यास उजियार।
नारिन मंगल गाइयौ॥
तच्छिन देव दुंदुभी बाजिये। जै-जै शब्द सुरन मिलि किये।
हिये सिराने सबनि के॥
तारा जननि जनक ऋषि व्यास। जस बरनौं हरिवंश विलास॥
श्रीहरिवंशहि गाइहौं॥

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी अब उन महापुरुष के विषय में विचारने लगे जिनके दर्शन करने यहाँ आए थे। कृष्णवट की छाँह में बैठकर उन्होंने व्यासनन्दन श्रीहरिवंशचंद्र से करुण प्रार्थना की कि मुझे उन महापुरुष का शीघ्र दर्शन प्राप्त हो। एक दो दिन वहाँ रहने के पश्चात् पुजारी एवं वहाँ ठहरे हुए अन्य १-२ सन्तों की बातें सुनकर उन्हें यह पता चला कि इन दो-तीन सन्तों के अतिरिक्त भी यहाँ बाबा प्रियाशरण नामक एक अन्य संत निवास करते हैं। श्रीराधावल्लभशरण जी के मन में उनका दर्शन पाने की इच्छा जगी। उन्होंने वहाँ के सन्तों से पूछा कि प्रियशरणजी कहाँ रहते हैं? एक सन्त ने उन्हें बताया कि वे बादग्राम मन्दिर परिसर में स्थित गुफा में निवास करते हैं किन्तु गुफा से बाहर कम निकलने के कारण उनके दर्शन कभी -कभी ही होते हैं। श्रीप्रियाशरण जी का यह परिचय सुनकर बाबा को लगा कि कदाचित् ये ही वे महापुरुष हैं जिनकी खोज में वे

बादग्राम आये। अब सन्त जी से पूछकर शीघ्र ही बाबा गुफा की ओर चल पड़े।

मन्दिर परिसर क्षेत्र में ही एक ओर कुछ झाँड़ियां दिखाई देती थी। उन झाँड़ियों के प्रायः बीच में एक गुफा थी जो बाहर से उतनी स्पष्ट नहीं दिखाई देती थी क्योंकि गुफा के आस-पास झाँड़ियां थी। बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी झाँड़ियों में से होकर गुफा के निकट पहुँचे। प्रकाश कम होने के कारण अभी वे गुफा के भीतर झाँक कर वे कुछ देख-समझने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि इतने में गुफा के भीतर से आए एक गम्भीर स्वर ने उन्हें चौंका दिया। बाबा ने स्पष्ट सुना भीतर से कोई कह रहा था—"आ गये तुम मैं कितने दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था।"

यह वाक्य सुनते ही बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी पुलकित हो गए। वे जिन महापुरुष को खोज रहे थे उनसे उनकी भेंट का यह दुर्लभ संयोग श्रीराधावल्लभलाल की अहैतुकी कृपा से बना था। परमार्थ पथ में उन्नति का प्रधान कारण किसी महापुरुष का आश्रय ही होता है। बाबा को अब वह महद्आश्रय प्राप्त हुआ। उन्होंने गुफा के भीतर झाँककर देखा तो एक संत ध्यान मुद्रा में आसन लगाये हुए विराजमान थे। उनके नेत्र किसी अलौकिक मादकता से छके हुए थे। खुमारी में छके हुए नेत्र उनकी आन्तरिक स्थिति का परिचय दे रहे थे। जन संसर्ग से दूर एकान्त स्थल पर बनी हुई उस गुफा में वे सन्त परमार्थ साधना का मानों मूर्तरूप प्रतीत हो रहे थे। किस अलौकिक विधान से वे सर्वथा अपरिचित श्रीराधावल्लभशरण जी की प्रतीक्षा कर रहे थे इसे सामान्य बुद्धि से समझना असंभव है। अध्यात्म जगत के ये रहस्य भगवा[illegible]रे भक्तों में ही हुआ करते हैं।

उन सन्त को देखकर बाबा ने अपने को कृतकृ[illegible]
अनुभव किया। अब वे दैनिक कृत्य पाठ-पूजा से निवृत्त हो[illegible] अधिकाधिक उन सन्त के सान्निध्य में रहने का प्रयास कर[illegible] लगे। एक दो ही दिन में ही उन्होंने सन्त श्रीप्रियाशरण जी के दैनिकक्रम को समझ लिया। स्नानादि देहकृत्यों के लिए वे कब गुफा से बाहर निकलते हैं? उनकी मधुकरी भिक्षा कैसे और कब होती है? इत्यादि बातों को समझकर बाबा उनकी सेवा में उपस्थि[illegible] रहा करते थे।

सन्त श्रीप्रियाशरण जी कौन थे? कहाँ के थे? ये सब जानकारियाँ हमें नहीं हो पायीं। वे श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे बस इतना ही ज्ञात हो पाया। बादग्राम के वर्तमान निवासियों के पास भी इस विषय में कुछ जानकारी नहीं है। इसका मुख्य कारण तो उन संत की एकान्त प्रियता ही प्रतीत होती है। अपनी देव दुर्लभ उपलब्धियों को संसारी लोगों से छिपाकर रखना यह सन्तों का सहज स्वभाव होता है। सामान्य मनुष्य अपने गुण, कला, धन आदि विशेषताओं को प्रदर्शित कर उससे वाह-वाह लूटने के प्रयास में रहता है। इसके प्राय: विपरीत ही सन्तों का स्वभाव होता है, न उन्हें संसार की वाह-वाह चाहिए और न ही उनकी उपलब्धियों को जगत के लोग समझ सकते हैं। इसलिए ये सन्तजन सबसे दूर एकान्त में रहते हैं और वहीं अपने भीतर बहने वाले प्रेमरस प्रवाह में निमज्जन करते रहते हैं ऐसा प्रतीत होता है कि सन्त श्रीप्रियाशरण जी का बादग्राम से वृन्दावन भी उतना आना जाना नहीं हुआ अगर ऐसा होता तो वृन्दावन के प्रचीन लोगों में उनकी कुछ चर्चा पाई जाती और उस परम्परा से आधुनिक लोगों के द्वारा कुछ जानकारी मिल पाती। यद्यपि यह

प्रसंग कुछ ही दशकों का है तो भी कुछ विशेष परिचय न मिल पाने के ये ही कारण प्रतीत होते हैं।

संत श्रीप्रियाशरण जी की अध्यात्म राज्य में गहरी पैठ थी। वे समाहित चितवाले एक दुर्लभ सन्त थे। धारणा, ध्यान, समाधि के वे मानो एकत्र स्वरूप थे। रसिकभक्त श्रीसहचरी सुख जी ने कहा है कि जिन भाग्यशाली उपासकों का चित् श्रीप्रियाप्रीतम के प्रेमरस में डूब चुका है उन्हें धारणा, ध्यान और समाधि के लिए अलग से कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। प्रेमरस में अवगाहन करने पर ये तीनों अवस्थाएं सहज ही प्राप्त हो जाती है—

धारण ध्यान समाधि तिनके प्रेम में सब पाइए।

वस्तुत: रसिक भक्तों की प्रेमदशा में ये तीनों अवस्थाएँ अन्तर्निहित होती हैं। **ध्यान**-लक्ष्य के प्रति चित्तवृत्ति के निरन्तर प्रवाह का नाम है। **धारणा**-ध्यान की पूर्वास्था है और शरीर संसार की सर्वथा विस्मृति होने पर लक्ष्य में जो परिपूर्ण तन्मयता होती है उसे **समाधि** कहते हैं। प्रेमीभक्त को ये तीन दशाएँ स्वत: प्राप्त होती है इसलिए उसकी विशिष्ट आन्तरिक स्थिति के लिए भाव समाधि शब्द प्रयोग किया जाता है। संत श्रीप्रियाशरण जी ऐसी ही भाव समाधि में निमग्न रहने वाले एक लोकोत्तर रसिक भक्त थे। वे कई प्रहर तक इसी अवस्था में लीन रहा करते थे। कभी-कभी तो उन्हें ऐसी समाधि लग जाती कि वे अनेक दिनों तक उसी में डूबे रहते थे। उस समय उनके समस्त देह व्यापार बन्द हो जाते और उन्हें किंचित् भी बाह्यज्ञान नहीं होता। अपनी उस छोटी सी गुफा में वे लोगों की दृष्टि से ओझल रहकर विराजमान रहते। कब सूर्योदय हुआ और कब सूर्यास्त हुआ इसका उ[illegible]हीं रहता। न उन्हें दिन में होने वाला कोलाहल सुनाई दे[illegible] ही मध्य रात्रि की नीरवता की ओर उनका

ध्यान जाता। समाधि से व्युत्थान होने पर शनैः-शनैः उनकी चेतना बाह्य जगत में लौटती और उनका शरीर भी धीरे-धीरे कुछ समय बाद ही उठने, चलने, फिरने और अन्य देहकृत्यों के योग्य हो पाता।

एक बार सन्त श्रीप्रियाशरण जी भाव समाधि में अनेक दिनों तक रहे। इस अवधि में बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी जहाँ तक बन पड़ता उनकी गुफा के निकट ही बैठे रहते। वहीं वे अपना भजन साधन करते रहते साथ ही श्रीप्रियाशरण जी का भी ध्यान रखते। कई दिनों तक समाधि में रहने के बाद वे एक दिन लगभग रात्रि में उस दशा से बाहर आए। संयोग की बात है कि बाबा उस समय गुफा के निकट ही बैठे हुए थे। उन्होंने अनुभव किया कि गुफा के भीतर से सन्तजी का कुछ अस्पष्ट स्वर सुनाई दे रहा है। वे तत्काल उठे और लालटेन आदि से प्रकाश व्यवस्था कर गुफा के भीतर गये। वहाँ देखा कि श्रीप्रियाशरण जी प्रायः प्रकृतिस्थ हो चुके हैं। बाबा ने उन्हें प्रणाम किया और फिर वहीं बैठ गये। थोड़ी देर बाद उन सन्त जी ने बाबा से कुछ खाने के लिए माँगा। रात्रि अधिक हो चुकी थी मन्दिर के पुजारी आदि सो चुके थे। बाबा के पास कोई खाद्य सामग्री नहीं थी। उन्होंने यह सोचकर कि आहार व्यवस्था में तो समय लगेगा, इन्हें पहले जल पिला देना चाहिए अतः जल का एक लोटा बाबा ने उनकी सेवा में प्रस्तुत किया।

संत श्रीप्रियाशरण जी ने जैसे ही वह जल पिया कुछ ही क्षणों बाद उन्हें पेट में पीड़ा प्रारम्भ हो गयी। पीड़ा ने क्रमशः उग्ररूप धारण किया। संतजी पेट पर हाथ रखे धैर्यपूर्वक पीड़ा सहन करते रहे। कुछ देर बाद भी जब पीड़ा का शमन नहीं हुआ तो श्रीप्रियाशरण जी ने बाबा से कहा—राधावल्लभशरण! इस

समय यदि कुछ खाने को मिल जाय तभी यह पीड़ा धीरे-धीरे शान्त हो सकती है।

अनेक दिनों तक कुछ न खाने पीने के पश्चात् प्रथम बार खाली पेट जल पीने के कारण यह पीड़ा हुई थी। इसे स्पष्ट करते हुए श्रीप्रियाशरण जी ने आगे कहा "पानी मेरे पेट में लग गया है इसलिए कुछ खाना आवश्यक है तभी पीड़ा शान्त होगी।

मन्दिर के सेवारत पुजारी आदि सभी अपना-अपना कक्ष बन्द करके सोये हुए थे इसलिए बाबा मन्दिर परिसर से निकलकर गाँव की ओर आए। वहाँ सर्वत्र अंधकार एवं नीरवता थी। '**काले**' नामक एक व्यक्ति से बाबा का परिचय हो गया था। वह व्यक्ति उस समय सरपंच था। बाबा ने उसे जगाया और सन्तजी की स्थिति बताकर कुछ खाद्य पदार्थ माँगा। संयोग की बात है कि काले के घर में भी उस समय कोई भोजन पदार्थ नहीं था। रात्रि में उसने दूध जमाने के लिए उसमें जामन डाल रखा था उस आधे जमे हुए दही को ही लेकर काले पूज्य बाबा के साथ मन्दिर आया। संत श्रीप्रियाशरण जी ने उसमें से थोड़ा सा पान किया। कुछ देर पश्चात् धीरे-धीरे उनकी उदर पीड़ा शान्त होने लगी कुछ देर में वे स्वस्थ हो गए।

संत श्रीप्रियाशरण जी सर्वथा निर्भीक और भगवत् विश्वासी महापुरुष थे। देह से ममता समाप्त हुए बिना पूर्ण निर्भयता आना संभव नहीं है। शरीर को मैं और मेरा मानने पर इससे आसक्ति होना स्वाभाविक है। श्रीप्रियाशरण जी देह में अहम और मम के भाव से सर्वथा मुक्त थे इसलिए उनमें देह को लेकर कोई भय भी नहीं था। ऐसी अलौकिक निर्भयता बिरले महापुरुषों में ही होती है। एक बार वे गुफा के पास ही खड़े हुये थे और उनसे कुछ ही दूरी पर बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी खड़े

थे। सहसा बाबा की दृष्टि एक सर्प पर पड़ी जो श्रीप्रियाशरण जी के चरणों निकट ही था। बाबा चिल्लाकर बोले–महाराज जी आपके निकट ही सर्प है इसलिए एक तरफ हो जाइए। यह सुनकर वे उस स्थान से अलग हटे किन्तु फिर भी उनका पैर सर्प के ऊपर पड़ गया। पैर का आघात होने से क्रोधित होकर सर्प ने अपना फन उठाकर संत जी के पैर में डस लिया। प्रत्यक्ष दृष्टा बाबा आगे चलकर इस घटना को सुनाया करते थे उनके अनुसार वह सर्प लगभग ७-८ फीट लम्बा था, काले रंग के उस सर्प का विशाल फन भी था।

सर्प के विषय में यही सुना जाता है कि वह किसी को डस लेने के बाद अतिशीघ्र वहाँ से दूर किसी सुरक्षित स्थान पर चला जाता है। दूसरी ओर यह भी स्वाभाविक है कि जिस व्यक्ति को सर्प ने डसा हो वह भी उसके पुनः आक्रमण से बचने के लिए सर्प से दूर हट जाता है। किन्तु इस घटना में आश्चर्य यह हुआ कि न तो सर्प उस स्थान को छोड़कर भागा और न ही संत श्रीप्रियाशरण जी वहाँ से एक पग दूर हटे। वे जहाँ खड़े थे उसी स्थान पर बैठ गये और वह सर्प भी उनके सामने सर्वथा फन उठाए बैठा रहा। संत जी सर्वथा निश्चिन्त और प्रसन्न मुद्रा में ऐसे बैठे हुए थे जैसे कुछ हुआ ही नहीं। कुछ दूरी से श्रीराधावल्लभशरण जी चकित भाव से आवाक् होकर इस दृश्य को देख रहे थे। इसके पश्चात् जो घटना घटी उसने तो बाबा को अति आश्चर्यचकित कर दिया।

संत श्रीप्रियाशरण जी ने सर्वथा सहज भाव से सर्प से यह कहा कि आपका क्रोध यदि शान्त न हुआ हो तो एकबार और डस लीजिए। यह कहकर उन्होंने अपना हाथ उठाया और सर्प के फन पर उसे पुचकारते हुए फिराने लगे। इस प्रकार स्पर्श करने

से वह और अधिक क्रोधित होकर उछला और उछलते हुए सन्त जी के भाल पर फिर डस लिया। इसके पश्चात् फिर वहीं पहिले के समान दृश्य उपस्थित हुआ अर्थात् सर्प उसी स्थल पर फन फैलाये बैठा रहा और संत श्रीप्रियाशरण जी प्रसन्न मुद्रा में वहीं बैठे रहे। इस प्रकार कुछ क्षणों के लिए नीरवता रही परन्तु उसके पश्चात् संत जी ने वही वाक्य कहते हुए सर्प के फन पर हाथ फिराने का उपक्रम किया। इस कारण सर्प भी और अधिक क्रुद्ध होते हुए उछला और संत जी के चेहरे पर डस लिया।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी बताया करते थे कि ऐसी तीन या चार बार हुआ। संत जी का उसके फन पर हाथ फेरना और सर्प द्वारा उछल कर उनको डसना, इस दृश्य को बाबा कुछ दूरी से देख रहे थे। उन्होंने श्रीप्रियाशरण जी को बार-बार कहा भी कि वे सर्प को न छुएं किन्तु यह उन निर्भय आत्माराम संत की एक लीला मात्र थी कि वे सर्प को पुचकारते रहे और वह उनको डसता रहा। तीन-चार बार मुख पर डसने के पश्चात् वह सर्प स्वयं ही वहाँ से चला गया।

सर्पदंश के कारण संत श्रीप्रियाशरण जी के चेहरे से रक्त की धाराएं बहने लगीं। उन्होंने चेहरा पोछने के लिए बाबा से जल में भिगोया गीला वस्त्र माँगा। तत्काल एक साफी गीली करके उन्होंने संत जी को दी। चेहरा पोंछकर श्रीप्रियाशरण जी उसी सहज निश्चिन्त मुद्रा में वैसे ही बैठे रहे जैसे सर्प के डसने से पहले बैठे थे। इतनी भयावह और प्राणघातक घटना होने पर भी उन महापुरुष की आन्तरिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान् कह रहे हैं—

यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते (गीता ६/२२)

अर्थात्—मेरी प्रेमाभक्ति के आनन्द में स्थित भक्त ...
भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ गीता ...

अर्थात्—हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग से रहित मेरा भक्त मुझे बहुत प्रिय है।

अपनी सहज स्थिति में विराजमान संत श्रीप्रिया... जी इस घटना से किंचित् भी विचलित नहीं हुए किन्तु बाबा श्रीराधावल्लभ जी इससे बहुत दुःखी और चिन्तित हुए। उन्होंने घबड़ाहट भरे स्वर में कहा कि महाराज जी! यह विषधर काला नाग था। मैं सर्प विष को झाड़ने वाले किसी व्यक्ति का पता लगाकर उसे लेकर आता हूँ। बाबा से यह सुनकर सन्तजी ने जो बात कही वह सर्वथा चौकाने वाली होकर भी परम सत्य थी। इससे उनकी आन्तरिक भगवान् निष्ठा का पता चलता है कि वे प्रेमी सन्त अपने भीतर किस सुख-सुधा सिन्धु में डूबे हुए थे। बाबा श्रीराधावल्लभ जी को मना करते हुए उन्होंने कहा- "किसी **को लाने की आवश्यकता नहीं है; सर्प दंश से मुझे कुछ नहीं होगा। जिसे उस काले ने पहले से ही घायल कर रखा हो उस पर इस काले विषधर का क्या प्रभाव पड़ेगा?**

सन्त श्रीप्रियाशरण जी का यह वाक्य अति गूढ़ होते हुए भी स्पष्ट अर्थ वाला है। नव जलधर कान्ति वाले श्रीश्यामसुन्दर ने अपनी मुनिमन मोहिनी छवि का जादू जिस पर डाल रखा हो, जिसे अपनी उन्मादकारी प्रेम मदिरा पिला रखी हो उस पर इस काले भुजंग के विष का भला क्या प्रभाव पड़ेगा? विष कोई भी हो वह मानव शरीर पर पहुँचने पर उसकी सारी क्रियाओं को क्रमशः बाधित करते हुए उसे अविभूत कर लेता है। इससे वह व्यक्ति न केवल व्यवहारिक कार्यों को अपितु बोलना, चलना,

खाना-पीना इत्यादि सामान्य शारीरिक क्रियाओं को भी नहीं कर पाता है। तब यह माना जाता है कि इस व्यक्ति पर विष का घातक प्रभाव पड़ चुका है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विष व्यक्ति की समस्त चेष्टाओं को बाधित कर उसे सर्वथा अपने आधीन कर लेता है। फिर वह व्यक्ति किसी के काम का नहीं रह जाता। न वह अपना स्वार्थ साध पाता है और न ही दूसरे के स्वार्थ साधने में सहयोग कर पाता है। ऐसा व्यक्ति संसार में मृत या मृततुल्य ही माना जाता है। श्रीश्यामसुन्दर की रूपमोहिनी का भी ठीक ऐसा ही प्रभाव चित्त पर पड़ता है। उनकी छबि छटा से घायल हुआ व्यक्ति फिर किसी अन्य कार्य के योग नहीं रह जाता। उसकी भी समस्त व्यवहारिक चेष्टाएँ तथा चलना-फिरना, खाना-पीना, सोना आदि शारीरिक क्रियायें रुक सी जाती है न वह अपना स्वार्थ पूरा कर पाता है और न ही दूसरे के कार्य में उसका सहयोग कर पाता है। विष से अधीन हुए व्यक्ति के समान वह भी नन्दलाल की प्रेम मदिरा पीकर उन्मत्त की भाँति उसके अधीन हो जाता है। जैसे विष के प्रभाव से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है अथवा वह मृततुल्य हो जाता है। ऐसी ही दशा उस प्रेमी की भी हो जाती है। अपनी ऐसी ही दशा का वर्णन करते हुए गोपियों ने कहा है—

शरदुदाशये साधुजातसत्
सरसिजोदर श्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः॥

श्रीमद्भागवत १०/३१/२

अर्थात्—हे प्यारे! हम तुम्हारी बिना मोल की दासियाँ हैं। शरद ऋतु में सरोवर में खिलने वाले परम सुन्दर नीलकमल

की शोभा को चुराने वाले आपके नेत्र हैं। ऐसे मदभरे नेत्रों की तिरछी चितवन से की मार से तुम हमें पहले ही मार चुके हो, अपने पैने कटाक्षों से इस प्रकार तुम्हारा हमें मार डालना क्या जगत में वध नहीं कहलाएगा?

प्रेम के वाणों से घायल हुआ व्यक्ति न तो लोक लाज की ओर ध्यान दे पाता है और न ही कुल परम्पराओं का अनुशरण कर पाता है। उसे कोई शिक्षा प्रदान की जाय तो वह उन शिक्षाओं का अनुशरण भी नहीं कर पाता फिर चाहे शिक्षा देने वाला लोक समुदाय हो या शास्त्र समुदाय। श्रीहित हरिवंश महाप्रभु ने इसे असाधारण गति कहा है अर्थात् जिस प्रकार साधारण मनुष्य लौकिक सीमाओं के अनुसार अथवा शास्त्र के निर्देशानुसार जीवन व्यतीत करते हैं ऐसा यह नहीं कर पाता–

न जानीते लोकं न च निगमजातं कुलपरं,
परां वा नो जानात्यहह न सतां चापि चरितम्।
रसं राधायामाभजति किल भावं ब्रजमणौ,
रहस्ये तद्यस्य स्थितिरपि न साधारणगतिः॥

अर्थात् जो श्रीराधा में स्थित रस की उपासना करता है और ब्रजमणि श्रीकृष्ण में स्थित भाव की उपासना वह प्रेममत्त उपासक न इस लोक को जानता है न वेदों के समूह को और न कुलपरम्परा को। और तो और वह महत्पुरुषों के चरित्रों को नहीं जानता जिसकी इस रहस्य में स्थिति है उसके मन की साधारण गति नहीं होती अर्थात् असाधारण गति होती है।

श्रीराधावल्लभलाल के प्रेमरस का पान करने वाले भाग्यशाली उपासकों की इस असाधारण गति की, शरीर में विष प्रविष्ट होने वाले व्यक्ति के साथ जो किंचित् तुलना की गई है उसके ये ही सब कारण है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है।

विष से आहत व्यक्ति की साधारण गति नहीं होती और प्रेमी महापुरुष की भी साधारण गति नहीं होती। एक के भीतर विष पहुँच कर उसे असाधारण बना देता है तो दूसरे के अन्दर प्रगटित प्रेम उसे असाधारण बना देता है। विष और प्रेम दोनों का बाह्य दृष्टि से बहुत कुछ समान लक्षणों वाला एक सा प्रभाव होता है। सन्त श्रीनागरीदास जी ने श्रीहित हरिवंश महाप्रभु की वाणी को इन्हीं कारणों से सपोला (साँप का बच्चा) कहा है। जिस प्रकार सर्पशावक डसकर शरीर में मारक विष प्रविष्ट कर देता है उसी पर श्रीहरिवंश वाणी उपासक को श्रीराधावल्लभलाल की प्रेम सुधा पिलाकर उन्मत्त कर देती है। लोक में ऐसी भी प्रसिद्धि है कि सर्प के बच्चे के काटने पर उसके विष को उतारना गारुड़ी के लिए भी कठिन होता है क्योंकि सर्प का बच्चा उसके मंत्र प्रभाव में नहीं आता। यही विशेषता श्रीहरिवंश वाणी में है। वाणी के रस का पान करने वाले पर भी किसी परिस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

दोहा : **चिकुला कारे साँप कौ, गारुड़ मंत्र अमान।**
देखत ही विष पूरि है, परसेन कौं कहा बान॥

काले विषधर सर्प का बच्चा विष झाड़ने वाले के मंत्र को नहीं मानता। सृष्टि में ऐसी भी विषैले सर्प हैं जिनके देख लेने पर ही मनुष्य में विष व्याप्त हो जाता है यदि वे डस ले तो क्या दशा होगी?

वाणी अहिवर चेंटुआ, स्वास भूमि पकि जाइ।
ताकों मंत्र न गारडू, कौन सकै कर नाह॥

श्रीहरिवंश महाप्रभु की वाणी भी ऐसे ही प्रबल भुजंग के सपोला (सर्पशावक) जैसी है जिसकी श्वांस के स्पर्श से भी भूमि पक जाती है। झाड़ने वाले के मंत्र को वह न मानता हो फिर भला उसे हाथ से कैसे पकड़ सकता है?

धोखै कोऊ जनि गहौ, बानी अहिवर पोइ।
फूँक परसि जरि जाइगौ, झूठी अँग अँग होइ॥

अर्थ–इसलिए श्रीहरिवंश वाणी का प्राणों को अभिभूत कर देने वाले इस लोकोत्तर प्रभाव को ठीक से जाने बिना कोई भी इस वाणी के रस में अवगाहन करने का प्रयत्न न करे क्योंकि यह वाणी श्रेष्ठ भुजंग के उस शावक के समान है जिसकी फूँक के स्पर्श से भी विषम दाह उत्पन्न हो जाता है। ऐसे विषधर से जूझने का प्रयास तो सर्वथा विफल ही हो जायगा।

पूज्य संत श्रीप्रियाशरण जी श्रीहरिवंश महाप्रभु की वाणी की महामादक प्रेम सुधा को पहले ही पी चुके थे फिर भला उन पर सर्प के डसने का क्या प्रभाव होता। जैसे सर्प का विष मारक होता है ऐसे ही श्रीहरिवंश वाणी का अमृत किसी अन्य अर्थ में मारक प्रभाव रखता है। सर्प विष अपने प्रभाव से समाप्त कर देता है किन्तु उसका परलोक में कोई स्थान नहीं होता। श्रीहरिवंश महाप्रभु की मादक सुधा पीने वाले भाग्यशाली रसिकजन इस लोक में तो। उन्मत्त के समान जीवन व्यतीत करते ही है पर लोक में भी श्रीराधावल्लभलाल के प्रेम सुधासिंधु में चिरकाल तक अवगाहन करते रहते हैं। फिर कभी उन्हें जन्ममृत्यु के फेर में नहीं आना पड़ता, वे सदा के लिए अमर हो जाते हैं।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी बादग्राम में सन्त श्रीप्रियाशरण जी के सत्संग-सान्निध्य में कितने समय रहे इसकी हमें निश्चित जानकारी नहीं है। अनुमान से यही कहा जा सकता है कि ग्रीष्म काल के २-३ माह बाबा बादग्राम में उनकी सेवा में रहे होंगे। ग्रीष्मकाल में श्रीवृन्दावन के मन्दिरों में फूल बंगला उत्सव आयोजित होते हैं।

श्रीठाकुर जी फूलों से बने हुए वस्त्राभूषण धारण करके फूलों से ही निर्मित भवन में विराजमान होते हैं। उस समय उन्हें ऋतु के अनुसार शीतल भोग समर्पित किए जाते हैं तथा व्यजन पंखा डुलाते हुए शीतल वायु से उनकी लाड़मयी सेवा की जाती है। फूल बंगला उत्सव का दर्शन करने के लिये स्थानीय भक्तजन और बाहर से भी बड़ी संख्या में दर्शनार्थी एकत्रित होते हैं। आषाढ़ शुक्ला द्वितीया से वर्षा ऋतु का आगमन मानते हुए फूल बंगला उत्सवों को विराम दिया जाता है। इसके एक माह पश्चात् वर्षाकालीन हिण्डोल उत्सव प्रारम्भ होता है।

ग्रीष्म ऋतु के थोड़े ही दिन शेष जानकर सन्त श्रीप्रियाशरण जी ने एक दिन बाबा को यह आदेश दिया कि वे वृन्दावन जाकर ठाकुर श्रीराधावल्लभलाल जी के फूल बंगला उत्सव का दर्शन लाभ लें। यद्यपि बाबा की इच्छा सन्तजी की सेवा में निरन्तर बने रहने की थी तथापि उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर वे बादग्राम से वृन्दावन चले आए। उस समय ग्रीष्मऋतु पूर्ण होने वाली थी और वर्षाऋतु के आगमन के चिह्न प्रकट हो रहे थे। जिस दिन बाबा वृन्दावन आए उसी दिन से वर्षा की निरन्तर झड़ी लग गई। बाबा एक दिन के लिए ही वृन्दावन आये थे उनका विचार था कि रात्रि में ठाकुरजी के फूल बंगला के दर्शन करके प्रात: बादग्राम लौट जाऊँगा किन्तु लौटने वाले दिन ही वे पेचिश रोग से ग्रस्त हो गये उन्हें बार-बार उदर शूल होने लगा और शूल के साथ ही अतिसार होने के कारण दिन में कई बार शौच जाना पड़ता था। इस कारण वे तीन दिन तक बादग्राम नहीं लौट पाये। इन तीन दिनों वर्षा भी निरन्तर बनी रही। बाबा के मन में बार-बार संत श्रीप्रियाशरण जी को लेकर चिन्तन होता रहता था। वे समतल भूमि पर खोदकर बनाई गयी गुफा में

निवास करते थे ऐसी गुफा वर्षाकाल के लिए उपयुक्त नहीं होती है क्योंकि तीव्र वर्षा होने पर गुफा में पानी भर जाना स्वाभाविक है। बाबा को इन तीन दिनों में यही चिन्ता बार-बार कर रही रहती थी। चौथे दिन स्वास्थ लाभ होने पर वे बादग्राम लौट गये।

पिछले तीन दिनों से दिन रात प्रचुर वर्षा हो रही थी। सर्वत्र वर्षाकालीन वातावरण था। भीगने से बचने के लिए प्रायः सभी लोग घरों के भीतर ही थे। बादग्राम मन्दिर के पुजारी और एक दो सहयोगी जो उस समय वहाँ रहते थे वे भी वर्षा के कारण अपने-अपने कक्षों में थे? बादग्राम पहुँचकर बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी ने जब ऐसी स्तब्धता जहाँ तहाँ देखी तो उनका हृदय वीतराग सन्त श्रीप्रियाशरण जी के प्रति और अधिक चिन्तित हो उठा। उनका कक्ष तो एकमात्र वह गुफा ही है। परन्तु वर्षा के जल से उस गुफा में रहकर सुरक्षा सम्भव नहीं है। ऐसे ही विचारों से आकुल हृदय बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी झाड़ियों के मध्यस्थित उस गुफा की ओर आगे बढ़े। जैसे ही वे गुफा के सम्मुख आये, वहाँ का दृश्य देखकर उनका हृदय दहल उठा। जिस विचार को लेकर वे आशंकित थे वही दृश्य उनके सामने उपस्थित था।

आस पास से सिमटकर वर्षा का जल गुफा में भर चुका था। केवल एक व्यक्ति ही उसमें बैठ या लेट सके इतनी बड़ी वह गुफा थी जो अब वह जल से प्रायः भर चुकी थी। सन्त श्रीप्रियाशरण जी जल से भरी उस गुफा में अपनी समाधि मुद्रा में आसन लगाये हुए विराजमान थे। उनके नेत्रों से ऊपर का भाल प्रदेश और मस्तक भाग ही मात्र दिखाई दे रहा था। शरीर का शेष भाग जल में डूबा हुआ था। उस स्थिति में जबकि मुख और नासिका के ऊपर तक जल होने से श्वास क्रिया भी सम्भव नहीं

थी, वे देहानुसन्धान से रहित परमहंस सन्त अविचल भाव से जल में विराजमान थे। भगवत् तत्त्व में चित्त के समाहित होने की यह अवर्णनीय अवस्था थी। उस समय उनके मन-प्राण परमानन्दरस सिन्धु में निमग्न थे और उनका शरीर ईश्वर इच्छा से संचालित होने वाले प्रारब्ध कर्म विधान को समर्पित था। जिसने अपने चित्त को पूर्णरूपेण श्रीराधावल्लभलाल को समर्पित कर रखा हो उसके शरीर की रक्षा तथा शरीर के समस्त योगक्षेम का निर्वाह भी उन्हीं की तरफ से होता है। अपने जन की सब प्रकार से रक्षा और उसके योगक्षेम का वहन करने के उनके मंगलमय विधान के अनुसार ही बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी ठीक समय पर गुफा के सम्मुख आकर उपस्थित हुए।

सन्त श्रीप्रियाशरण जी को इस तरह जल में डूबा देखकर बाबा का हृदय काँप उठा। वे अतिशीघ्र गुफा की ओर दौड़े और वे तत्काल सन्त श्रीप्रियाशरण जी को उठाकर जल से बाहर ले आए। उन्हें बाहर लाने के पश्चात् बाबा ने देखा की वर्षा का जल शरीर में भीतर चले जाने के कारण उनका पेट फूल गया था इससे यह अनुमान होता है कि वे बहुत देर से इस प्रकार आमस्तक जल में डूबे रहे हैं। बाबा ने पहले कहीं सुना था कि यदि किसी के शरीर में किसी घटनावशात् जल चला जाय तो उसे कन्धे पर लिटाकर उसके भीतर का जल निकाला जा सकता है। इसके आधार पर श्रीबाबा ने बिना देरी किये उनके शरीर को अपने कन्धे पर इस प्रकार लिटा लिए जिससे कमर का ऊपरी भाग नीचे भूमि की ओर रहे। इस प्रकार से पेट में भरा हुआ पानी मुख के द्वारा बाहर आ गया। कुछ देर यह क्रिया करने के पश्चात् बाबा ने उन्हें समतल भूमि पर लिटा दिया। इस प्रकार उपाय

करने से सन्त श्रीप्रियाशरण जी को स्वास्थ्य लाभ हुआ और [illegible]
धीरे-धीरे होश में आ गये।

वैष्णव समाज में मन्त्रदाता गुरु एवं वेषदाता गुरु [illegible] अतिरिक्त साधना की प्रेरणा प्रदान करने वाले साधन गुरु का [illegible] प्रचलन देखा जाता है। यद्यपि यह प्रचलन अत्यल्प ही दिखाई [illegible] है तथापि प्राचीनकाल से ही इसके प्रमाण उपलब्ध होते हैं। इसलि[illegible] इसकी प्राचीनता में सन्देह नहीं किया जा सकता है। कभी-कभ[illegible] कोई साधक अपने मंत्रदाता गुरु से अतिरिक्त किसी ऐसे महापुरु[illegible] के सम्पर्क में आता है जिनकी रहनी-सहनी त्याग वैराग्य, भजननि[illegible] एवं साधन पद्धति आदि विशेषताएँ उस साधक के लिए आदर्[illegible] रूप हो जाती हैं और वह उनका दृढ़ता से अनुसरण करने लगता है[illegible] ऐसा होने पर वह साधक उन महापुरुष का साधक शिष्य कह[illegible] जाता है और वे महापुरुष उसके साधन गुरु अथवा सद्गुरु कहलाते हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि मन्त्रदाता गुरु से दीक्षि[illegible] साधक जिस सम्प्रदाय परम्परा में है उसके साधन गुरु अथवा सद्गुरु उसकी परम्परा के न होकर किसी अन्य ही सम्प्रदाय के हों। ऐसी स्थिति में वह साधक अपनी सम्प्रदाय प्रणाली के अनुसार ही भजन करता है और उसके साधन गुरु उसे त्याग, वैराग्य एवं भजन दृढ़ता आदि की प्रेरणा प्रदान कर उस पर अनुग्रह करते हैं। किन्तु जैसा कि हमने ऊपर कहा है कि साधन गुरु और साधक शिष्य के ये उदाहरण कम ही प्राप्त होते हैं। प्रायः सर्वत्र ही मन्त्रदाता गुरु से ही साधक भजन मार्ग सम्बन्धी सभी शिक्षाओं को ग्रहण करते हैं अतएव वे ही उसके गुरु एवं साधन गुरु आदि सबकुछ होते हैं, यही आम प्रचलन है।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी के जीवन में संत श्रीप्रियाशरण जी का आगमन उनके साधन गुरु अथवा सद्गुरु

[illegible]के रूप में हुआ। संत श्रीप्रियाशरण जी देहाध्यास से ऊपर उठी हुई मनोदशा तथा अपने परमाराध्य के भजन चिन्तन में उनके समाहित चित्त की तन्मयता इत्यादि विशेषताओं का बाबा के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने सदा के लिए इन दुर्लभ एवं अनुपम उपलब्धियों को अपने आदर्श के रूप में ग्रहण किया। संत श्रीप्रियाशरण जी से जो भजन शिक्षायें उन्हें प्राप्त हुईं उन्हीं का अनुसरण करते हुए बाबा ने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। उन्होंने सदैव इस बात की सावधानी रखी कि संत श्रीप्रियाशरण जी के द्वारा निर्दिष्ट भजननिष्ठा के मार्ग से वे किंचित् भी विचलित न हों। वे सदैव उनके सब प्रकार से आदर्श बने रहे। इस दृष्टि से संत श्रीप्रियाशरण जी को बाबा अपना साधन गुरु अथवा सद्गुरु मानते थे। इस प्रकार बाबा के जीवन में मंत्रदाता गुरु गोस्वामी श्रीरूपलाल जी अधिकारी, वेष प्रदाता गुरु बाबा श्रीनवेलीशरण जी तथा साधन गुरु संत श्रीप्रियाशरण जी इन तीनों का महत्वपूर्ण स्थान है। मंत्रदाता गुरु से उन्होंने सम्प्रदाय प्रणाली और सेवा निष्ठा ग्रहण की, वेष प्रदाता गुरु से उन्हें संत सेवा की प्रेरणा प्राप्त हुई तथा साधन गुरु संत श्रीप्रियाशरण जी से उन्हें प्रगाढ़ भजननिष्ठा का आदर्श प्राप्त हुआ।

जैसा कि हम पूर्व में कह चुके हैं कि संत श्रीप्रियाशरण जी के विषय में अन्य जानकारियाँ प्राप्त नहीं हैं। बाबा का और उनका संग कितने समय तक रहा इसे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। संत श्रीप्रियाशरण जी कब तक धरा धाम में रहे यह भी हमें ज्ञात नहीं है। अतएव इस प्रसंग को यहाँ पूर्ण कर हम बाबा की जीवन सम्बन्धी अन्य प्रसंगों की ओर अग्रसर होते हैं।

पूज्य बाबा श्रीराधाशरण जी को श्रीधाम वृन्दावन आये लगभग पाँच सात वर्ष ही हुए थे। उन दिनों सम्भवतः वे संत

निवास वाली कुटिया में ही रहते थे जिसकी चर्चा पूर्व में की जा चुकी है। उन दिनों एक धनी व्यक्ति बाबा के सम्पर्क में आया। हरियाणा क्षेत्र का निवासी था। बाबा का त्याग, वैराग्य और भजन निष्ठा देखकर वह उन में श्रद्धा रखने लगा। कभी अकेले और कभी परिवार के साथ बाबा के पास आया करता था। उसके परिवारी सदस्यों में उसकी एक पुत्रवधू भी थी जो साथ में प्रायः आया करती थी। उसकी बहू सुन्दर-युवती थी जितनी देर वह व्यक्ति बाबा के पास बैठता उसकी बहू अन्य लोगों की दृष्टि बचाकर बाबा को ही देखा करती थी। उन दिनों बाबा की आयु लगभग तीस वर्ष की थी। वे गौरवर्ण के एवं रूपवान् थे। वृद्धावस्था तक भी वे सुन्दर और गठीले देह वाले दिखाई देते थे फिर उस समय वे पूर्ण युवक ही थे। बाबा प्रारम्भ में उस बहू के अपने प्रति होने वाले आकर्षण को समझ नहीं पाये किन्तु बार-बार उसके आने पर धीरे-धीरे उन्हें बहू के मनोभावों का आभास होने लगा।

कुछ दिन पश्चात् उस धनी व्यक्ति ने बाबा के सम्मुख एक प्रस्ताव रखा। संत भवन की वह कुटिया जिसमें बाबा रहते थे, आकार में छोटी भी थी और सभी ऋतुओं में वह उतनी अनुकूल भी नहीं थी। श्रीराधावल्लभ मन्दिर से संत निवास की दूरी लगभग एक मील है। उन दिनों श्रीवृन्दावन में भवनों का उतना बाहुल्य नहीं था। संत निवास के आस-पास बाग-बगीचे ही अधिक थे। पक्की सड़कों का अभाव था और बिजली भी नहीं थी। ऐसी स्थिति में श्रीराधावल्लभ मन्दिर से शयन आरती के दर्शन कर संत निवास में लौटना असुविधाजनक था। यह सब देख समझकर वह श्रद्धालु व्यक्ति बाबा से बोला कि बस्ती के निकट एक विशाल भूखण्ड खरीद कर और उस पर समस्त सुविधाओं से युक्त आश्रम भवन बनवाकर आपको समर्पित कर

दूँगा आप उसी में निवास कीजियेगा। मैं जब कभी परिवार सहित वृन्दावन आया करूँगा तब २-३ दिन के लिए उस आश्रम में जाया करूँगा।

यह प्रस्ताव सुनकर बाबा ने तत्काल उसका हाँ या ना के रूप में उत्तर नहीं दिया। उनका सोचना था कि इस विषय पर अच्छी तरह विचार करके ही कोई कदम उठाना चाहिए इसलिए प्रस्ताव सुनकर वे मौन ही रहे। उनके इस मौन का धनी व्यक्ति ने एक प्रकार से सहमति ही मानी और वह अपनी योजना को साकार करने के लिए प्रयत्नशील हो गया।

श्रीवृन्दावन में मोतीझील नामक एक बस्ती है वहाँ उसने एक बड़ा भूभाग खरीदने का विचार बनाया। उसका आकार प्रायः २००० (दो हजार)। गज था और वह वृन्दावन बस्ती के निकट ही था। उस धनी व्यक्ति ने सब प्रकार की अनुकूलता देखकर उस भूभाग के खरीदने का पक्का विचार बना लिया।

उधर श्रीराधावल्लभशरण जी के सामने जब से यह प्रस्ताव रखा गया था तब से वे भी इस विषय पर विचार कर रहे थे। उनके सामने रखा गया यह प्रस्ताव साधन सम्पन्नता एवं सुविधाओं की दृष्टि से तो लाभकारी था किन्तु इसका दूसरा पक्ष भी था जो अपने मायिक प्रलोभनों से किसी अपरिपक्व विवेक वैराग्यवान साधक की जीवन दिशा को बदल सकता था। वेदादि शास्त्रों में और संत महापुरुषों की वाणियों में परमार्थ प्राप्ति की तीन बाधायें कही गई हैं। वे हैं—कामिनी, कंचन और कीर्ति। कहीं-कहीं कीर्ति अर्थात् मान प्रतिष्ठा का कामिनी कंचन में ही समाहार कर दो ही बाधाएँ कहीं गई हैं। रसिक संत श्रीहरिराम व्यास ने कहा है—

व्यास कनक अरु कामिनी, ये लाँबी तरवारि।
चले हुते हरि भजन कौं, बीचहिं लीनैं मारि।

बाबा श्रीराधावल्लभ जी के समक्ष उस धनी व्यक्ति द्वारा जो प्रस्ताव रखा गया वह ऊपर से देखने पर तो धन सम्पत्ति अर्थात् कंचन का ही प्रस्ताव दिखाई देता है। उस व्यक्ति ने एक विशाल भव्य आश्रम बनाकर बाबा को भेंट करने की बात कही। सरसरी दृष्टि से यह मात्र सम्पत्ति की प्राप्ति दिखाई देती है किन्तु इसके साथ ही प्रतिष्ठा की प्राप्ति भी अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई हैं क्योंकि सम्पत्ति के स्वामी को सर्वत्र मान सम्मान की दृष्टि से ही देखा जायगा। अतएव उसे कंचन के साथ कीर्ति की भी प्राप्ति होगी। यदि इस घटना क्रम को बाबा के सन्दर्भ में देखकर इसका सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो बाबा के लिए यह केवल कंचन और कीर्ति की प्राप्ति का ही प्रस्ताव नहीं अपितु इसमें गुप्तरूप से कामिनी का प्रस्ताव भी छुपा हुआ था। ऊपर हम यह कह आये हैं कि उस व्यक्ति की पुत्रवधू बाबा के प्रति दूसरा ही भाव रखती थी। आश्रम भवन बन जाने पर उस व्यक्ति के परिवार के साथ निकट और खुला सम्पर्क होना निश्चित था। इस प्रकार इस प्रस्ताव में कामिनी, कंचन और कीर्ति लक्ष्य प्राप्ति की तीनों महान बाधाएं एक रूप में थीं। कठोपनिषद् में कहा गया है—**श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धरिः। श्रेयो हि धीरोऽमि प्रियसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमात वृणीते।**

अर्थात् श्रेय और प्रेय ये दोनों मार्ग मनुष्य के समक्ष उपस्थित होते हैं। श्रेय का अर्थ है आत्म कल्याण का मार्ग और प्रेय कहते हैं प्रिय लगने वाले भोगों के साधन को। विवेकशील मनुष्य इन दोनों का भलीभाँति विचार कर श्रेय मार्ग ग्रहण करता है और अविवेकी मनुष्य भोगों को प्रदान करने वाले प्रेय मार्ग को स्वीकार करता है।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी सुदृढ़ विवेक वैराग्य से सम्पन्न थे। इस प्रस्ताव के पीछे छिपे महाविनाश को समझने में उन्हें कोई देर नहीं लगी। सांसारिक भोगों में उन्हें प्रारम्भ से ही कोई आकर्षण नहीं था। उनका एकमात्र लक्ष्य था श्रीवृन्दावन सघन निकुंजों में नित्य निरन्तर होने वाला श्रीराधावल्लभलाल का प्रेम विहार। उनकी समग्र प्रियता उसी नित्यविहार में थी फिर भला वे इस प्रलोभन में कैसे आते? वे श्रीहरिवंश महाप्रभु जी की वाणी का नित्य ही पाठ किया करते थे। ऐसे समय पर जब श्रेय और प्रेय दोनों मार्ग उनके सम्मुख थे, श्रीहरिवंश वाणी रस छप्पय से उन्हें प्रेरणा मार्गदर्शन एवं बल प्राप्त हुआ वे इस छप्पय का अधिकाधिक गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे—

ना जानौ छिन अंत कवन बुधि घटहिं प्रकाशित।
छुटि चेतन जु अचेत तेज मुनिये विसवासिता॥१॥
पराशर सुर इन्द्र कलप कामिनी मन फंद्या।
परि व देह दुख द्वन्द्व कौन क्रम काल निकंद्या॥२॥
यहि डरहि डरपि हरिवंश हित जिनव भ्रमहि गुण सलिल पर।
जिहिं नामनि मंगल लोक तिहुँ सुहरि पद भजु न विलम्ब कर॥३॥

अर्थात् मनुष्य के अन्तःकरण में किस क्षण कौन सी वृत्ति उठ जायगी इसका कोई भरोसा नहीं है। ऐसे मुनिवर जो अपनी साधनाओं की गहराई में प्रवेश करते हुए वाह्यज्ञान से रहित हो गये थे वे भी विषयों के विष से प्रभावित हो गये। इन्द्र जैसे देवता और पराशर जैसे मुनि, इनका मन भी स्त्रीरूपी माया के फँदे में फँस गया फिर सामान्य मनुष्य की क्या चले। वह तो वैसे भी काल और कर्म के अधीन होकर रहता है। इससे उसे

अनेक प्रकार के शारीरिक-मानसिक कष्ट सहने पड़ते हैं। कष्टों से उसे कौन मुक्ति दिला सकता है। श्रीहित हरिवंश कह रहे हैं कि माया के इस प्रबल वेग से सदा डरते रहो। रज और तम ये माया के (तीन) गुण जो अगाध जलराशि के समान हैं। इस जलराशि के ऊपर चलकर इसे पार करने की चेष्टा मत करो अन्यथा डूब जाओगे। इसे पार करने का केवल एक ही उपाय है वह यह है कि जिन श्रीठाकुर जी के पतित पावन नाम से तीनों लोकों का परम कल्याण सम्भव है उनके श्रीचरणों का निरन्तर भजन करो। भजन में प्रमादवशात् विलम्ब न करो।

इस छप्पय के अर्थ पर विचार करने से बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी का मन तत्काल एक सुदृढ़ निश्चय तक पहुँच गया। छप्पय में कहा गया है कि माया से सामना करने के स्थान पर उससे डरना ही ठीक है। उससे डरते हुए बचकर निकल जाने में ही भलाई है। बाबा ने इस शिक्षा को हृदयंगम करके निकल जाने का निश्चय किया। ऐसा निश्चय कर वे बिना किसी को सूचना दिए अपनी कुटिया से निकल पड़े। कई मील पैदल चलते हुए वे ब्रजमण्डल के कोयले नामक गाँव में पहुँचे।

कोयले गाँव मथुरा से लगभग ६ (छः) मील दूर है। यमुना नदी के किनारे स्थित कोयले ब्रज के प्राचीनतम गाँवों में से एक है। कोयले को कुछ लोग कोयलौं भी कहते हैं। गाँव से जमुना पार करने पर सामने गोकुल महावन है। ऐसा माना गया है कि श्रीवसुदेव जी कंस कारागृह से शीश पर श्रीबालकृष्ण को लेकर गोकुल महावन की ओर जब गये थे तब उन्होंने कोयले ग्राम से ही यमुना पार की थी। उस समय भाद्र मास था इस कारण यमुना का जल स्तर बहुत बढ़ा हुआ था। नदी पार करते हुए जल वसुदेव जी के कंठ तक आ पहुँचा। अब वे बालकृष्ण

की सुरक्षा को लेकर व्याकुल हो उठे। और कोई उपाय न देखकर उन्होंने सहायता के लिए पुकार लगाई—कोई लो, कोई लो, कोई लो। अर्थात् जल ऊपर चढ़ता जा रहा है यदि यहाँ कोई उपस्थित हो तो मेरे पुत्र को ले लो। इस प्रकार पुकार लगाने के कारण इस गाँव का नाम 'कोई लो' अथवा कोयलो' या कोयले हुआ।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी कोयले ग्राम अपने कोई पूर्व परिचय के आधार पर गये होंगे ऐसा अनुमान किया जा सकता है किन्तु जब आगे के घटनाक्रम पर विचार किया जाय तो यह अनुमान सही प्रतीत नहीं होता। वे किसी व्यक्ति को लक्ष्य करके वहाँ नहीं गये थे। गाँव में उनका कोई परिचित व्यक्ति नहीं था। इसके पूर्व वे कोयले ग्राम के विषय में कुछ जानते थे यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हमारा अनुमान है कि उस धनी व्यक्ति और उसके परिवार से दूर जाने के लिए जब वे वृन्दावन से चले तब उनके मानस पटल पर कोई दिशा या स्थान विशेष लक्ष्य के रूप में अंकित नहीं था। यह एक संयोग ही था कि वे वृन्दावन से चलते हुए कोयले ग्राम पहुँच गये।

वहाँ पर पहुँच कर उन्होंने गाँव में प्रवेश नहीं किया। गाँव के बाहर की ओर जहाँ कृषि भूमि थी वहाँ कुछ दूरी पर एक ओर खण्हल जैसा एक कमरा था। उसके आस-पास बेर के पेड़ थे। बाबा की दृष्टि उस कमरे पर पड़ी और उस ओर चल दिए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि कमरा खाली है और उसमें किसी का सामान भी नहीं है। किसी के आने जाने का भी कोई चिह्न नहीं था। गाँव वालों से बिना सम्पर्क किए अलक्षित भाव से रहने के विचार से बाबा उसे कमरे में ठहर गए।

कुटिया से कुछ दूरी पर ही यमुना नदी होने से स्नान आदि की पर्याप्त सुविधा थी। बाबा का विचार किसी से सम्पर्क

रखने का नहीं था इस कारण मधुकरी भिक्षा के लिए वे गाँव
नहीं जाते थे। उन दिनों बेर के फलों की ऋतु नहीं थी
स्थिति में उनके सम्मुख एक ही विकल्प था वह यह कि कुटिया
के आस पास उपलब्ध बेर वृक्षों के पत्तों का ही आहार किया
जाय। बाबा ने ऐसा ही किया। वे बेर के कोमल पत्तों को
उपलब्ध पत्थर से पीसकर चटनी जैसी बना लेते थे। इसके
पश्चात् उसे जमुना जल में घोलकर पान कर लेते थे। उन दिनों
यही उनका आहार था। इसी से सन्तुष्ट रहकर वे शान्तिपूर्वक
अपने भजन साधन में लगे रहे। प्रातःकाल शीघ्र ही स्नान आदि
से निवृत होकर वे कुटिया में प्रवेश कर जाते थे। दिन में भूख
लगने पर बेर के पत्तों का शर्वत पी लेते। किसे और के लिए इस
प्रकार का आहार कर पाना कठिन ही है। किन्तु बाबा के चित्त में
तो वैराग्य की प्रबल ज्वाला धधक रही थी। कामिनी कंचन के
मिथ्या आकर्षण को त्यागकर वे यहाँ आये थे। उनके लिए
विषयों का सुख अत्यन्त तुच्छ था। पत्तों का स्वादहीन शर्वत
पीकर भी वे प्रसन्न और सन्तुष्ट थे। श्रीराधावल्लभलाल की
अहैतुकी कृपा का स्मरण कर उनका हृदय बार-बार गद्‌गद् हो
जाता। जिसकी कृपा के बल से वे कामिनी कंचन की गहरी
खाई को दूर से ही त्याग कर वे कोयले ग्राम में चले आये थे।

इस प्रकार कई दिन व्यतीत हुए बाबा की दिनचर्या ऐसी
थी कि उन्हें कोई देख नहीं पाता। कई दिनों तक गाँव वालों को
पता ही न चला कि खेतों से कुछ दूर बेर के वृक्षों के बीच स्थित
उस कुटिया में कोई महात्मा रह रहे हैं। कई दिन बीतने पर गाँव
वाले जानने लगे कि यहाँ कोई सन्त रहते हैं पत्तों का घोल पीकर
वे भजन कर रहे हैं यह जानकर तो गाँव वाले उनके प्रति श्रद्धा से
नत मस्तक हो गये। उन्होंने बाबा के पास जाकर आग्रह किया

कि वे भले ही गाँव में मधुकरी लेने न आए गाँव वाले ही उन्हें
भिक्षा भिजवा दिया करेंगे। पहले तो बाबा इसके लिए तैयार नहीं
हुए। हृदय में वैराग्य और चित्तवृति का इष्ट की ओर निरन्तर
सरस प्रवाह होने से बाबा को पत्तों का वह स्वादहीन घोल ही
शर्वत जैसा मधुर प्रतीत होता था। उसी से उन्हें पर्याप्त तुष्टि-पुष्टि
प्राप्त हो जाती थी। परन्तु जब गाँव वालों का अधिक आग्रह
देखा तो वे मधुकरी भिक्षा लेने के लिए तैयार हो गये। इस प्रकार
गाँव से प्रतिदिन उनके लिए मधुकरी आने लगी।

इस विवरण से यह सिद्ध होता है कि कोयले ग्राम में
कोई पूर्व परिचित को कोई पूर्व के बाद नहीं था। वृन्दावन से
चलकर वे संयोगवशात् ही यहाँ आए थे। कोयले निवास की
अवधि में कई ब्रजवासी भक्तों ने बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी
का शिष्यत्व स्वीकार किया। बाबा कितने समय कोयले गाँव में
रहे इसकी निश्चित जानकारी नहीं हो पाई किन्तु अनुमानतः यह
अवधि ४ से ६ महीने तक की थी। इसके पश्चात् बाबा पुनः
वृन्दावन लौट आए।

बाबा के जीवन की इस घटना से यह प्रेरणा प्राप्त होती
है कि परमार्थ प्राप्ति के इच्छुक साधक को चाहिए कि कामिनी,
कंचन और कीर्ति के प्रलोभन प्राप्त होने पर वह उन्हें दूर से ही
त्याग दे इसमें उसका परम हित है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने
विषयों को वमन के समान त्यागने की बात कही है—

रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमन इव जन बड़भागी॥

रसिक सन्त श्रीध्रुवदास जी ने कहा है—

पुरुष वही है जो विषयों का पुरीष (मल) के समान
त्याग कर प्रभु का भजन करे।

पुरुष सोई जो पुरीष सम छाँडि भजै संसार।

वमन और पुरीष दोनों निःसार, घृणित और त्याज्य …
हैं। साधक विषयों को भी सदैव निःसार, घृणित और …
माने। वह विषयों के लिए कोई चेष्टा तो भूलकर कभी …
नहीं और यदि कभी यह विषय उसे स्वतः ही प्राप्त हो …
वह उन्हें दूर से ही त्यागकर वहाँ से चला जाय।

श्रीवृन्दावन में बाबा के रहने के विषय में संत नि…
का उल्लेख किया जा चुका है। उस अवधि में वे और कहाँ-क…
रहे इसकी कोई जानकारी हमें प्राप्त नहीं हो सकी। ऐसा अनु…
होता है कि कोयले ग्राम से आने के बाद वे कुछ समय कृष्ण…
और कुछ समय बरसाना इस प्रकार से दोनों स्थलों पर रहते रहे।
ऐसा भी विवरण प्राप्त होता है कि इसके पश्चात् वे लगातार कुछ
वर्षों तक बरसाना में रहे।

बरसाना धाम वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा का जन्मस्थल और लीला खेलन भूमि है। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ा भूमि नन्दगाँव से बरसाना की दूरी लगभग पाँच मील है। यह दोनों गाँव परस्पर सौहार्द एवं सजनता की रसमयी रीति में बँधे हुए हैं। ब्रज के प्रेमी भक्तों के प्रमुख आकर्षण केन्द्र हैं नन्दगाँव-बरसाना। ये दोनों गाँव और उनके बीच की तथा आसपास की भूमि श्रीराधाकृष्ण की बाल लीलाओं और शृंगार लीलाओं के रस से ओत-प्रोत है। बरसाना का प्रमुख मन्दिर वृहत्सानु पर्वत के शिखर पर है। उसी प्रकार नन्दगाँव का प्रमुख मन्दिर पर्वत शिखर पर है। बरसाना गाँव के निकट ही चिकसौली ग्राम है। यह श्रीराधाजी की सखी चित्राजी का गाँव माना जाता है। चिकसौली से ही लगा हुआ गहवर वन है। जैसे कि इसके नाम से ही स्पष्ट है यह सघन वृक्ष लताओं से आच्छादित वन है। गहवर वन के बीच ही एक कुण्ड है। पर्वत श्रेणी के मध्य में स्थित गहवर वन श्रीराधाकृष्ण की नित्यविहार

स्थली है। श्रीहित हरिवंश महाप्रभु ने अपने एक पद में विहार स्थली गहवर वन का उल्लेख किया है—

देखि सखी राधा प्रिय केलि।
ये दोऊ खोरि, खिरक,
गिरि गहवर हित चतुरासी
विहरत कुँवर कंठ भुज मेलि ॥४९॥

गहवरवन बरसाना धाम की परिक्रमा में ही है। इसकी मनोरम शोभा दर्शनार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। गहवर कुण्ड के प्रायः चारों तरफ साधु संतों के निवासार्थ कुटियां बनी हुई हैं। बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी अपनी बरसाना निवास की अवधि में कुण्ड के निकट एक कुटिया में रहा करते थे। उस समय उनकी आयु ३५-४० वर्ष की थी। ईसवी सन् १९६० के आस-पास वे वहाँ रहा करते थे। लगातार चार-पाँच वर्ष तक उन्होंने उस कुटिया में निवास किया। इसके साक्ष्य उपलब्ध होते हैं किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे ४-५ वर्षों से अधिक वहाँ नहीं रहे। निवास की यह अवधि ज्यादा भी हो सकती है। निरन्तर रहने की इस अवधि के अतिरिक्त भी वे गहवर वन अनेक बार जाकर वहाँ रुकते रहे हैं।

पूज्य बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी जब श्रीधाम बरसाना रहने के लिये गये तब गहवर वन और उसके आस पास के क्षेत्र में अनेक प्राचीन सन्त रहा करते थे। संसारी लोगों की दृष्टि से अपने को बचाकर मधुकरी भिक्षा से निर्वाह करते हुए ये सन्त निरन्तर अपने इष्टदेव के भजन में तल्लीन रहते थे। उन दिनों गहवर वन में स्थित जलकुण्ड के किनारे श्रीहरिशचन्द्र नामक एक पुष्टिमार्गीय वैष्णव का भवन था जिसमें सम्भवतः ७-८ कमरे थे। श्रीहरिशचन्द्र जी एक उदारमना वैष्णव थे। उनका वह

भवन एक प्रकार से सन्त निवास जैसा ही था। जिस समय
वहाँ कहीं निवास करने की दूसरी कोई सुविधा प्राप्त न हो तो
उनके भवन में निःसंकोच रह सकता था। पूज्य बाबा वहीं आकर
सर्वप्रथम उसी भवन में रहे। ब्रजवासियों के भरोसे मधुकरी
भिक्षा एकत्रित कर उसी से अपना निर्वाह करते हुए बाबा श्री
प्रसन्नतापूर्वक भजन-साधन करने लगे। उस अवधि में पूज्य
बाबा श्रीरासमणिदास जी नामक एक परम विद्वान् सन्त गहवर
वन से ऊपर दिखाई देने वाले मानगढ़ में निवास करते थे। वे
श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। आगे चलकर उन्होंने
गहवर वन के कुण्ड के तट पर अपनी निजी कुटिया का निर्माण
कर लिया था। उस कुटिया में उन्होंने निरन्तर कई दशकों तक
निवास किया। वे अन्तर्मुख रहकर सदैव अपने साधन भजन में
जुटे रहते थे। बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी जब वहाँ रहने गये
उसके पूर्व से ही श्रीरासमणिदास जी मानगढ़ पर्वत पर निवास
किया करते थे।

गहवर वन के एक ओर एक प्राचीन रासमण्डल है। यह
आकार में छोटा है किन्तु इसकी प्राचीनता अनेक प्रमाणों से सिद्ध
है यह स्थल प्रायः चारों ओर से लताओं से आच्छादित है। इसे
श्रीकिशोरी अली जी के रासमण्डल के नाम से जाना जाता है।
किशोरी अली जी सन् १८०० के आस पास ब्रजभूमि में निवास
किया करते थे। इनका ब्रजभूमि आगमन एक घटना विशेष से
जुड़ा हुआ है। किशोरी अली जी की पत्नी का नाम किशोरी था।
उनकी पत्नी का असामयिक निधन हो गया जिससे ये बहुत ही
आहत हुए। इनकी हृदय वेदना इतनी तीव्र थी कि उसने एक
प्रकार से उन्माद का रूपधारण कर लिया। किशोरी हा! किशोरी
कहते हुए ये घर से निकल पड़े। न इनकी यात्रा की कोई दिशा

थी और नहीं कोई लक्ष्य था। पत्नी की विरह वेदना से व्यथित वे
किशोरी-किशोरी पुकारते चले जा रहे थे। भूख-प्यास शीत-उष्ण
आदि द्वन्द उनके लिए नगण्य हो चुके थे। इसे संयोग कहे या प्रभु
कृपा। इस प्रकार यात्रा करते हुए वे ब्रजभूमि के बरसाना धाम
आ गये। यहाँ भी उनकी स्थिति वही थी। हा किशोरी! हा किशोरी!
पुकारते हुए कभी किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाते और कभी सघन
लता की छाया में निढाल से पड़े रहते। कोई कुछ खाने को देता
तो उसे खाकर कुण्ड का जल पी लेते। हृदय में पत्नी की विरह
व्यथा और मुख पर बार-बार आह भरकर किशोरी नाम की
पुकार।

श्रीबरसाना धाम गहवर वन वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा जी
की नित्यलीला स्थली है। वे सदैव अपनी सखियों के साथ इन
स्थलों पर क्रीड़ा विनोद करती रहती हैं। उनकी यह नित्य लीला,
काल की सीमाओं से परे है। अनादि अनन्त इस लीला का न
प्रारम्भ बिन्दु है और न अवसान। द्वापर के अन्त में श्रीराधाकृष्ण
की यह नित्यलीला मानव जाति पर कृपा करने के लिए कुछ
समय तक सबको दृष्टिगोचर हुई थी, फिर इसके पश्चात् उनके
संकल्प से लीला की सर्व नयन गोचरता तिरोहित हो गई। परन्तु
इससे लीला की नित्यता पर किंचित् भी प्रभाव नहीं पड़ता। वह
जैसी उसके पूर्व थी वैसी ही उसके पश्चात् भी नित्य वर्तमान है।

किशोरी अली जी का वह करुणक्रन्दन जिसमें वे
बार-बार अपनी पत्नी किशोरी का नाम पुकार रहे थे गहवर वन
में वह चारों ओर व्याप्त हो रहा था। सखियों के साथ वहाँ नित्य
वर्तमान वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी ने कृपापूर्वक उस आर्त पुकार
को सुना। उनका चित्त तो सदा ही सहज दया से द्रवित रहता है,
अब किशोरी नाम की यह आर्त पुकार सुनकर वे करुणा से

विकल हो गईं। प्रधान सहचरी श्रीललिताजी ने पुनः पुनः ... अनुरोध किया कि हे स्वामिनी जू यह व्यक्ति आपकी नहीं ... अपनी दिवंगत पत्नी को पुकार रहा है। इस पर श्रीराधा ... कहा कि भले ही वह अपनी पत्नी को पुकार रहा है परन्तु ... किशोरी नाम मेरा ही है अतः इस नाम के प्रभाव से मुझे ... व्यक्ति पर कृपा करके, इसे अपनी भक्ति प्रदान करके ... मित्र सहचरी मण्डल में सम्मिलित करना है।

इस प्रसंग का उल्लेख श्रीभोलानाथ जी (भोरी सखी) ने अपने एक पद में इस प्रकार किया है–

जाको नाम सुनत मन मोहन, नयनन नीर बहात।
सोई अली किशोरी प्यारी, टेर सुनत अकुलात॥
सो तौ नारि विरह सौं व्याकुल, छिनछिन टेर सुनात।
कारण रहित कृपालु महल में, सुनि सुनि कैं सकुचात॥

अपनी स्वामिनी की इस अपार करुणा को देखकर ललिता, विशाखा आदि सखियाँ उन पर बार-बार बलिहार होने लगी। तब ललिताजी ने उनसे प्रार्थना की कि हे किशोरीजी जब आपने इस व्यक्ति को सहचरी परिकर में सम्मिलित करने का कृपा संकल्प कर लिया तो इसके साथ ही यह व्यक्ति धन्य-धन्य हो गया। अब आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं इसके पास जाकर इसे भजन-उपासना का मार्गदर्शन करूँ जिससे यह व्यक्ति सद्गुरु एवं रसिक सन्तों का संग पाकर आपकी उपासना करता हुआ अन्ततः आपकी नित्यलीला परिकर में सम्मिलित हो जाय।

श्रीराधा जी की आज्ञा पाकर ललिता जी एक ब्रजवासिनि कन्या का रूप धारण कर श्रीकिशोरी अली जी के निकट आईं। श्रीललिताजी ने उनसे कहा कि तुम बहुत भाग्यशाली हो, तुम पर नित्य निकुंजेश्वरी श्रीराधा जी की करुण दृष्टि पड़ चुकी है। अब

तुम अपनी पत्नी का चिन्तन छोड़ो और यहीं गहवर वन के निकट श्रीवंशी अली नामक एक सन्त निवास करते हैं उनसे दीक्षा ग्रहण कर प्रेमोपासना में जुट जाओ। इससे समय आने पर तुम्हें श्रीप्रियाप्रीतम की नित्यलीला रसमाधुरी में प्रवेश प्राप्त हो जायेगा।

यह कहकर श्रीललिता जी अर्न्तहित हो गयी। उनके दर्शन कर श्रीकिशोरी अली जी की व्यथा विलुप्त हो गई। श्रीवंशी अली जी का अनुगत्य प्राप्तकर वे भक्तिमार्ग के पथिक बन गये और एक प्रेमी रसिक के रूप में कालान्तर में सर्वत्र उनकी ख्याति हो गई।

इन्हीं श्रीकिशोरी अली जी के नाम से वह रासमण्डल चबूतरा प्रसिद्ध है जिसका हमने पूर्व में उल्लेख किया है। सम्भव है इसी स्थल पर श्रीकिशोरी अली जी को श्रीललिता जी के दर्शन प्राप्त हुए। आगे चलकर यहाँ रासमण्डल बनवाया गया हो, अथवा कोई स्थान चिह्नित न होने पर उक्त घटना की स्मृति में यह मण्डल बनवाया गया हो।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी ने इसी रासमण्डल को अपनी भजनस्थली के लिए चुना। उनका निवास हरिश्चन्द्र के भवन में था। मधुकरी भिक्षा आदि दैनिक कृत्यों से निवृत हो वे इस रासमण्डल पर बैठ जाते और अपने आराध्य का स्मरण-भजन करते रहते। श्रीहित हरिवंश महाप्रभु जी द्वारा विरचित श्रीराधा-सुधानिधि ग्रन्थ का अपने मधुरस्वर में नित्य गायन करना तथा श्रीप्रियाप्रीतम का युगल नाम जप करते रहना एवं उनकी लीलाओं का अधिक से अधिक चिन्तन करते रहना यही उनकी भजन पद्धति थी।

रासमण्डल के प्रायः चारों ओर सघन लतायें थी। ऊपर भी लताओं ... मण्डप सुशोभित होता था। इस एकान्त स्थल पर

बाबा का मन अनायास ही भजन में डूबने लगता था। कभी-कभी उन्हें सर्प के फुफकारने की ध्वनि सुनाई देती थी उससे अनुभव होता था कि इस स्थल पर आसपास एक या एक से अधिक सर्पों का निवास है। बाबा निर्भीक होकर अपने भजन-नियम में लगे रहते थे।

नागराज से भजन के लिए अनुमति

एक दिन की बात है वे नित्य के समान अपने निर्धारित समय पर रासमण्डल पर जाकर बैठे ही थे कि कुछ ही क्षणों बाद एक विशाल सर्प सामने से फुफकारता हुआ उनकी ओर आया। सर्प बाबा से कुछ दूरी पर फन उठाकर बैठ गया और उनकी ओर देखकर बार-बार फुफकारने लगा। इस परिस्थिति में भी वे भयभीत नहीं हुये। यदि बाबा की जगह कोई अन्य साधारण व्यक्ति होता तो इस प्रकार सर्प को सामने आता देखकर अतिशीघ्र वहाँ से दूर चला जाता परन्तु बाबा वहीं अविचल भाव से बैठे रहे। उन्होंने विचार किया कि इस स्थल पर सर्प देवता पूर्वकाल से ही निवास करते हैं। मैं तो यहाँ अभी कुछ दिन से ही आया हूँ अत: उचित यह है कि इस स्थान पर बैठने के लिए इन सर्प देवता से अनुमति ले लेनी चाहिए। यह सोचकर बाबा ने हाथ जोड़कर उससे प्रार्थना की—हे नागराज यह एकान्त स्थल आपका ही है यदि आप अनुमति दें तो मैं यहाँ बैठकर श्रीप्रियाप्रीतम का स्मरण भजन कर लिया करूँ। यदि आप अनुमति नहीं देंगे तो मैं और कहीं चला जाऊँगा।

बाबा की यह प्रार्थना सुनकर सर्प कुछ देर तक वहीं बैठकर उन्हें देखता रहा उसके पश्चात् वह अपना सिर झुकाकर रासमण्डल से उतरकर झांड़ियों में चला गया। [illegible] पश्चात् वह सर्प फिर कभी बाबा को दिखाई नहीं दिया और न ही उसके फुफकारने की ध्वनि ही सुनाई दी।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि जिस साधु पुरुष में अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाती है उसके निकट आकर हिंसक जन्तु भी अपना बैर त्याग देते हैं। वस्तुत: अपने भीतर रहने वाले हिंसा और बैर आदि भावों के कारण ही सम्मुख उपस्थित हिंसक प्राणी अपने स्वभाववश हमारा अहित कर देता है। यदि ये दुष्टभाव चित्त में न हो तो हिंसक जन्तु भी अपना स्वभाव त्याग देते हैं। श्रीरामचरितमानस में भी भरतलालजी के लिए कहा गया है कि उन्हें देखकर सर्प-बिच्छू आदि विषैले प्राणी अपना स्वभाव त्याग देते थे—

जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी।
तजहि बिषम बिष तामस तीछी॥

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि उस अवधि में पूज्य बाबा गहवर वन में लगभग ४-५ वर्ष निरन्तर रहे थे। कुछ समय हरिश्चन्द्र जी के मकान में रहने के पश्चात् उन्होंने अपने निवास हेतु एक पृथक् व्यवस्था कर ली। गहवर कुण्ड के तट पर ऐसी कुछ कुटियायें हैं जिनमें समय-समय पर सन्त निवास करते रहे हैं। किसी संत के चले जाने पर अथवा उनको रज-प्राप्ति हो जाने पर वह कुटिया खाली रहती है। फिर कालान्तर में कोई अन्य संत उस खाली कुटिया में आकर निवास करने लगते हैं। ऐसी ही एक कुटिया जो हरिश्चन्द्र जी के भवन के निकट ही थी, पूज्य बाबा ने किसी के सहयोग से उसकी आवश्यक मरम्मत करवाई फिर वे उसमें रहने लगे। अली किशोरी जी के रासमण्डल पर जाकर बाबा का क्रम पूर्ववत् चलता रहा।

प्राणी का जीवन उसके पूर्वकृत शुभ-अशुभ करने के अनुसार कभी एक सा नहीं रह पाता। वर्तमान या पूर्वजन्मों में

किए गए ये कर्म ही उसके जीवन में अनायास प्राप्त होने वाले सुख-दुःख के हेतु होते हैं। वर्तमान जन्म में भोग आने वाले शुभाशुभ कर्म ही शास्त्र की भाषा में प्रारब्ध कहलाते हैं। प्रारब्ध का सामना सभी प्राणियों को सब समय करना ही पड़ता है। प्रारब्ध को ही सामान्य सरल भाषा में भोग कह दिया जाता है। इनके कारण ही मनुष्य विभिन्न प्रकार की आधि-व्याधि, लाभ-हानि, मान-अपमान आदि सुख-दुखमयी परिस्थितियों को प्राप्त करता है। सामान्य मनुष्यों को इन आने वाली परिस्थितियों का पहले से बोध नहीं होता और न ही इनके आने के देश-काल का चुनाव करने का उसे अधिकार होता। परन्तु महापुरुषों के और उच्चकोटि के साधकों के जीवन में यदा-कदा ऐसे प्रसंग पाये जाते हैं कि ये प्रारब्ध भोग आने से पहले उन्हें अपना बोध कराते हैं और कभी-कभी तो अपने आने का समय और स्थान दोनों को इन संतों की इच्छा पर छोड़ देते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो संतजन प्रारब्ध भोगों को कब कहाँ और कैसे भोगना है इस विषम में स्वतन्त्र जैसे होते हैं। यद्यपि इस प्रकार की घटनाएँ बिरल ही होती है तो भी किसी-किसी सन्त के जीवन चरित्र में अपवाद स्वरूप पायी जाती हैं। पूज्य बाबा राधावल्लभशरण जी की जीवनी में भी एक ऐसा प्रसंग पाया जाता है जिसमें देह के भोग में आने के पहले उनकी स्वीकृति माँगी।

एक दिन नित्य की तरह बाबा रासमण्डल पर बैठकर भजन साधन में अपना मन लगा ही रहे थे कि सहसा उनके सम्मुख एक आकृति विशेष उपस्थित हो गई। वह मानवाकृत तो थी किन्तु उसके अंग संरचना के विषय में निश्चित रूप से ज्यादा कुछ नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार रेखाचित्र होते हैं उसी

प्रकार उस आकृति को समझना चाहिए। बाबा कहा करते थे कि वह आकृति धवल वस्त्रों से आच्छादित थी।

अपने सम्मुख उस आकृति को देखकर बाबा सहसा विस्मित हुए। अब उस आकृति ने बाबा से संवाद प्रारम्भ किया। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार वह मानवाकृति असामान्य थी उसी प्रकार उसका शब्द प्रयोग रूप व कथोपकथन भी असामान्य ही था। बाबा और उसके बीच होने वाले सम्वाद से अनुमानित तो किया जा सकता है किन्तु फिर भी वह ठीक-ठीक उसी प्रकार का नहीं था।

घटना क्रमांक १०

विलक्षण पहेली

आकृति ने कहा कि बाबा मैं आपका प्रारब्ध भोग लूँ। आपके शरीर में प्रवेश कर मैं एक रोग विशेष को उत्पन्न करूँगा। यदि आप चाहें तो अभी अथवा आपकी इच्छानुसार फिर कभी आपके शरीर में प्रवेश कर सकता हूँ।

बाबा ने विचार किया कि प्रारब्ध कर्म तो अवश्य भोगना पड़ता है। यदि अभी नहीं भोगेगे तो कालान्तर में भोगना ही पड़ेगा। इसे इस समय ही भोगना ठीक है, अन्यथा दीर्घकाल तक इसका चिन्तन बना रहेगा जो भजन में बाधा ही उत्पन्न करेगा। यह विचार कर उन्होंने कर्म फलमूर्ति उस आकृति को अपने शरीर में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान कर दी। इस सम्वाद के साथ ही वह आकृति भी विलुप्त हो गई। प्रतिदिन के समान बाबा अपने भजन साधन का नियम सम्पन्न कर कुटिया में वापस लौट आए।

कुछ समय पश्चात् बाबा का स्वास्थ आकस्मिक रूप से बिगड़ने लगा। उन्हें रक्तामाशय (खूनी पेचिस) का रोग हो

गया। दिन में कई-कई बार उन्हें शौच कर्म के लिए [illegible] जिसमें बहुत सारा रक्त शरीर से निकल जाता थे [illegible] शरीर दिनों दिन दुर्बल होने लगा जिन सूत्रों से हमने इन [illegible] को एकत्रित किया है उनमें से कुछ का कहना है कि [illegible] उस समय खूनी बवासीर का रोग हुआ था। खूनी [illegible] खूनी बवासीर दोनों पृथक्-पृथक् रोग है यद्यपि शरीर से [illegible] का निकलना दोनों में समान है। हमारे अनुमान से बाबा को [illegible] बवासीर की शिकायत पहले से कुछ रही थी जो खूनी पेचिस [illegible] रोग होते समय उग्र हो गयी थी। इस प्रकार इन दोनों रोगों से [illegible] ग्रस्त थे। जिनमें खूनी पेचिस के रोग के कारण उनका शरीर [illegible] अतिशय दुर्बल हो गया था। दुर्बलता इतनी बढ़ चुकी थी कि [illegible] उनके लिए कुछ कदम भी चलना कठिन था।

जिस समय की यह घटना है उस समय चिकित्सा सुविधा [illegible] आज जैसी उपलब्ध नहीं थी। योग्य डॉक्टरों की कमी थी [illegible] हकीमों के इलाज पर लोग निर्भर रहा करते थे। गहवर वन चिकसौली ग्राम से सटा हुआ है। चिकसौली में कोई डॉक्टर नहीं था। इलाज के लिए बरसाना जाना पड़ता था जिसकी दूरी वहाँ से २ किलोमीटर है। बाबा के लिए तो कुछ पग चलना भी कठिन था। चिकसौली [illegible] बरसाना के बीच का उतार चढ़ाव वाले पर्वतीय मार्ग पर चलना उनके लिए किसी भी प्रकार संभव नहीं था।

उन दिनों श्रीसेवक शरन महाराज नामक एक नव युवक सन्त बाबा के सम्पर्क में थे वे कभी वृन्दावन में कभी गहवर वन में बाबा के निकट रहा करते थे। उन्होंने हमें बताया कि उस अवधि में वे बाबा का इलाज कराने के लिए उन्हें अपनी पीठ पर लेकर बरसाना ले जाया करते थे। बरसाना के किसी योग्य डॉक्टर द्वारा इलाज प्रारम्भ होने पर शनैः शनैः [illegible] स्वास्थ्य में

सुधार होने लगा। धीरे-धीरे बाबा पूर्ण स्वस्थ हो गये इस प्रकार शरीर के प्रारब्ध कर्मवशात् आया हुआ यह रोग बाबा को कुछ माह तक कष्ट देकर शान्त हुआ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी ने श्रीबरसाना ग्राम के गहवर वन में लगभग ४-५ वर्षों तक निवास किया। ब्रजवासियों के घरों से मधुकरी भिक्षा माँग कर अपना उदर पोषण करते हुए वैराग्य पूर्वक भजन साधन में संलग्न होते हुए बाबा ने वह समय आनन्दपूर्वक व्यतीत किया। उस अवधि में २ विशिष्ट सन्त इनके सम्पर्क में रहा करते थे। ये दोनों ही राधावल्लभीय सन्त थे। उनमें से श्रीसेवक सरन जी महाराज जिनका उल्लेख हम अभी कर आए हैं और दूसरे थे वीतरागी सन्त श्रीरासमणिदास महाराज। ये सन्त परम भागवत स्वामी श्रीहितदास महाराज के कृपापात्र शिष्य थे। श्रीरासमणिदास जी बाबा के वहाँ पहुँचने से पूर्व से ही रहा करते थे। इसके बाद भी उन्होंने कई दशकों तक भजन परायण रहकर श्रीगहवर वन में निवास किया। उनकी रहनी सहनी कहनी सभी साधकों के लिए आदर्श रूप थीं।

पूर्व पृष्ठों में हम बादग्राम के रस सिद्ध सन्त बाबा श्रीप्रियाशरण जी महाराज जी का भी उल्लेख कर चुके हैं। जैसा कि वहाँ निवेदन किया गया कि इन महापुरुष के विषय में विस्तृत जानकारी हमें प्राप्त नहीं है। वे कितने समय तक धराधाम पर विराजे, बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी का उनसे कितना समय सम्पर्क रहा इत्यादि बातों का हमें कोई निश्चित ज्ञान नहीं है। किन्तु यह निश्चित है कि जब बाबा गहवर वन में रह रहे थे उस अवधि में अथवा उसके पूर्व ही सन्त श्रीप्रियाशरण जी अपने आराध्य के नित्य लीला में प्रवेश कर चुके थे। बाबा उनके प्रति

कितना एकनिष्ठ भाव रखते थे इसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। अब जबकि वे महापुरुष अपने प्रकट रूप में तिरोहित हो गए थे तो यह स्थिति बाबा के लिए अतिशय पीड़ादायी थी। वे अपने भीतर रह-रहकर संत श्रीप्रियाशरण जी से बिछुड़ने की वेदना का अनुभव किया करते थे। बाबा का उनके प्रति ... का भाव था अब उनके प्रगट दर्शन न होने से बाबा दुखी रहते और चिन्तित भी। चिन्तित इसलिए रहते थे कि अब आगे मार्गदर्शन कौन करेगा? अपनी जिज्ञासाओं का समाधान मैं कैसे प्राप्त करूँगा? वे नियमपूर्वक अपने भजन साधन में लगे रहते किन्तु रह-रहकर यह व्यथा उन्हें शालती रहती थी।

वस्तुत: संत श्रीप्रियाशरणजी जैसे महापुरुषों का कभी अभाव नहीं होता है वे अपने पंचभौतिक कलेवर को त्याग श्रीठाकुर जी की नित्यलीला में सदैव विद्यमान रहते हैं। उनकी यह विद्यमानता देशकाल से सीमित नहीं होती इसलिए वे अपने विलक्षण सामर्थ्य से जब चाहें जहाँ चाहें पुन: उसी रूप में दर्शन दे सकते हैं। ऐसे महापुरुषों का अधिकारी विशेष को दर्शन देने के कई प्रकार होते हैं जैसे स्वप्न में, ध्यानावस्था में तथा जाग्रत अवस्था में इसी प्रकार वे अपने नित्यलीलास्थित रूप में, लोक जीवन वाले रूप में अथवा अन्य किसी छद्म रूप में भी दर्शन दे सकते हैं। इनमें से उन्हें किस रूप में कैसे प्रगट होना है यह दर्शन पाने वाले की पात्रता, परिस्थिति और आवश्यकता पर निर्भर करता है।

घटना क्रमांक ११

ब्रह्मलीन होने के बाद भी श्रीप्रियाशरण जी ने दर्शन दिए

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी की विरह व्यथा को शान्त करने के लिए संत श्रीप्रियाशरण जी भी भागवत धाम जाने के बाद पुन: दर्शन देने के लिए कृपापूर्वक बाबा के सम्मुख आये। अपने उत्तर जीवन में बाबा इस घटना का उल्लेख कभी-कभी किसी के सामने किया करते थे। उन महापुरुष का दर्शन बाबा को किस रूप में प्राप्त हुआ स्वप्न में, ध्यान में अथवा प्रत्यक्ष में यह निश्चित रूप से कह पाना हमारे लिए कठिन है। बाबा को न केवल दर्शन प्राप्त हुए अपितु उनसे बातचीत भी हुई। इस दिव्य घटना के बाद से उनकी विरह व्यथा बहुत कुछ शान्त हो गयी।

परमार्थ क्षेत्र में एक निश्चित उपासना सिद्धान्त, उपासना मंत्र और गुरु परम्परा आदि का जिस प्रकार महत्व है उसी प्रकार उपासक के लिए किसी विशिष्ट आर्ष ग्रन्थ को अपने मार्ग दर्शक के रूप में रखने का भी महत्व है। यद्यपि सभी आर्ष ग्रन्थ समान रूप से आदरणीय एवं प्रमाण है तो भी उपासना और रुचि भेद से प्रत्येक उपासक के लिए कोई विशिष्ट ग्रन्थ उसका पथ प्रदर्शक होता है। पूर्व में हम कह आए है कि श्रीहित हरिवंश प्रभु द्वारा प्रणीत संस्कृत स्त्रोत ग्रन्थ श्रीराधासुधानिधि का बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी विशेष रूप से आश्रय लिया करते थे। वे इस ग्रन्थ में वर्णित लीलाओं का सदैव चिन्तन व मनन किया करते थे तथा इसके श्लोकों का अपने मधुर कण्ठ स्वर से गाते गुनगुनाते रहते थे। श्रीराधासुधानिधि के समान ही भक्तमाल ग्रन्थ भी बाबा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था।

भक्तमाल ग्रन्थ की रचना श्रीनाभा गोस्वामी ने विक्रम सम्वत् १६५० में की थी उसके लगभग १०० साल बाद श्रीप्रियादास जी ने भक्तमाल ग्रन्थ पर भक्तिरसबोधिनी नामक एक टीका लिखी जो कवित्त छन्दों में निबद्ध है। मूल ग्रन्थ को हृदयंगम करने के लिए यह टीका अत्यन्त उपयोगी है। भक्तमाल ग्रन्थ में नाभा जी के समय तक होने वाले सैकड़ों भागवत भक्तों

का पावन चरित्र छप्पय छन्द में लिखा गया है। इसमें
सूचनाओं को विस्तृत रूप देते हुए श्रीप्रियादास जी ने भक्तिरसबोधिनी टीका लिखी है।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी महाराज भक्तमाल के प्रति गहन निष्ठा रखते थे। वे समय-समय पर इसका पाठ तथा इसमें वर्णित भक्त चरित्रों का भावपूर्वक चिन्तन मनन किया करते थे। इस प्रकार भक्त चरित्र का पाठ और उसका अनुभावन बाबा की उपासना का एक महत्व पूर्ण अंग था। इस पद्धति से भक्तमाल ग्रन्थ का परिशीलन करते हुए एक बार बाबा का ध्यान ग्रन्थ के छप्पय सं. १४८ पर विशेष रूप से टिक गया। इसमें स्वामी श्रीचतुरोनगनजी का चरित्र दिया हुआ है। छप्पय इस प्रकार है-

श्रीस्वामी चतुरोनगन मगन रैन दिन भजन हित।
सदा युक्त अनुरक्त भक्त मण्डल को पोषत॥
पुर मथुरा ब्रजभूमि रमत सबहीं को तोषत।
परम धरम दृढ़ करन देव श्रीगुरु आराध्यौ॥
मधुर बैन सुठि ठौर-ठौर हरिजन सुख साध्यौ।
सन्त महन्त अनन्त जन जस विस्तारन जासु नित॥
श्रीस्वामी चतुरोनगन मगन रैन दिन भजन हित।

श्रीनाभाजी के इस छप्पय की व्याख्या श्रीप्रियादास जी ने तीन कवित्तों में की है। मूल छप्पय, कवित्त और भक्तमाल पर लिखी गयी व्याख्या के अनुसार श्रीचतुरोनगन जी का नाम नागा श्रीचतुरदास जी था। ब्रज में नागा जी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी जन्म भूमि ब्रजभूमि का पेगाव ग्राम है। ये श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य श्रीपरमानन्द देवाचार्य जी के अनुगत थे। नागा जी के विषय में अनेक अनुश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। ब्रजमण्डल में इन्हें चमत्कारिक सिद्ध सन्त के रूप में माना जाता है। ब्रज के

अनेक स्थलों पर आपके मन्दिर हैं। श्रीप्रियादास जी ने लिखा है कि नागा जी प्रातःकाल श्रीवृन्दावन में श्रीगोविन्ददेव जी के मन्दिर की मंगला आरती करते फिर मथुरा में श्रीकेशवदेव के मन्दिर की शृंगार आरती में सम्मिलित होते। उसके बाद वहाँ से चलकर बरसाना-नन्दगाँव में राजभोग की आरती करके गोवर्धन राधाकुण्ड होते हुए सायंकाल को वृन्दावन लौट आते थे। यह यात्रा लगभग १२५ किलोमीटर की है। जिसे वे बिना श्रम थकावट के नित्य ही किया करते थे।

श्रीनागा जी एक बार पावन सरोवर (नन्दगाँव) पर आये श्रीठाकुर जी के भजन चिन्तन में आप ऐसे निमग्न हुए कि बिना कुछ खाये पिये तीन दिन तक वही रह आये। तब भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दूध लेकर आए और स्वयं दूधपान कराया।

एक बार बरसाना के निकट कदम्बखण्डी में आप प्रेमोन्मत्त होकर नाचते गाते विचर रहे थे उस समय आपकी विशाल जटायें हींस के झाड़ में उलझ गई। ब्रजवासी बालकों ने जटाओं को सुलझाना चाहा किन्तु नागाजी ने कहा तुम रहने दो जिसने उलझाई है वही सुलझायेगा। ब्रजवासियों ने इन्हें दूध दही की मधुकरी भिक्षा देना चाहा जिसे नागा जी ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि उन्हें केवल अपने आराध्य की प्यास थी। इस प्रकार श्रीनागा जी वहाँ तीन दिन तक खड़े रहे। इसके पश्चात् स्वयं श्रीकृष्ण वहाँ आए और जटाओं को सुलझाने लगे। नागाजी ने कह क्षमा करें प्रभु मैं आपकी युगल मूर्ति का उपासक हूँ और आप तो यहाँ अकेले ही पधारे हैं। कृपा करके मेरी स्वामिनी को साथ लेकर आइये तब मेरी जटा सुलझाइये। मेरे नयनों की प्यास तो आप दोनों के दर्शन से ही बुझेगी। नागा जी के इस भाव से

प्रसन्न होकर श्रीराधाकृष्ण युगल ने इनको दर्शन दिया और अपने कर कमलों से इनकी जटा सुलझाईं।

श्रीनागा जी भूख-प्यास, शीत-उष्ण धर्मों से ऊपर उठ चुके थे। वे केवल कौपीन ही धारण करते थे अन्य कोई वस्त्र नहीं पहनते थे इसलिए नगन अर्थात् नागा नाम से विख्यात हुए। चतुरदास आपकी विरक्त दीक्षा का नाम था भक्तमालाकार ने चतुरोनगन नाम से आपका स्मरण किया है। ब्रज में ऐसी मान्यता है कि नागा जी परम योगीराज सिद्ध पुरुष हैं। आप अभी भी प्रगट होकर भक्तों को दर्शन देते हैं।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी श्रीभक्तमाल ग्रन्थ का पाठ, मनन, चिन्तन किया करते थे। भक्तों की पावन कथाएँ उनको प्रिय थीं। इसी क्रम में नागा जी के चरित्र को पढ़ते विचारते समय उनका ध्यान नागा जी की ओर विशेषरूप से खिंच गया। कदम्बखण्डी में जिस प्रकार श्रीप्रियाप्रीतम युगल सरकार आकर जटाएँ सुलझाई, इस प्रसंग का बार-बार विचार करते हुए वे भाव विह्वल हो गए। कदम्बखण्डी बरसाना से लगभग ८-९ किलोमीटर की दूरी पर है। बाबा के मन में विचार आया कि कदम्बखण्डी चलकर श्रीनागा जी के स्मृति मन्दिर (गुफा) के दर्शन करके उनसे कृपा की याचना की जाय।

विशुद्ध साधक के मन में परमार्थ पथ पर अग्रसर होने की एकमात्र कामना होती है। इसी के लिए उसके सारे उद्योग वह जहाँ कहीं जाता है जिस श्रेष्ठ पुरुष से मिलता है चित्त में रही हुई इसी कामना का निवेदन करता है। पवित्र तीर्थस्थल, गंगा-यमुना आदि पावन नदियाँ, सन्त, सद्गुरु, भगवत् मन्दिर आदि जहाँ कहीं भी वह साधक जाता है यही याचना करता है कि साधन पथ पर आगे बढ़ते हुए मुझे शीघ्र ही परमार्थ वस्तु की प्राप्ति हो। कदम्बखण्डी

जाने के पीछे बाबा की यही कामना थी। नागा जी जैसे परम सिद्ध सन्त का आशीर्वाद लाभ करना ही उनका लक्ष्य था। एक दिन इसी विचार से वे पैदल ही कदम्बखण्डी को चल दिए।

यह बात आधी (अर्द्ध) शताब्दी से भी अधिक पहले की है उस समय सब ओर वृक्ष लताओं का बाहुल्य था। कदम्बखण्डी जैसा कि इसके नाम से ही पता चलता है कदम्ब वृक्षों से सघन वनखण्ड, इसी प्रकार का मनोरम दृश्य वहाँ पर था। कदम्बखण्डी से सटा हुआ कोई गाँव नहीं है उसके निकटवर्ती गाँव भी थोड़ी दूरी पर है। आस-पास पर्वत श्रेणियों से घिरी हुई कदम्बखण्डी एक मनोहारी उपवन है। इसके प्रायः मध्य में एक विशाल वृक्ष है। वृक्ष के निकट ही नागा जी का स्मारक है। बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी वहाँ पहुँचकर इसी वृक्ष के नीचे बैठ गए। उन दिनों वहाँ ग्रामवासियों का अथवा अन्य दर्शनार्थियों का आवागमन बहुत कम था। इसलिए लगभग निर्जनता जैसा ही वातावरण था।

वृक्ष के निकट ही स्थित नागाजी के मन्दिर का दर्शन कर बाबा वृक्ष की झाड़ में बैठ गये। वहाँ पहुँचकर उनके मन में नवीन स्फूर्ति एवं उत्साह का संचार हुआ। जैसे किसी दानवीर के द्वार पर पहुँचकर याचक की आशा बलवती हो उठती है ऐसी ही कुछ स्थिति बाबा के मन की हुई। आज वे उन नागा जी के द्वार पर आकर उपस्थित हुए थे जिनके विषय में भक्तमाल में कहा गया है कि असंख्य सन्त-महन्तजन श्रीनागाजी के सुयश का सदैव विस्तार करते रहते हैं अर्थात् उसका वर्णन करते रहते हैं। ये स्वामी श्रीचतुरदास जी नागा दिन रात भजन भाव में डूबे रहने वाले एक पावन विभूति है—

घटना क्रमांक ::

नागराज से भजन साधन हेतु आज्ञा

बाबा ने विचार किया कि नागा जी की कृपा प्राप्ति के लिए आहार आदि की ओर ध्यान न देते हुए कुछ समय वृक्ष के नीचे बैठकर भजन साधन करूँगा। यह निश्चय कर अपने दैनिक भजन साधन में संलग्न हो गए। इस प्रकार कितना समय बीता कहना कठिन है, किन्तु एक भयावह फुफकार सुनकर बाबा का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने देखा एक विशाल सर्प उनके सामने ही थोड़ी दूरी पर अपना फन फैलाए हुए बैठा है। निकट ही भीषण सर्प को देखकर बाबा भयभीत अवश्य हुए किन्तु शीघ्र ही संयत होकर वे इस विषय में विचार करने लगे। बाबा के मन में यह विचार आया कि निश्चय ही यह वृक्ष और इसके नीचे का भूभाग इस सर्प का स्थायी निवास स्थल है। अतएव अपने निवास पर दूसरे को जमा हुआ देखकर ये नाग देवता क्रोधित हो रहे हैं। यह विचार कर बाबा ने उस नाग से कहा—हे नागराज यह आपका निवास स्थल है, मुझे तो यहाँ कुछ समय तक बैठकर भगवत् चिन्तन करना है। अब यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं यहाँ बैठूँ नहीं तो उठकर अन्यत्र चला जाऊँ?

यह कहकर बाबा मौन हो गये। उनका यह मानना था कि निवेदन करने के बाद भी यदि सर्प देवता फुफकारते हैं तो यहाँ से उठना ही ठीक होगा और यदि मेरी विनय सुनकर ये यहाँ से चले जाते हैं तो इसे उनकी प्रसन्नतापूर्वक अनुमति ही माननी चाहिए।

बाबा की प्रार्थना सुनकर वह सर्प कुछ देर तक फन फैलाए हुए सामने वहीं बैठा उन्हीं को देखता रहा। किन्तु इस बार उसका फुफकारना बन्द हो गया। कुछ क्षणों बाद उसने अपना फन धरती पर झुकाकर धीरे-धीरे बाबा की ओर चलने लगा। अपनी ओर आता देखकर उनका भयभीत होना स्वाभाविक था। उस समय बाबा अपने दोनों हाथों की हथेलियां धरती पर टेके हुए बैठे थे। वह नाग बाबा के निकट आकर उनके दायी हथेली के ऊपरी भाग पर चढ़ता हुआ पीछे की ओर चला गया। इसके बाद बाबा जितना समय कदम्बखण्डी रुके वह नाग उन्हें फिर दिखाई नहीं दिया।

कदम्बखण्डी आने के पीछे इनका लक्ष्य परम सिद्ध श्रीनागा जी से परमार्थ विषयक मार्गदर्शन और उनकी कृपा प्राप्त करना था। वे अपने इस लक्ष्य के प्रति सावधान रहकर उस वृक्ष के नीचे बैठे रहे जो नागा जी के स्मृति स्थल के सर्वथा निकट है। इस प्रकार दिन व्यतीत हुआ और रात्रि आ गई। यह पहले बताया जा चुका है कि उस समय वहाँ लोगों का आवागमन कम ही होता था फिर रात्रि में तो वहाँ किसी के आने की सम्भावना ही नहीं थी। रात्रि में थकान अनुभव होने पर वे वही लेट जाते थे किन्तु हृदय में अतिशय व्याकुलतावश निद्रा नहीं आती थी। जब उनका मन पीड़ा से अधिक भर जाता तो वे रोने लगते। उस वनस्थली की नीरव रात्रि में उनका रुदन स्वर चारों ओर फैलकर विलुप्त हो जाता। इस प्रकार कभी बैठकर, कभी लेटकर, कभी मौन होकर भजन करते हुए, तो कभी व्याकुलतापूर्वक रोते हुए, उनके दिनरात वहीं व्यतीत हो रहे थे। हृदय में केवल यही चाह थी कि प्रेमाभक्ति के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए मुझे श्रीनागा जी मार्गदर्शन तथा उनकी कृपा प्राप्त हो। इस प्रकार उनके वहाँ तीन

दिन व्यतीत हुए। इस अवधि में उन्होंने कोई आहार ग्रहण नहीं
किया यहाँ तक कि जल भी नहीं पिया।

प्रभु प्रेम के मार्ग पर ऐसी उत्कट लगन किसी-किसी में जगती है। वस्तुत: ऐसी लगन लगे बिना इस दुर्लभ महानिधि की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। यह उत्कट लालसा ही उस परमनिधि के पाने का मूल्य है जिसे चुकाये बिना उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं। यह भी सत्य है कि जब तक संसारी प्राणी का पदार्थों में ममत्व रहता है, उनकी आशा-अपेक्षा रहती है अथवा किसी कारणवशात् उनसे द्वेष रहता है तब तक भगवत् प्राप्ति की वह प्रखर लालसा हृदय में उत्पन्न नहीं होती। इसके लिए तो इन रागद्वेष आदि सभी विकारों से मुक्त होना अनिवार्य है। बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी के चित्त की यही अवस्था थी। लक्ष्य प्राप्ति के लिए उनकी उत्कण्ठा इतनी बढ़ चुकी थी कि वे आहार, निद्रा आदि सभी सुखों का परित्याग कर श्रीनागा जी से भजनमार्ग का निर्देश प्राप्त करने के लिए कदम्बखण्डी में ठहरे हुए थे।

तीसरे दिन आश्विन मास की पूर्णिमा थी। इसे शरद पूर्णिमा कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने इसी तिथि की रात्रि में गोपियों के साथ रासलीला की थी। शरद पूर्णिमा का यह पर्व वैष्णव मात्र के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

दिन व्यतीत होने पर सन्ध्याकाल का आगमन हुआ। पक्षियों के कलरव से मुखारित रहने वाली कदम्बखण्डी ने संध्या के समय मौन धारण कर लिया। कुछ ही क्षणों में पूर्व दिशा से सुधा वर्षा करने वाले चन्द्रदेव का उदय हुआ। अरुणकान्ति वाले पूर्ण चंद ने उदय होकर शरद रासोत्सव के लिए मानो प्रकृति को सुसज्जित कर दिया। इधर पश्चिम दिशा के तम में छाया सूर्य किरणों का प्रकाश जैसे-जैसे सिमटता चला गया वैसे ही पूर्वा से

उदय होने वाले चन्द्रमा की कान्ति उज्ज्वल होती चली गई। थोड़ी ही देर में उनकी उज्ज्वल कान्ति से वन प्रान्त नहा उठा। जल, थल, गगन में सर्वत्र कोमल चन्द्रिका अठखेलियाँ करने लगी। कदम्बखण्डी की वृक्ष लताओं के हरित पत्रों पर सुधाकर की उज्ज्वल किरणों की कान्ति बिखर गई। शनै: शनै: चन्द्रदेव अपने निर्धारित मार्ग पर आगे बढ़ने लगे जिस से उस शुभ रात्रि में एक प्रकार की गहनता आ गई। बाबा पिछले तीन दिनों के समान ही कभी बैठकर तो कभी अधलेटे से होकर श्रीनागा जी की कृपा पावना हृदय में लिए भजन साधन करते रहे। तभी मध्यरात्रि के पश्चात् जब कि ब्रह्ममुहूर्त बहुत दूर न था सहसा ऐसी घटना घटी जिसने बाबा के जीवन के आगे के मार्ग को नये प्रकाश और ऊर्जा से भर दिया।

उस समय बाबा कुछ औंधे से लेटे हुए थे कि सहसा उनके कानों में लकड़ी की पादुकाओं की ध्वनि सुनाई पड़ी। खड़ाऊँ की ध्वनि सुनकर कुछ चौंके और उठकर बैठ गये। वह विचार करने लगे कि इस गहन रात्रि में यहाँ वन प्रदेश में कौन आ रहा है? जैसे-जैसे क्षण व्यतीत हो रहे थे वैसे-वैसे रात्रि की नीरवता का भेदन करते हुए वह खड़ाऊँ की आवाज भी तीव्र होती चली गई। इससे स्पष्ट था कि लकड़ी की खड़ाऊँ पहने हुए, कदम्बखण्डी में चलता हुआ कोई बाबा के निकट आता जा रहा है। वे कौतूहल में भरकर जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी इधर उधर निहारने लगे। यद्यपि वह पूर्णिमा की रात्रि थी चूंकि वहाँ चारों ओर वह सघन वृक्षावली थी इसलिए कही थोड़ा प्रकाश और कही अन्धकार इस प्रकार का दृश्य था। पादुका की खटखट ध्वनि निरन्तर बढ़ती जा रही थी और उसके साथ ही बाबा का कौतूहल भी। अन्तत: वह ध्वनि सर्वथा निकट आ गई और कुछ

ही क्षणों में इस रहस्य से भी पर्दा उठ गया। वस्तुतः बाबा की श्रद्धा विश्वास और इनकी आर्त पुकार से स्वयं परम सिद्ध सन्त चतुरोनगन जी वहाँ खिचे चले आए।

घटना क्रमांक १३

चतुरोनगन का प्रथम साक्षात्कार

बाबा के सामने सहसा प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले एक सन्त आकर उपस्थित हुए। वे और कोई नहीं लगभग ४५० वर्ष पहले के सन्त श्रीचतुरोनगन जी थे। जिन्हें वैष्णव सम्प्रदाय में नागा जी के नाम से जाना जाता है। उनका शरीर श्याम वर्ण का था। कौपीन के अतिरिक्त दूसरा कोई वस्त्र उनकी देह पर नहीं था। एक हाथ में वे नारियल का बना हुआ कमण्डल लिए हुए थे। जटायें मस्तक से पीछे की ओर लम्बी लटक रहीं थी। भाल पर ऊर्ध्वपुण्ड्र शोभायमान था। चरणों में लकड़ी की बनी हुई ऊँची सी खड़ाऊँ थीं। नागा जी के दर्शन करके बाबा भाव विभोर हो गये। नागा जी उन्हें करुणापूरित दृष्टि से निहार रहे थे। आश्चर्य और भावविभोरता से कुछ निकल कर बाबा ने धरती पर लेट कर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इसके पश्चात् नागा जी अपने मेघ गम्भीर स्वर में बाबा से कहा—संत जी! आपकी पुकार पर मैं यहाँ आपके सामने आया हूँ। आप श्रीगिरिराज गोवर्धन की ३६५ साष्टांग दण्डवत् परिक्रमा लगाइये। श्रीगोवर्धन की कृपा से आपकी सभी मनोकामनाएं पूर्ण होंगी। आप का कल्याण हो।

अपना आशीर्वाद व मार्गदर्शन प्रदान कर नागा जी वहाँ से चले गये। नागा जी और बाबा के बीच में और क्या बात हुई यह ज्ञात नहीं है। किन्तु यह सत्य है कि नागा जी ने ही दण्डवती

परिक्रमा की आज्ञा प्रदान की थी। अपने उत्तर जीवन में बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी किसी-किसी के सामने कभी नागा जी और उनके मिलन की यह घटना सुनाया करते थे। उसी को आधार बनाकर यह प्रसंग लिखा गया।

नागा जी के जाने के पश्चात् बाबा रात्रि भर वहीं बैठे रहे। बार-बार उनकी आँखों से आँसू झर आते थे और रह-रहकर उनका शरीर पुलकित हो जाता। अपने ऊपर इष्ट गुरु और सन्तों की कृपा अनुभव का उन्होंने धन्य-धन्य माना। प्रातःकाल होने पर स्नान आदि कृत्यों से निवृत होकर और वहाँ सहज उपलब्ध थोड़ा जलपान कर बाबा पैदल ही चलकर कदम्बखण्डी से बरसाना अपनी कुटिया में लौट आये।

बरसाना आकर उन्हें ज्वर हो आया। संभवतः मार्ग की थकावट तथा खान पान आदि में सर्वथा व्यतिक्रम होने के फलस्वरूप उन्हें ज्वर हुआ। इस कारण श्रीगिरिराज जी की दण्डवती परिक्रमा वे तत्काल प्रारम्भ नहीं कर पाये। ज्वर की चिकित्सा और कुछ दिन का विश्रम आवश्यक था इसलिए उन्हें गोवर्धन जाने में कुछ दिन लग गये। जैसा कि पहले कहा गया है कि गहवर वन में उन दिनों श्रीरासमणिदास जी एवं सेवक सरन जी ये दो राधावल्लभीय संत निवास किया करते थे। इनमें श्रीरासमणि जी का वहाँ स्थायी निवास था और श्रीसेवक सरन जी समय-समय पर आते जाते रहते थे। ये दोनों सन्त तथा बाबा राधावल्लभशरण जी तीनों परस्पर सौहार्दपूर्वक गहवर वन में रहा करते थे। बाबा ने जब उन दोनों को ३६५ दण्डवती परिक्रमा से अवगत कराया तो उन दोनों सन्तों ने बाबा को परामर्श दिया कि ३६५ की संख्या बहुत अधिक है इसमें कई वर्ष लग जायेंगे और श[illegible] बहुत हो जायेगा अतः आप संख्या घटाकर १५१

कर दें। उन दोनों के कथन का बाबा जी के चित्त पर क्या असर हुआ यह हमें ज्ञात नहीं है। किन्तु उस समय बाबा जी को नागा जी से सम्बन्धित एक और अनुभव हुआ जिससे उनका ३६५ परिक्रमा का संकल्प और दृढ़ हो गया।

घटना क्रमांक १४

चतुरोनगन का दुबारा साक्षात्कार

एक दिन तन्द्रा अवस्था में बाबा जी को श्रीनागा जी ने दुबारा दर्शन दिया कदम्बखण्डी में बाबा ने उन्हें जैसा देखा था उसी स्वरूप में वे वहाँ दिखाई दिए। उन्होंने बाबा की सीधे हाथ की अंजली में अपने कमण्डल से जल गिराया और उन्हें श्रीगिरिराज जी की ३६५ दण्डवती परिक्रमा का संकल्प दिलाया। इस प्रकार संकल्प दिलाकर श्रीनागा जी अन्तर्धान हो गये। इतनी बड़ी संख्या में दण्डवती परिक्रमा के लिए अतिशय श्रम और कई वर्षों का समय अपेक्षित है। इसके लिए दृढ़ निश्चय और धैर्य की परमावश्यकता हैं। यद्यपि बाबा का निश्चय दृढ़ था तो भी उसमें और अधिक स्थिरता और गहनता लाने के लिए नागा जी ने बाबा से परिक्रमा का संकल्प लिया। ज्वर से आई हुई दुलर्बलता दूर होने पर बाबा राधावल्लभशरण जी ने परिक्रमा लगाने के लिए गोवर्धन जाने की तैयारी की। बरसाना एवं गहवर वन में उपस्थित अपने परिचित सन्तों से मिलकर और सफलतापूर्वक दण्डवती लगाने का उनसे आशीर्वाद लेकर बाबा ने गोवर्धन के लिए प्रस्थान किया।

श्रीमद्भागवत में दशम स्कन्ध के २४-२७ इन चार अध्यायों में श्रीकृष्ण की गोवर्धन लीला का वर्णन किया गया है। नन्द आदि गोपों को इन्द्र-यज्ञ की तैयारी करते देख श्रीकृष्ण ने

उन्होंने इन्द्र यज्ञ छुड़वाकर गोवर्धन पूजन करवाया। ऐसा उन्होंने इन्द्र का घमण्ड दूर करने के लिए तथा अपने ही स्वरूप श्रीगिरिगोवर्धन की महिमा प्रगट करने के लिए किया। अपने पिता नन्द बाबा से उन्होंने कहा कि विभिन्न प्रकार की भोग सामग्री बनवाकर हमें श्रीगिरिराज जी का भोग लगाना चाहिए। इस अवसर पर गाय और ब्राह्मणों का यथाविधि पूजन करना चाहिए। श्रीगिरिराज तलहटी में निवास करने वाले चाण्डाल, पतित अथवा कुत्ता आदि प्राणी ही क्यों न हो सभी को यथायोग्य वस्तुएँ देनी चाहिए। विविध प्रकार के वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर श्रीगोवर्धन की सप्तकोसी परिक्रमा लगानी चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि इस प्रकार श्रीगिरिराज जी का पूजन और परिक्रमा श्रीगिरिराज जी को तो प्रिय है ही मुझे भी बहुत प्रिय है।

श्रीमद्भागवत में आगे कहा गया है कि श्रीकृष्ण से प्रेरणा पाकर नन्द आदि गोपों ने गो, ब्राह्मण एवं गोवर्धन का पूजन करके सप्तकोसी परिक्रमा लगाई। उसके पश्चात् अनेक प्रकार की भोजन सामग्रियों का गिरिराज जी को भोग लगाया। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण गिरिराज के ऊपर एक दूसरा विशाल रूप धारण करके प्रकट हो गये तथा "मैं गिरिराज हूँ" कहकर भोजन अरोगने लगे—

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गताः।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥३५॥

मैं गिरिराज हूँ इस कथन से सिद्ध होता है कि कृष्ण में और गोवर्धन में सर्वथा अभेद है। श्रीकृष्ण ही गोवर्धन के रूप से प्रकट हैं।

इसके पश्चात् इन्द्र के कोप का वर्णन है। मूसलाधार वर्षा से जब ब्रजवासीगण त्रस्त होने लगे तब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन

पर्वत को अपने हाथ पर उठा लिया और ब्रजवासियों से उसके नीचे आने को कहा। गोधन के साथ समस्त ब्रजवासी गोवर्धन की छाँव में आ गये और इस प्रकार इन्द्र के कोप से होने वाली वर्षा से बच गये। श्रीकृष्ण के अतुलनीय प्रभाव को देखकर इन्द्र का घमण्ड जाता रहा। लज्जित होकर उसने वर्षा रोक दी। तब भगवान् ने समस्त ब्रजवासियों को बाहर निकलने के लिए कहा। स्त्रियों, बच्चों तथा अपने गोधन को लेकर समस्त ब्रजवासी बाहर आ गए और भगवान् ने गोवर्धन पर्वत को पूर्ववत् उसके स्थान पर रख दिया। इसके पश्चात् अगले अध्याय में नन्दबाबा और गोपों की श्रीकृष्ण के प्रभाव से होने वाली चर्चा का वर्णन है। अगले अध्याय में श्रीकृष्ण के अभिषेक का एवं इन्द्र तथा काम धेनु द्वारा की गई स्तुति का वर्णन है। इस प्रकार चार अध्यायों में श्रीकृष्ण की गोवर्धन धारण लीला का वर्णन है।

परिक्रमा की परिभाषा, उसका प्रचलन व महत्व

भगवान् ने गोवर्धन को अपना स्वरूप बताया और ब्रजवासियों को प्रेरणा देकर गिरिराज की परिक्रमा लगवाई तथा उनके साथ स्वयं भी परिक्रमा लगाई। तब से श्रीगोवर्धन परिक्रमा का प्रचलन हुआ। प्रतिवर्ष लाखों ही नहीं अपितु उससे भी अधिक श्रद्धालु भक्त श्रीगोवर्धन की परिक्रमा लगाते हैं।

परिक्रमा अर्थात् प्रदक्षिणा भगवान् के षोडशोपचार पूजन का एक अंग है। सोलह प्रकार की सामग्रियों द्वारा देवता का सांगोपांग पूजन किया जाता है। इस सोलह उपचारों में प्रदक्षिणा भी एक उपचार है। श्रीमद्भागवत में वर्णित नवधाभक्ति में यह पाँचवीं भक्ति है अर्चन अर्थात् पूजन। पूजा की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं किन्तु प्रदक्षिणा उन सबमें अनिवार्य है। जब उपासक अपने आराध्य

ता को दाहिनी ओर रखकर विनीतभाव से उनके चारों ओर घूमता है तो उसे आराध्य की अनुकूलता प्राप्त होती है अर्थात् वह देवता उपासक पर प्रसन्न होकर उसकी मनोकामना पूर्ण करता है। लोकभाषा में भी **"दाहिनी होना"** शब्द का प्रयोग अनुकूल होने के अर्थ में किया जाता है जब कि बायां होना प्रतिकूलता के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार परिक्रमा अर्चन भक्ति का एक अंग है जिससे आराध्य की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

नवधाभक्ति का छठवाँ रूप है वन्दन अर्थात् प्रणाम। प्रणाम का अर्थ है अपने प्रणम्य आराध्य के प्रति सर्वथा अहंकार शून्य हो जाना। हृदय की यह निरभिमानता प्रणाम की मुद्रा से अभिव्यक्त होती है। स्थूल रूप से देखने से प्रणाम केवल शारीरिक क्रिया ही प्रतीत होती है किन्तु वस्तुतः वह उपासक के हृदय की अहंकार शून्यता की अभिव्यक्ति है। अतएव प्रणाम केवल शारीरिक क्रिया नहीं है अपितु वह अहमभाव से रहित चित्त की अवस्था विशेष है जिसके प्रभाव से शरीर में भी प्रणाम मुद्रा घटित होती है।

प्रणाम के अनेक रूप बतलाए गये हैं केवल हाथ जोड़ देना, सिर झुकाना अथवा धरती पर बैठकर प्रणाम करना ये सब प्रणाम क्रिया के ही रूप है किन्तु इसका सर्वश्रेष्ठ रूप है साष्टांग दण्डवत्। आठ अंगों से किया जाने वाला प्रणाम साष्टांग कहलाता है। ये आठ अंग हैं—

जानुभ्यां च तथा पदभ्यां पाणिभ्यामुरसा धिया,
शिरसा वचसा दृष्टयो प्रणामोऽष्टांग ईरितः॥

इस प्रकार नवधाभक्ति के अन्तर्गत वन्दन नामक छठवीं भक्ति का तात्पर्य सर्वथा अहंकार शून्य होकर मन वाणी और कर्म से आराध्य को प्रणाम करना है। पाँचवी अर्चन भक्ति अर्थात्

षोडशोपचार पूजन का एक अंग प्रदक्षिणा है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। इस दृष्टि से साष्टांग दण्डवत् करते हुए परिक्रमा लगाना नवधाभक्ति की पाँचवी अर्चन और छठवी वन्दन इन दोनों का सम्मिलित रूप है। दण्डवती परिक्रमा नवधाभक्ति का ही एक बहु प्रचलित रूप है। ब्रज में दण्डवती परिक्रमा का अधिक प्रचलन है। अबाल, वृद्ध नरनारी इसे करते हैं। यद्यपि शास्त्रों में स्त्रियों के लिए अष्टांग दण्डवत् प्रणाम निषिद्ध माना गया है। पंचाँग प्रणाम से ही स्त्रियों को अष्टांग प्रणाम का लाभ प्राप्त हो जाता है।

ब्रजमण्डल में वृन्दावन, बरसाना, गोवर्धन आदि लीला-भूमियों की परिक्रमा की जाती है। इनमें भी गोवर्धन की दण्डवती परिक्रमा का चलन अधिक है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि गिरिराज पूजन के समय श्रीकृष्ण ने भी ब्रजवासियों के साथ गोवर्धन परिक्रमा की थी इससे श्रीगिरिराज परिक्रमा का अतिशय महत्व प्रकट होता है। आगे चलकर पैदल परिक्रमा का बहुत प्रचार हुआ और इसके साथ ही दण्डवती परिक्रमा भी प्रचार में आई। पैदल अथवा दण्डवती दोनों परिक्रमायें नवधाभक्ति के अन्तर्गत हैं और नवधा का फल प्रेमलक्षणा भक्ति है अर्थात् श्रीराधाकृष्ण के युगलचरणों में सुदृढ़ अनुराग। यद्यपि परिक्रमा का वास्तविक लाभ भक्ति ही है तथापि श्रद्धालु लोग विभिन्न लौकिक कामनाओं से भी पैदल एवं दण्डवती परिक्रमा लगाते हैं जिससे उनकी अभिलाषाएं पूर्ण होती है।

सन्त महापुरुषों ने दण्डवती परिक्रमा के अनेक लाभ बताएं हैं। प्रेम प्रदान करने वाली, महामहिमाशाली श्रीब्रजरज का शरीर से प्रचुर एवं उन्मुक्त स्पर्श यह भी दण्डवती का एक लाभ

है। ब्रजरज अपने विलक्षण स्पर्श से दण्डवती लगाने वाले को प्रेमाभक्ति प्रदान करती है जो मानव जीवन का परम लाभ है।

असंख्य भक्तजन गोवर्धन आदि लीला स्थलियों की पैदल परिक्रमा करते रहते हैं। इस प्रकार परिक्रमा मार्ग में सर्वत्र भक्तों की चरणरज बिछी रहती है। दण्डवती लगाने वाला भक्तचरण रज के निरन्तर स्पर्श में रहता है अतएव भक्त चरण में लोटने का जो लाभ बताया गया वह उसे सहज में ही प्राप्त हो जाता है। वेद पाठ, जप-तप, अनुष्ठान आदि साधन भी श्रीकृष्ण प्राप्ति कराने में उतने समर्थ नहीं है जितना समर्थ भक्तचरण रज का अभिषेक। दण्डवती लगाने वाले का चरण रज से बराबर अभिषेक होता रहता है अतः उसके लिए भगवत् प्राप्ति सुगम हो जाती है।

ऊपर कहा गया है कि गिरिराज पूजन के समय स्वयं श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को अपना स्वरूप ही बताया है। गिरिराज गोवर्धन कृष्ण रूप तो हैं ही किन्तु इसके साथ ही श्रीमद्भागवत में उन्हें श्रेष्ठ भगवत् भक्त भी कहा गया है। सुप्रसिद्ध वेणुगीत में गोपियों ने गिरिराज को हरिदासवर्य अर्थात् भगवत् भक्तों में श्रेष्ठ कहा है—

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्ण चरणस्पर्श प्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोयत्
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥१८॥

अरी गोपियो! यह गिरिराज गोवर्धन तो भगवान् के भक्तों में बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य है इसके भाग्य! देखती नहीं हो, हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलराम के चरणकमलों का स्पर्श प्राप्त करके यह कितना आनन्दित रहता है। इसके

भाग्य की सराहना कौन करे? यह तो उन दोनों का स्वागत
और गौओं का बड़ा सत्कार करता है। स्नान-पान के लिए झरनों
का जल देता है, गौओं के लिए सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत
करता है विश्राम करने के लिए कन्दरायें और खाने के लिए
कन्द-मूल फल देता है। वास्तव में यह धन्य है॥१८॥

इस प्रकार श्रीगिरिराज जी भगवत् रूप होते हुए भी भक्त हैं अथवा भक्त होते हुए भी भगवत् रूप हैं। कहने का आश्रय यह है कि श्रीगिरिराज जी के स्वरूप में भक्त और भगवान् दोनों एक रूप हैं। अत: श्रीगिरिराज जी का परिक्रमा उनका स्मरण, चिन्तन भक्त और भगवान् की सम्मिलित आराधना ही है। भक्तमालकार श्रीनाभाजी ने कहा है कि श्रीभगवान् और उनके भक्त ये दोनों ही आराध्य है–

"भजिवे को दोई सुघर कै हरि कै हरिदास।"

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय में नन्दबाबा के नेतृत्व में गोकुल महावन के सभी ब्रजवासियों का वृन्दावन आकर बसने का उल्लेख है। भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म के बाद से महावन में कंस द्वारा भेजे गये दैत्यों का उपद्रव बढ़ गया था। अतएव नन्दबाबा आदि बड़े बूढ़े गोपों ने इस विषम पर विचार विमर्श किया उस समय उपनन्द नामक गोप ने कहा कि अब हमें सपरिवार, सपरिकर और गोधन सहित महावन छोड़ कर वृन्दावन चले जाना चाहिए। उपनन्द जी ने वृन्दावन का वर्णन करते हुए कहा–इस प्रकार श्रीगिरिराज जी भगवत् रूप होते हुए भी भक्त हैं अथवा भक्त होते हुए भी भगवत् रूप हैं। कहने का आश्रय यह है कि श्रीगिरिराज जी के स्वरूप में भक्त और भगवान् दोनों एक रूप हैं। अत: श्रीगिरिराज जी का आराधना उनकी परिक्रमा, उनका स्मरण, चिन्तन भक्त औ[illegible]न् की

सम्मिलित आराधना ही है। भक्तमालकार श्रीनाभाजी ने कहा है कि श्रीभगवान् और उनके भक्त ये दोनों ही आराध्य है–

"भजिवे को दोई सुघर कै हरि कै हरिदास।"

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय में नन्दबाबा के नेतृत्व में गोकुल, महावन के सभी ब्रजवासियों का वृन्दावन आकर बसने का उल्लेख है। भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म के बाद से महावन में कंस द्वारा भेजे गये दैत्यों का उपद्रव बढ़ गया था। अतएव नन्दबाबा आदि बड़े बूढ़े गोपों ने इस विषम पर विचारविमर्श किया उस समय उपनन्द नामक गोप ने कहा कि अब हमें सपरिवार, सपरिकर और गोधन सहित महावन छोड़ कर वृन्दावन चले जाना चाहिए। उपनन्दजी ने वृन्दावन का वर्णन करते हुए कहा–

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोप गोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्॥२८॥

अर्थात्–'वृन्दावन' नाम का एक वन है। उसमें छोटे-छोटे और बहुत से नये-नये हरे भरे वन हैं। वहाँ बड़ा ही पवित्र पर्वत, घास और हरी भरी लता–वनस्पतियाँ हैं। हमारे पशुओं के लिए तो वह बहुत ही हितकारी है। गोप-गोपी और गायों के लिए वह केवल सुविधा का ही नहीं, सेवन करने योग्य स्थान है।

तत्तत्राद्यैव यास्याम: शकटान युङ्क्त मा चिरम्।
गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते॥२९॥

अर्थात्–सो यदि तुम सब लोगों को यह बात जँचती है। तो आज ही हमलोग वहाँ के लिए कूच कर दें। देर न करें, गाड़ी-छकड़े जोते और पहले गायों के, जो मेरी एकमात्र सम्पत्ति हैं, वहाँ भेज दें॥२९॥

श्रीमद्भागवत के इस प्रसंग में श्रीवृन्दावन का वर्णन करने वाले उक्त दो श्लोक बहुत प्रसिद्ध हैं।

इस वर्णन से पता चलता है कि श्रीवृन्दावन एक विशालवन है जिसमें छोटे-छोटे और भी अनेक वन है। इस वृन्दावन में यमुना पुलिन है और इसी में गोवर्धन पर्वत। वस्तुतः पुराण साहित्य में वृन्दावन का परिमाण (विस्तार) पाँच योजन अर्थात् बीस कोस (६० किमी.) माना गया है। रसिकसन्त श्रीध्रुवदासजी ने कहा है–

रसिक अनन्यनि कृपा मनाऊँ। वृन्दावन रस कुछ इक गाऊँ।
जोजन पंच बिहार स्थाना। श्रीपति श्री सौं कह्यौ प्रमाना॥
(रसमुक्तावली-३-४)

उपनन्द की बात सुनकर सभी गोपों ने एक स्वर में कहा बहुत ठीक बहुत ठीक। तब नन्दादि सभी गोपों ने कृष्ण बलराम सहित अपने परिवार और गोधन को लेकर वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया।

इस वर्णन से पता चलता है कि श्रीवृन्दावन एक विशाल वन है जिसमें छोटे-छोटे और भी अनेक वन है। इस वृन्दावन में यमुना पुलिन है और इसी में गोवर्धन पर्वत। वस्तुतः पुराण साहित्य में वृन्दावन का परिमाण (विस्तार) पाँच योजन अर्थात् बीस कोस (६० किलोमीटर) माना गया है। रसिक सन्त श्रीध्रुवदास जी ने कहा है–

ऊपर यह बताया गया है कि श्रीगिरिराज पूजन के समय श्रीकृष्ण एक विशाल रूप धारण करके गोवर्धन में से प्रकट हुए और उन्होंने अपना परिचय गिरिराज गोवर्धन के रूप में दिया। तब से भगवत् वचनानुसार भक्तजन गोवर्धन को श्रीकृष्ण का स्वरूप मानकर ही उनकी आराधना करते हैं। श्रीमद्भागवत के

उक्त श्लोक में गोपियों ने श्रीगिरिराज को हरिदासवर्य कहा है अर्थात् भगवत् भक्तों में श्रेष्ठ कहा है। भागवत के इन दोनों उद्धरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रीगिरिराज भगवत् स्वरूप होते हुए भी भक्त श्रेष्ठ हैं तथा परम भक्त होते हुए भी भगवत् स्वरूप हैं, अर्थात् उनके दिव्य भव्य महनीय स्वरूप में भक्त और भगवान् दोनों का एकात्म रूप प्रकट है। इस प्रकार उनकी आराधना से भक्त और भगवान् की सम्मिलित आराधना का महानतम लाभ प्राप्त हो जाता है।

वस्तुतः श्रीगिरिराज जी की अद्भुत महिमा है, अवर्णनीय है, अवाङ्मनसोगोचर हैं। वे साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। करुणा-वरुणालय स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन हैं जो ब्रजभूमि में प्रकट रहकर अपने सकाम और निष्काम दोनों प्रकार के भक्तों पर निरन्तर अपनी कृपा धारा बरसाते रहते हैं। पंचभौतिक प्राकृत स्वरूप में उनका जो दर्शन हमें होता है वह देखने वाले की प्राकृत दृष्टि के कारण ही है वस्तुतः वे लौकिक नहीं है अपितु दिव्य अलौकिक और चिन्मय हैं। उनके स्वरूप में कहीं जड़ता का लेश भी नहीं है। सच्चिदानन्दघन उनका स्वरूप है, जिसमें कहीं भी अचेतनता नहीं है। उनकी कन्दराएँ उन पर सुशोभित वृक्ष, गुल्म, लताएं, विहार करने वाले खग-मृग आदि प्राणी तथा उनसे निर्झरित होने वाले अमृतमय प्रवाह ये सभी अलौकिक हैं अप्राकृत हैं। अलौकिक होते हुए भी लौकिक भू-मण्डल पर उनकी उपस्थितिता हेतु उनकी कृपा परवशता है। अपने शरणागत भक्तों का परमहित करने के लिए तथा मानव मात्र का मंगल करने के लिए वे पृथ्वी पर नित्य प्रकट हैं। वस्तुतः उनकी अपार महिमा वाणी और मन से परे है। शब्दों में उसके लेश का वर्णन सम्भव नहीं है।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के निष्ठावान अनुयायी थे। सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुसार ही उनकी उपासना प्रणाली थी। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीहित हरिवंश महाप्रभु और उनके अनुयायियों द्वारा लिखा हुआ विशाल वाणी साहित्य उपलब्ध है। इसमें रस सिद्धान्त और उपासना पद्धति से सम्बन्धित सभी आवश्यक बातें कही गई हैं। इस सिद्धान्त में मुख्य रूप से कुण्डलाकार यमुना से परिवेष्टित पंच कोसी श्रीवृन्दावन का उपासना की चर्चा की गई है। श्रीवृन्दावन ब्रजमण्डल के अन्तर्गत है। ब्रजमण्डल के अन्य लीला स्थलों की भी चर्चा सम्प्रदाय के वाणी साहित्य में कहीं-कहीं प्राप्त है इसी क्रम में श्रीगिरिराज गोवर्धन का भी उल्लेख किया जाता है। परन्तु जैसा कि हमने ऊपर कहा है कि श्रीकृष्ण की रास रस भूमि श्रीवृन्दावन की ही इसमें प्रधान रूप से वर्णन किया गया है। श्रीगिरिराज गोवर्धन की दण्डवती परिक्रमा का उल्लेख सम्प्रदाय के वाणी साहित्य में कहीं प्राप्त नहीं है अर्थात् उपासना के अंग के रूप में इसका विधान नहीं किया गया है। ऐसी स्थिति में बाबा के द्वारा ३६५ दण्डवती लगाने को हम दो रूपों में समझ सकते हैं। प्रथम यह कि बाबा को परम सिद्ध सन्त श्रीनागा जी के द्वारा इसकी आज्ञा प्राप्त हुई। संत आज्ञा का पालन करना उपासक के लिए सब प्रकार से कल्याणकारी है इस भाव से प्रेरित होकर बाबा ने ये परिक्रमा लगाई। दूसरा दृष्टिकोण यह है, जैसा कि हम ऊपर भी कह आए हैं पुराणों में श्रीधाम वृन्दावन को पंच योजन विस्तार वाला कहा गया है। पंच योजन अर्थात् साठ किलोमीटर की परिधि के अनुसार नन्दगांव, बरसाना, गोवर्धन आदि स्थल श्रीवृन्दावन के इस पौराणिक वृहद स्वरूप के अन्तर्गत ही है। पूर्व में श्रीमद्भागवत का एक श्लोक उद्धत किया गया है

जिसमें गिरि-गोवर्धन को वृन्दावन के अन्तर्गत ही माना गया है। अतएव बाबा के द्वारा किए गए दण्डवती परिक्रमा के अनुष्ठान को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि यह श्रीवृन्दावन के वृहद रूप की उपासना का ही एक प्रकार है। इस उपासना के प्रभाव से पंच कोसी श्रीवृन्दावन की रास रसमयी उपासना में प्रवेश हो इसी भाव से बाबा ने श्रीगिरिराज जी की दण्डवती परिक्रमा लगाई।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी के अन्य घटना प्रसंगों के समान उनकी श्रीगिरिराज दण्डवती परिक्रमा का समय भी अनुमान से ही निर्धारित किया जा सकता है। उनके शिष्यों से पूछने पर इसकी कोई निश्चित जानकारी नहीं हो सकी। अन्य सूत्रों से मिली जानकारियों के अनुसार सन् १९६८ में उन्होंने दण्डवती प्रारम्भ की, ऐसा अनुमान होता है। इस अनुमान में एक वर्ष आगे या पीछे की सम्भावना हो सकती है, इससे अधिक की नहीं। सन् १९६८ में बाबा की आयु ४२ वर्ष थी।

श्रीनागा जी से आदेश प्राप्त होने के कुछ दिन बाद बाबा अपने मन में ३६५ दण्डवती परिक्रमा का दृढ़ निश्चय करके गोवर्धन आए। श्रीगिरिराज परिक्रमा अधिकांश लोग दान घाटी से ही शुरू करते हैं। यद्यपि यह अनिवार्य नियम नहीं है। श्रीगिरिराज जी की परिक्रमा फिर चाहे वह खड़ी (पैदल) अथवा दण्डवती (लेटते हुए) हो कहीं से भी प्रारम्भ की जा सकती है। सात कोस के परिक्रमा मार्ग में अपनी-अपनी सुविधानुसार कहीं से भी परिक्रमा का प्रारम्भ करके उसी स्थल पर उसे पूर्ण करने का विधान है। ऐसा होते हुए भी अधिकतर लोग दानघाटी से ही परिक्रमा प्रारम्भ करते देखे गए हैं। हमारा अनुमान है कि बाबा ने भी दण्डवती परिक्रमा का श्रीगणेश दानघाटी से ही किया था।

दण्डवती की संख्या के अनुसार उतनी ही गिनती के छोटे-छोटे पत्थर एकत्रित करके फिर परिक्रमा प्रारम्भ की जाती है। इन पत्थरों का उपयोग दण्डवती की गिनती में होता है। प्रायः श्रद्धालु लोग ११, २१, ५१, १०८, १५१ आदि संख्या में दण्डवती परिक्रमा लगाते हैं। ३६५ दण्डवती परिक्रमा लगाने वाले विरले ही होते हैं क्योंकि यह अनेक वर्षों तक चलने वाला एक श्रम साध्य अनुष्ठान है। श्रीनागा जी के द्वारा बाबा को ३६५ परिक्रमा का ही आदेश हुआ था। वर्ष भर में ३६५ दिन ही माने जाते हैं। संवत्सर के सभी दिनों की संख्या के अनुसार परिक्रमा की संख्या निर्धारित की गई है। इसका आशय यही प्रतीत होता है कि जीवन में शेष बचे सभी संवत्सरों को, उनके प्रत्येक मास और दिवसों को आराधनामय ही बना दिया जाए। नागा जी के द्वारा निर्दिष्ट संख्या के अनुसार सर्वप्रथम बाबा ने ३६५ पत्थरों को एकत्रित किया जो प्रायः एक जैसे समान आकार के थे। परिक्रमा प्रारम्भ करने के किसी शुभ दिन को निर्धारित कर उन्होंने प्रथम श्रीगिरिराज को साष्टांग नमन किया और उसके पश्चात् उपस्थित सभी संत महन्त एवम् ब्रजवासियों को नमन करके उनसे दण्डवती की आज्ञा प्राप्त की। सभी का आशीर्वाद लेकर बाबा ने श्रीराधावल्लभलाल का, श्रीहरिवंश महाप्रभु का, श्रीसेवक जी एवम् अपने गुरुजनों का जयघोष करके परिक्रमा का शुभारम्भ किया।

श्रीराधासुधानिधि के श्लोकों को बाबा प्रायः गाया करते थे यह पूर्व में कहा जा चुका है। उनका कण्ठ भी अत्यन्त मधुर था। मधुर स्वर से श्लोकों को धीरे-धीरे गाने का अभ्यास उनको सदैव रहा। यहाँ दण्डवती परिक्रमा में भी उनका यह अभ्यास बना रहा। यद्यपि दण्डवती के साथ गायन कर पाना कठिन है क्योंकि उस समय प्रायः सांस फूल जाती है, तो भी [illegible] प्रायः

श्रीराधासुधानिधि का गायन करते हुए दण्डवती करने की चेष्टा करते थे। इससे परिक्रमा लगाते समय निरन्तर इष्ट की स्मृति बनी रहती है।

संत महापुरुषों में अपने अनुभवों के आधार पर परिक्रमा के अनेक नियम निर्धारित किए हैं, बाबा उन सबका सावधानी से पालन करते थे। इन में से एक नियम यह भी है कि दण्डवती लगाने वाला प्रतिदिन जहाँ तक परिक्रमा लगा सके उस स्थान को चिह्नित कर दे और विश्राम भोजन आदि अपने दैनिक कार्यों के लिए वह उस चिह्नित स्थान से आगे ना जाए। कहने का आशय यह है कि चिह्नित स्थल से पूर्व ही उसका निवास आदि होना चाहिए ताकि उसे आगे जाने की आवश्यकता ही न पड़े। इस नियम का और ऐसे अन्य अनेक नियमों का बाबा दृढ़ता से पालन करते थे। हमें उपलब्ध जानकारी के अनुसार बाबा निवास के लिए किसी आश्रम, घर अथवा धर्मशाला आदि का आश्रय कम ही लेते थे। जहाँ तक उनकी परिक्रमा पहुँचती उसके पूर्व वहीं आसपास चाय आदि के होटल के बाहर पड़ी हुई बेन्चें अथवा ठण्ड एवम् वर्षा काल में मन्दिरों के खाली पड़े प्रांगण एवम् बाहरी बरामदों में रात्रि व्यतीत कर लेते थे। इस प्रकार की तपश्चर्या के वे पहले से ही आदि थे। खानपान एवम् निवास आदी की सुविधाओं का आग्रह उन्हें पहले भी नहीं था। परिक्रमा काल में वे ब्रजवासियों के घरों से मधुकरी भिक्षा ले लेते थे अथवा संतों को वितरित होने वाले भोजन प्रसाद को ग्रहण कर लेते थे। अपने हाथ से भोजन बनाने का अवसर आने पर वे उससे भी पीछे नहीं हटते थे। यहाँ वहाँ से ईंधन एकत्रित कर वे सहज ही भोजन बना लिया करते थे किन्तु प्रायः मधुकरी भिक्षा को ही प्राथमिकता देते थे।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी को श्रीगिरिराज जी की ३६५ दण्डवती परिक्रमा में १६ वर्ष लगे, ऐसा वे स्वयं कहते थे। इन १६ वर्षों में उनकी परिक्रमा बिना किसी बाधा के निरन्तर चलती रही। स्वास्थ्य या अन्य कारणों से उसमें कोई व्यवधान नहीं आया। श्रम साध्य परिक्रमा से होने वाली दैनिक थकावट, शीत, उष्ण, वर्षा आदि के कारण उत्पन्न होने वाली सामयिक बिमारियां अथवा ऐसे अन्य कारण उनकी दण्डवती में बाधक नहीं बने।

शिष्या श्यामादासी को बाबा ने बताया था कि वे एक दिन में दण्डवती कर लेते थे। वस्तुत: यह बाबा की निष्ठा, लगन एवम् उत्साह से ही हो पाता था। अन्य किसी के लिए तो एक दण्डवत् कर पाना भी बड़ा कठिन कार्य है। इष्ट, गुरु और संत कृपा से ही १६ वर्ष के दीर्घकाल तक चलने वाला यह दण्डवती अनुष्ठान बाबा बिना किसी बाधा के विधिपूर्वक कर सके। आगे के पृष्ठों में हम उस समय की कुछ घटनाओं का उल्लेख करेंगे जिन्हें वे कभी-कभी किसी के सामने सुनाया करते थे।

घटना क्रमांक १५

अपंग महिला द्वारा दण्डवती बाबा के दर्शन

दानघाटी से परिक्रमा प्रारम्भ कर बाबा लगभग एक किलोमीटर आगे पहुँच चुके थे। वहाँ एक मध्यम आयु की एक महिला उन्हें दिखाई दी। वह दोनों पैरों से अपंग थी। पृथ्वी पर अपने शरीर को घसीटते हुए वह आगे बढ़ पाती थी। उसके पैरों में खड़े होने की क्षमता नहीं थी। वह विवाहित थी। उसकी ससुराल गोवर्धन से कुछ दूर थी। जब वह ससुराल में थी तब एक आकस्मिक दुर्घटना में उसके दोनों पैर अतिशय घायल हो

गए। डॉक्टरों ने कुछ समय तक इलाज किया, फिर उसके पति से कहा कि अब यह कभी ठीक नहीं होगी। इसके दोनों पैर दुर्घटना में मृतप्राय: हो चुके हैं। अत: इसे आजीवन इसी अवस्था में रहना पड़ेगा।

संसार का स्वरूप स्वार्थमय है। मनुष्य का किसी वस्तु या व्यक्ति से तभी तक लगाव होता है जब तक उससे स्वार्थ सधता हो। जब कोई व्यक्ति अपने लिए उपयोगी नहीं होता तो मनुष्य का उसके प्रति आकर्षण धीरे-धीरे मिटने लगता है। फिर यदि वह अनुपयोगी व्यक्ति किसी प्रकार बोझ जैसा बन जाए तो ऐसे व्यक्ति से हर कोई अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता है। संसार की यही रीति सर्वत्र दिखाई देती है। श्रीरामचरिमानस में कहा गया है कि देवता, मनुष्य और मुनियों सभी की यह रीति है कि वे स्वार्थ सधने पर ही प्रेम करते हैं अन्यथा नहीं। बिना किसी स्वार्थ के दूसरे का उपकार किया जाए ऐसे को तो दो ही हैं— एक श्रीभगवान् और दूसरे उनके भक्त—

सुर नर मुनि सब की यह रीती। स्वारथ लागि करान्हि सब प्रीती।

× × × × ×

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी॥

उस अपंग महिला के साथ भी यही हुआ। उसके पति ने जब देखा कि यह अब सदा के लिए अपंग हो चुकी है और हमारे लिए एक बोझ के ही समान है तो ऐसी अपंग पत्नी से पीछा छुड़ाने का विचार बनाया। वह स्वार्थी और निर्दयी व्यक्ति एक दिन उसे किसी वाहन में बिठाकर गोवर्धन लाया और परिक्रमा मार्ग में छोड़कर चला गया। इस विचार से की यहाँ वह धर्मार्थ अन्नक्षेत्र तथा यात्रियों से भीख माँगकर अपना गुजारा कर लेगी। पति के द्वारा इस प्रकार त्यागे जाने पर उस महिला पर क्या बीती

होगी इसका कुछ अनुमान किया जा सकता है। संभवत: उसके पीहर पक्ष में आश्रय देने वाला कोई शेष नहीं था इसलिए उसके पति ने उसे इस तरह यहाँ लाकर छोड़ दिया। पति से धोखा खाई हुई वह अपंग महिला रोते-बिलखते हुए किस तरह अपने दिन काट रही थी।

प्राण हरण करने वाले विष को कोई कुशल वैद्य अपनी प्रक्रियाओं द्वारा एक रसायन औषधि के रूप में परिवर्तित कर देता है। अब वह प्राण घातक विष प्राण दायक औषधि का रूप धारण कर लेता है। उसे वह वैद्य मरणासन्न रोगी को खिलाकर नवजीवन प्रदान कर देता है। यह सब संभव हो पाता है आयुर्वेद शास्त्र में कुशल एक वैद्य के द्वारा। ठीक इसी प्रकार श्रीराधा-वल्लभलाल की मंगलमयी कृपा भी संसार के सर्वथा कटु अनुभवों से गुजर रहे व्यक्ति पर बरस कर उसके कडुवे अनुभवों को महामधुर भक्ति रस में हेतु बना देती है। इस प्रकार वह विष के समान कडुवा अनुभव भी अमृतमय भक्तिमार्ग का प्रवेश द्वार बनकर मधुर ही प्रतीत होता है। ऐसा ही उस महिला के साथ भी हुआ। पति से वह चोट खाई हुई थी संसार में उसका और कोई आश्रय नहीं था। ऐसे में अहैतुकी भगवत् कृपा ने उसका हाथ थामा जिसके प्रभाव से उसके चित्त से संसार की आशा जाती रही। और उसके स्थान पर श्रीकृष्ण स्वरूप गिरिराज के प्रति दृढ़ आश्रय और विश्वास ने जन्म लिया। उसे समझ में आने लगा कि इस जगत में कोई अपना नहीं है। जीव का सच्चा सम्बन्धी जो उसे कभी भी किसी भी परिस्थिति में नहीं त्यागता वह है केवल श्रीगिरिराज धरण। जिन्होंने अपनी उँगली पर गोवर्धन को धारण कर इन्द्र के कोप से ब्रज की रक्षा की। वे परम दयालु श्रीगिरिराजधरण ही अब मेरा आश्रय है मेरी गति-मति हैं।

वह महिला इस प्रकार की मन:स्थिति से जब गुजर रही थी तभी बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी की दण्डवती उसके निकट पहुँची चुकी थी। लोगों को श्रीगोवर्धन की पैदल परिक्रमा लगाते हुए वह नित्य ही देखा करती थी। दण्डवती परिक्रमा लगाते हुए भी भक्त जन उसके सामने से गुजरा करते थे। इन सबसे अलग प्रकार की थी बाबा की दण्डवत्। एक स्थल पर ३६५ साष्टांग प्रणाम करके फिर उसके आगे प्रस्थान करना बाबा के इस दण्डवती क्रम को वह ध्यानपूर्वक देखा करती थी। ३६५ की संख्या होने से बाबा किसी दिन एक अथवा किसी दिन दो दण्डवती कर पाते थे। इस प्रकार उनका आगे बढ़ना बहुत मन्दगति से हो पाता था। अतएव उस महिला को बाबा के दर्शन सान्निध्य का अवसर लगातार कई दिन मिला।

घटना क्रमांक १६

अपंग महिला द्वारा श्रीगिरिराजजी की दण्डवती परिक्रमा

श्रीगिरिराजधरण को ही अपना एकमात्र आश्रय मानने वाली उस अपंग महिला पर श्रीगिरिराज की कृपा दृष्टि भला कैसे न होती। श्रीठाकुर जी ने कृपा करके उसे एक अद्भुत प्रेरणा प्रदान की। बाबा को दण्डवती लगाते देख उसके मन में भी दण्डवती परिक्रमा लगाने की प्रेरणा जगी। यद्यपि यह उसके लिए बहुत ही कष्ट साध्य अथवा यह कहें कि लगभग असंभव जैसा ही था क्योंकि दुर्घटना में उसके दोनों पैर पूर्ण रूप से खराब हो चुके थे। वह पैरों के बल खड़ी नहीं हो पाती थी ऐसी स्थिति में दण्डवती कैसे लगती। इसके लिए तो खड़ा होकर साष्टांग प्रणाम करते हुए लेट जाना और फिर पुन: खड़ा होकर उसी प्रकार प्रणाम करना आवश्यक था। जो उससे कदापि संभव नहीं

था। वह एकबार भी अपने पैरों के बल पर खड़ी होने की स्थिति में नहीं थी। यदि उसके स्थान पर और कोई स्त्री या पुरुष होता तो वह ऐसी स्थिति में दण्डवती करने की सोच भी नहीं पाता। किन्तु दण्डवती लगाने का उसका विचार स्वयं उसकी मन बुद्धि से उत्पन्न नहीं हुआ था, अपितु करुणा-वरुणालय, भक्तजन वत्सल श्रीगिरिराजधरण ने ही उसे दण्डवती लगाने के लिए प्रेरणा प्रदान की थी। अन्तर्यामी प्रभु से प्रेरणा प्राप्त कर उसने दण्डवती लगाने का दृढ़ निश्चय करके उसे प्रारम्भ कर दिया।

उस महिला का दण्डवती क्रम यह था कि वह साष्टांग प्रणाम करते हुए लेट जाती और फिर हाथों के बल से उठकर बैठ जाती। इसके पश्चात् शरीर को घसीटती हुई आगे चिह्न तक पहुँचती और पूर्व के समान दूसरी दण्डवती करतीं। हमारे धर्म ग्रन्थों में स्त्री के लिए दण्डवत् प्रणाम करना निषिद्ध है, सामान्य रूप से शास्त्र द्वारा विधि-निषेध का ये ही निर्देश है। परन्तु उस महिला की तप एवम् लगन से की गई दण्डवती करुणा-वरुणालय श्रीठाकुर जी ने स्वीकार कर ली। भावग्राही प्रभु केवल अपने आश्रित जन का आन्तरिक भाव देखकर उसके सभी मनोरथों को पूर्ण करते हैं। यहाँ तक की वे दयामय अपने आपको भी उसे सौंप कर उसके अधीन हो जाते हैं। शारीरिक सामर्थ्य न होते हुए भी उस महिला ने अनन्य आश्रय के भाव से परिक्रमा प्रारम्भ की थी। उसकी एक-एक दण्डवती पर श्रीगिरिराजधरण उस पर रीझते चले गए। अपने जन पर उनकी इस रीझान के चिह्न शनैः शनैः बाहर भी सभी को दिखाई देने लगे। उनकी अहैतुकी कृपा से उस महिला के पैरों में धीरे-धीरे शक्ति का संचार होने लगा। जैसा कि पहले कहा गया है किसी दुर्घटना में उसके दोनों पैर सर्वथा शक्तिहीन हो चुके थे। डॉक्टरों ने भी हार कर उसकी समस्या को असाध्य मान लिया था। उसके पति एवम् ससुराल पक्ष के अन्य लोगों ने उसे सदा के लिए अपंग समझकर त्याग दिया था। गोवर्धन तलहटी में रहकर अन्य भिक्षुकों के साथ वह भी अपना उदर पोषण कर लेगी इस विचार से उसे वे छोड़ गए थे।

श्रीगिरिराज जी की कृपा से अब स्थिति बदलने लगी। उसके पैरों में क्रमशः चेतना और शक्ति का संचार होने लगा, जिसे वह स्वयं अनुभव करती थी। एक दिन उसे लगा कि यदि वह किसी वस्तु का सहारा ले तो संभवतः खड़ी भी हो सकती है। ऐसा ही हुआ भी, अब वह किसी का आश्रय लेकर खड़ी होने लगी। श्रीठाकुर जी की मंगलमयी कृपा यहाँ भी रूकी नहीं। कुछ ही दिनों में वह बिना किसी के सहारे भी खड़ी होने लगी और क्रमशः पूर्व की तरह स्वस्थ होती चली गई। अब वह चलने फिरने भी लगी। और यहाँ तक की वह अब दौड़ भी सकती थी।

अपंग महिला पर कृपा

अपना यह काया-कल्प देखकर वह महिला श्रीगिरिराज जी की महती कृपा पर बार-बार बलिहार होती। उनकी करुणा का स्मरण कर उसका हृदय भर आता। नेत्रों से अश्रुधारा बहाती हुई वह श्रीगिरिराज जी की ओर निहार कर उन्हें बार-बार प्रणाम करती। जिसे सब त्याग देते हैं, ठुकरा देते हैं उस आश्रयहीन को ये नन्दनन्दन अपना हाथ बढ़ा कर थाम लेते हैं और सदा के लिए अपनाकर उसे सब प्रकार से निश्चिन्त कर देते हैं। श्रीगिरिराज धरण का यह स्वभाव देखकर वह बार-बार प्रेम विवश हो जाती और फूट-फूटकर रोने लगती।

आसपास के लोग भी आश्चर्य चकित थे। वे उसे भिक्षुकों की कतार में बैठी एक अपंग महिला के रूप में ही देखा करते

थे। किन्तु कुछ ही दिनों में ऐसा क्या हो गया कि वह खड़ी होने लगी और यहाँ तक की चलने फिरने भी लगी। सब लोगों के लिए यह एक विस्मय ही था। बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी की दण्डवती भी उस समय वहीं आसपास ही थी। उस महिला पर हुई भगवत् कृपा देखकर वे भी गद्‌गद् हो गए। जहाँ सामान्य लोग इस परिवर्तन को देखकर चकित हो रहे थे, इसे एक संयोग मान रहे थे वहीं बाबा और उन जैसे अन्य भक्तजन इसे श्रीगिरिराज जी की कृपा के रूप में देखकर भाव-विभोर हो रहे थे।

परिवर्तन सृष्टि का अविचल नियम है। यहाँ जैसे वस्तु और व्यक्तियों में समयानुसार परिवर्तन होता ही चला जाता है वैसे ही परिस्थितियाँ भी एक सी नहीं रह पातीं। समय की प्रबल धारा पहले वाली परिस्थिति को बहा कर ले जाती है और उसके स्थान पर नई परिस्थिति उपस्थित कर देती है। इन परिवर्तनों के कारण मनुष्य कभी शान्त और एकरस नहीं रह पाता। सृष्टि की यह हलचल उसे सदैव उद्विग्न करती रहती है। उस महिला की परीक्षा भी यहीं समाप्त नहीं हुई। इसके पश्चात् भी क्रूर जगत ने अपने स्वार्थ के कारण उस पर और भी अत्याचार किया। हुआ यह कि स्वस्थ होने पर वह महिला तो आनन्दपूर्वक श्रीगिरिराज जी की दण्डवती और दर्शन-पूजन में समय व्यतीत कर रही थी, उसी अवधि में उसके ससुराल पक्ष को जानने वाले कुछ लोग परिक्रमा लगाने के लिए आए। उन लोगों की दृष्टि उस महिला पर पड़ी, वे उसे पहचान गए। दुर्घटना में स्थायी रूप से अपंग हुई महिला फिर से कैसे स्वस्थ हो गई यह उनके लिए आश्चर्य का विषय था। उन्होंने लौटकर उसके पति को इसकी जानकारी दी। संसार को स्वार्थमय स्वरूप में देखना उस महिला के लिए अभी और शेष था। जानकारी मिलने पर वह निर्दयी और खुदगर्ज

[illegible] वाहन लेकर गोवर्धन आया। अपंग पत्नी को उसने स्वयं ही त्याग दिया था और अब उसके स्वस्थ होने पर वह उसे लेने के लिए आ गया।

उस महिला ने जब अनायास अपने पति को सामने देखा तो वह विस्मित हो गई। उसे यह आशा नहीं थी कि मेरा पति फिर कभी यहाँ मेरे पास आएगा। उस व्यक्ति ने उसे घर चलने के लिए कहा यह सुनकर वह महिला कांप उठी। घर परिवार को लेकर उसके मन में न कोई इच्छा थी और न कोई संकल्प। वह तो दृढ़ निश्चय कर चुकी थी कि मुझे अपना शेष जीवन श्रीगिरिराज जी तलहटी में ही व्यतीत करना है। आज जब उसका पति अनायास उसके सामने आकर घर चलने का आग्रह करने लगा तो वह महिला भयभीत हो गई। उसने स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया कि मुझे अब गोवर्धन छोड़कर कहीं नहीं जाना है और न ही आप लोगों से कुछ सम्बन्ध रखना है। इस पर उसका पति भी उसे बार-बार चलने के लिए आग्रह करने लगा और दबाव बनाने लगा। परन्तु वह भी अपने निश्चय पर अड़िग रही। उस महिला ने पति के क्रूर स्वरूप को भी देखा था और करुणा-वरुणालय श्रीगिरिराजधरण की भी अद्‌भुत कृपा छाया का भी अनुभव किया था। ऐसी स्थिति में उस पर पति के दबावपूर्ण आग्रह का क्या प्रभाव पड़ता। वह पति का बराबर विरोध करती रही। धीरे-धीरे उन दोनों के वाक् युद्ध ने उग्ररूप धारण किया। वह व्यक्ति उसे जबरदस्ती हाथ पकड़कर गाड़ी में बिठाने की चेष्टा करता। दोनों की कहा सुनी देखकर वहाँ और भी कई लोग एकत्रित हो गए। उन लोगों में बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी भी थे। वे बताया करते थे वह व्यक्ति बलपूर्वक उस महिला को अपने साथ ले जाने की चेष्टा करने लगा। और वह बार-बार

उसके चंगुल से छूटकर दूर भागती थी। महिला के प्रति उसका यह बर्ताव बाबा को भी ठीक नहीं लगा। वे कहा करते थे कि मेरे मन में भी आया कि उस व्यक्ति से कहूँ कि जब वह जाना नहीं चाहती तो उसके साथ हठ क्यों कर रहे हो। किन्तु बाबा ने उसको ऐसा कहा नहीं क्योंकि उनके कहने पर वह व्यक्ति और वहाँ उपस्थित अन्य लोग भी कुछ दूसरा ही अर्थ लगा सकते थे। यह सोचकर बाबा उसे कुछ न कह सके।

अपंग महिला का गिरिराजजी की कन्दराओं में सदा के लिए प्रवेश

श्रीगिरिराज जी की तलहटी में हो रहे इस संघर्ष के कई लोग साक्षी थे। उन्हीं लोगों के समान अथवा उनसे भी अधिक प्रखर साक्षी थे स्वयं श्रीगिरिराज महाराज। वे उस महिला को अपनी शरण में ले चुके थे। फिर भला उसे क्रूर संसारी जनों के हाथों कैसे विवश होने देते।

ठीक समय पर श्रीगिरिराज धरण ने एक अद्‌भुत लीला रची अन्ततः उस व्यक्ति से अपने को छुड़वा कर वह महिला अपने परम आश्रय श्रीगिरिराज जी की ओर दौड़ी और दौड़कर श्रीगिरिराज के ऊपर चढ़ गई। सब लोगों के प्रत्यक्ष देखते हुए वह श्रीगिरिराज जी की शिलाओं के मध्य बनी एक कन्दरा में प्रविष्ट हो गई। इस दृश्य को तलहटी में खड़े सभी लोगों ने देखा। संसारीजनों की दृष्टि में उस महिला को अन्तिम बार वहीं कन्दरा में प्रवेश करते देखा। उसके पश्चात् वह कभी किसी को दिखाई नहीं दी। इस प्रकार उस महिला का अदृश्य हो जाना निश्चय ही एक विस्मयकारी घटना थी। श्रीगिरिराज जी की अनन्त महिमा में वह इस प्रकार सदा सर्वदा के लिए समा गई।

श्रीकृष्ण के इस परम धाम को वह पा गई जहाँ से फिर कभी इस निष्ठुर संसार में लौटना नहीं होता।

घटना क्रमांक १७

जलभराव से श्रीगिरिराजजी ने बाबा को बचाया

पूज्य श्रीराधावल्लभशरण जी महाराज की श्रीगिरिराज दण्डवती परिक्रमा से सम्बन्धित एक अन्य घटना इस प्रकार है उस समय वर्षा काल था। निरन्तर वर्षा से परिक्रमा मार्ग प्रायः अवरुद्ध था। बाबा कीचड़ से बचते हुए परिक्रमा लगा रहे थे। आज की तरह उस समय सड़कों का निर्माण नहीं हुआ था। परिक्रमा मार्ग कच्चा था और वह भी सब स्थानों पर समतल नहीं था। वर्षा के कारण जल भराव तो वहाँ था ही उसी समय एक अन्य कारण से और अधिक जल वहाँ आकर एकत्रित हो गया। कहा जाता है कि गोवर्धन से जल के अधिक वेग के कारण कोई बाँध टूट गया और उसका पानी गोवर्धन मार्ग में जहाँ-तहाँ भर गया। बाबा अपनी परिक्रमा लगा रहे थे उसी समय चारों तरफ पानी भरने लगा। पहले ही वर्षा के कारण जहाँ-तहाँ पानी भरा हुआ था ऊपर से बाँध टूट जाने से यह स्थिति और बिगड़ गई। यह देखकर बाबा ने दण्डवती रोक दी और सुरक्षित स्थान की तलाश करते हुए एक वृक्ष के नीचे आए। उस वृक्ष के आस-पास की भूमि कुछ ऊँची थी इसलिए बाबा ने वहाँ अपने को सुरक्षित अनुभव किया और वृक्ष को टेका लगा कर विश्राम मुद्रा में बैठ गए। वहीं निकट ही एक ब्रजवासी व्यक्ति था जिससे बाबा का कुछ परिचय हो गया था। वह ब्रजवासी बढ़ते हुए जल स्तर को देखकर श्रीगोवर्धन पर्वत के ऊपर चढ़ गया। वहीं से वह व्यक्ति ऊँची टेर लगा कर बाबा को कहने लगा कि आप भी श्रीगिरिराज

जी के ऊपर आ जाइए। उसका आशय यह था कि बढ़ते हुए जल के कारण आप नीचे सुरक्षित नहीं रह सकेंगे। चारों तरफ जल भरा हुआ है ऐसे में बस्ती की ओर जाना कठिन है। इधर जल भी निरन्तर बढ़ रहा है अत: कुछ समय पश्चात् जहाँ आप बैठे हैं वहाँ भी जल आ जाएगा और ऐसी स्थिति में स्वयं को बचाना कठिन हो जाएगा।

वह ब्रजवासी व्यक्ति बाबा की सुरक्षा को देखते हुए सामान्य दृष्टि से ठीक ही कह रहा था परन्तु जल से बचने के लिये गोवर्धन पर्वत पर चढ़ने का उसका सुझाव बाबा की दृष्टि में किसी प्रकार भी मानने योग्य नहीं था। ब्रज की उपासना में श्रीगिरिराज को श्रीकृष्ण स्वरूप ही माना जाता है। श्रीमद्भागवत में भी ऐसा ही वर्णन है। नन्दादिक ब्रजवासियों को श्रीगिरिराज पर विश्वास दिलाने के लिए श्रीकृष्ण एक विशाल रूप धारण कर गोवर्धन में से प्रकट हुए और अपना परिचय देते हुए उन्होंने कहा कि मैं ही गिरिराज हूँ। इस प्रकार गिरिराज श्रीकृष्ण स्वरूप ही सिद्ध होते हैं अतएव प्राय: अधिकांश ब्रजभक्त उन पर पैर नहीं रखते। इसलिए बाबा का जल से बचने के लिए गिरिराज पर चढ़ना संभव नहीं था। इधर जल भी निरन्तर बढ़ रहा था। बाबा दण्डवती से थके हुए तो थे ही वृक्ष को टेका देकर वे विश्राम मुद्रा में बैठे थे। थकावट के कारण उन्हें नींद आ गई। चारों ओर जल का भराव जो निरन्तर बढ़ रहा था उसके बीच में मामूली ऊँचाई वाले एक स्थल पर बैठे हुए पूज्य बाबा नींद के कारण अपने चारों तरफ आए हुए संकट से बेखबर थे। भले ही इससे बेखबर थे किन्तु जिन की पावन तलहटी में थे वे गिरि गोवर्धन समस्त विश्व प्रपंच के कण-कण और क्षण-क्षण की

खबर रखने वाले हैं। अपने भक्त को इस संकट में वे कैसे असहाय छोड़ देते। श्रीमद्भगवतगीता में श्रीभगवान् ने कहा है–

"अनन्याश्चिन्तयतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥"

जो अनन्य प्रेमी भक्त जन मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से मुझे भजते हैं उन निरन्तर मुझमें लगे हुए भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।

योग से तात्पर्य है भक्त के लिए आवश्यक वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति को उससे मिला लेना और क्षेम का अर्थ है भक्त की और उसके समस्त हितों की रक्षा। पूज्य बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी अपने चारों तरफ निरन्तर बढ़ रहे जल भराव से वेफ्रिक होकर पेड़ के नीचे निद्रामग्न हो गए। गीता में कहे अपने इसी आश्वासन के अनुसार श्रीगिरिराज धरण ने उनकी रक्षा के लिए स्वयं ही उपाय किया। उनका उपाय मनुष्य के प्रयास की तरह नहीं अपितु कृपा संकल्परूप होता है। भक्तजनरक्षण के इस कृपा संकल्प द्वारा वे सदा से भक्तों की रक्षा करते आए हैं और करते रहेंगे।

बाबा को कुछ पता नहीं चला किन्तु जब वो नींद से जगे तो उन्होंने अपने को उस पेड़ के नीचे न पाकर श्रीगिरिराज तलहटी में कुछ ऊँचाई पर पाया। जहाँ जल का कोई डर नहीं था। अपने ऊपर श्रीगिरिराज जी की ऐसी कृपा अनुभव कर बाबा बहुत देर तक भाव-विभोर अवस्था में वहीं बैठे रहे। श्रीराधावल्लभलाल की अनुपम भक्तवत्सलता देखकर वे भावसिन्धु में डूबने उतराने लगे। आगे चलकर कभी-कभी किसी को वे यह घटना सुनाया करते थे।

श्रीगिरिराज दण्डवती से सम्बन्धित पूज्य बाबा की और अधिक घटनाओं का पता नहीं चलता। इसका मुख्य कारण उनकी आत्मसंगोपनता है। अपने को प्रकाशित करने का संतों का प्रयास कभी नहीं होता। लोक दृष्टि से अपनी उपलब्धियों को छिपाकर संत जन निष्प्रपंच रहकर भगवत् प्रेम रस का आस्वादन करते हैं। बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी की भी यही प्रकृति थी। वे अपने विषय में बहुत कम बताया करते थे। प्रायः अपने पास आने वाले श्रद्धालुओं को वे भक्तमाल की गाथाएं को सुनाया करते थे। भक्त चरित्र से प्रेरणा लेकर लोग दृढ़तापूर्वक भजन मार्ग में अग्रसर हों यही उनका प्रयास रहता था।

घटना क्रमांक १८

पाँच फन वाले सर्प का दर्शन

दण्डवती परिक्रमा से सम्बन्धित एक बात और उल्लेखनीय है जिसे वे कभी-कभी कहा करते थे। उन्होंने दण्डवती के समय श्रीगिरिराज तलहटी में पाँच फन वाले सर्प को देखा था। यद्यपि इस प्रकार के सर्प बहुत दुर्लभ ही होते हैं? सर्पों के विषय में पुराण साहित्य में तो अनेक प्रकार के उल्लेख तो हैं ही, इसके साथ ही लोक जीवन में भी उनसे जुड़ी अनेक बातें कहीं सुनी जाती हैं। मणि वाले साँप, इच्छारूपधारी साँप, अनेक फणों वाले साँप इत्यादि अनेक बातें सुनने में आती हैं? निश्चितरूप से ये सभी प्रकार के साँप पृथ्वी तल पर हैं किन्तु इनका दिखाई देना दुर्लभ घटना है। शास्त्रों में सर्प को देवयोनि तुल्य माना गया है। श्रीभक्तमाल के छप्पय संख्या २९ में अष्टकुल नाग भक्तों का वर्णन है। जो अलौकिक श्रीभगवतधाम में द्वारपाल के रूप में स्थित हैं। ये सभी दिव्य नाग हैं और इनमें से प्रत्येक की लोकोत्तर

...त्य है जिसका पुराण साहित्य में उल्लेख आता है। कहने का आशय यह है कि सर्प एक देवयोनि है, सर्पों में कुछ सामान्य सर्प होते हैं और कुछ असामान्य अद्‌भुत सर्प होते हैं। इसी प्रकार के पाँच फन वाले एक अद्‌भुत सर्प का दर्शन बाबा को दण्डवती परिक्रमा में हुआ था।

बाबा की ३६५ वीं, दण्डवती परिपूर्ण

श्रीगिरिराज दण्डवती में बाबा को १६ वर्ष लगे, ३६५ वीं दण्डवती परिक्रमा लगाना बहुत अधिक परिश्रम का कार्य है। बाबा की लगन और उत्साह से बिना विराम लिए लगातार १६ वर्ष तक दण्डवती साधना करने पर यह परिक्रमा अनुष्ठान पूर्ण हुआ। पूर्व में भी कहा जा चुका है कि इसे प्रारम्भ करने की निश्चित समयावधि का पता नहीं चलता। वहाँ इसे अनुमान के आधार पर १९६८ निर्धारित किया गया है। इसके अनुसार १६ वर्ष पश्चात् अर्थात् ईस्वी सन् १९८४ में ३६५ दण्डौति परिक्रमा का यह महान अनुष्ठान पूर्ण हुआ। इस समय तक बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी ६० वर्ष के हो चुके थे।

१६ वर्ष की इस अविरल साधना के कारण अब लोग उन्हें दण्डवती बाबा कहने लगे। इस नए नाम के सामने उनके पुराने सभी सम्बोधन लुप्त जैसे हो गए। आज भी वृन्दावन में लोग उन्हें प्रायः दण्डवती बाबा के नाम से ही जानते हैं।

परिक्रमा की पूर्णता पर बाबा ने श्रीगिरिराज का पूजन किया और साधु संतों की तथा स्थानीय ब्राह्मणों की यथासाध्य सेवा की। भोजन प्रसाद एवं दान मान के द्वारा उन्होंने सभी का सत्कार किया। इसके पश्चात् वे गोवर्धन से बरसाना लौट आए। गहवर वन के एकान्त सुरम्य वातावरण में वे पूर्व के समान निवास करने लगे।

श्रीधाम बरसाना की परिक्रमा

कुछ दिन पश्चात् ही उनके अन्दर एक नई प्रेरणा जागी। उन्होंने विचार किया कि श्रीगिरिराज परिक्रमा के समान श्रीबरसाना धाम की भी ३६५ दण्डवती परिक्रमा लगानी चाहिए। इस विचार के आते ही वे एक नई स्फूर्ति और उत्साह से भर गए। वहाँ निवास कर रहे संतों से अनुमति लेकर तथा श्रीलाड़ली जी के मन्दिर में उनसे दण्डवती सफल होने की प्रार्थना कर बाबा ने परिक्रमा प्रारम्भ कर दी। यह परिक्रमा उन्होंने कहां से प्रारम्भ की इसकी कोई निश्चित जानकारी हमें नहीं प्राप्त हो सकी। यह भी पता नहीं चल पाया की श्रीबरसाना की दण्डवती में उन्हें कितना समय लगा। यहाँ का परिक्रमा मार्ग लगभग ३ किलोमीटर का माना जाता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उन्हें इसमें लगभग ढ़ाई वर्ष का समय लगा होता। बरसाना की दण्डवती से सम्बन्धित एक छोटी सी घटना बाबा सुनाया करते थे।

घटना क्रमांक १९

राधा नाम उच्चारण से बन्दरों का आतंक समाप्त

एक बार परिक्रमा में बाबा ऐसे स्थल पर थे जहाँ आसपास दूसरा व्यक्ति नहीं था, उस एकान्त स्थल में अचानकर चारों तरफ से कई बन्दर आ गए और उन्होंने बाबा को घेर लिया कोई उनके कंधे पर चढ़ गया, कोई सिर पर कोई उनकी पीठ पर लटक गया और कोई उनके कपड़े खींचने लगा। बन्दरों का यह हमला इनना तीव्र था कि बाबा सहसा कुछ समझ नहीं पाए। वहाँ आसपास कोई व्यक्ति भी नहीं था जिसे सहयोग के लिए बुलाते। तब बाबा ने अपने नेत्रबंद किए और उच्चस्वर से राधा राधा राधा नाम पुकारने लगे। इससे धीरे-धीरे एक-एक करके सभी बन्दर

छोड़कर चले गए। बन्दरों के इस हमले से बाबा को कोई ... नहीं हुई और वे पुनः दण्डवती में लग गए।

श्रीबरसाना धाम की ३६५ दण्डवती सम्पूर्ण होने पर ... बाबा ने वहाँ के स्थानीय ब्रजवासी तथा साधु-संतों को भोजन प्रसाद पवाया और दान-मान से सभी का सत्कार किया। बरसाना आए हुए बाबा को कई वर्ष हो गए थे। इस बीच परम सिद्ध संत श्रीनागा बाबा जी की आज्ञा से १६ वर्ष में श्रीगिरिराज जी की दण्डवती परिक्रमा पूर्ण हुई। उसके बाद लगभग ढ़ाई वर्ष श्रीबरसाना धाम की दण्डवती में लगे। अब बाबा ने शेष जीवन श्रीवृन्दावन धाम में रहने का विचार किया। जैसा कि हम पूर्व में भी कह चुके हैं कि श्रीदण्डवती बाबा के इन जीवन प्रसंगों का निश्चित सन् सम्वत् निर्धारित नहीं किया जा सकता। इनके विषय में कुछ सुनी हुई बातों को आधार बना कर अनुमान ही किया जा सकता है। पूर्व में श्रीगिरिराज दण्डवती सन् १९८४ में पूर्ण हुई यह अनुमान किया गया है। इसके पश्चात् बरसाना दण्डवती लगभग ढ़ाई वर्ष में सम्पन्न करके बाबा वृन्दावन आ गए। इस आधार पर उनका वृन्दावन में पुनः आगमन ई. सन् १९८७ के लगभग निश्चित होता है।

श्रीवृन्दावन में पूज्य दण्डवती बाबा परिक्रमा मार्ग में स्थित सोऽहम आश्रम के निकट निवास करने लगे। पिछले १८-१९ वर्षों से चल रही दण्डवती परिक्रमा बाबा के तन-मन प्राणों में रम गई थी। दण्डवती करने पर अन्य चर्चाओं और व्यवहार से मुक्त होकर पूर्ण एकान्त का लाभ प्राप्त हुआ। इसके साथ श्रीराधावल्लभलाल का स्मरण करते हुए एवम् श्रीराधा-सुधानिधि के श्लोकों का सस्वर पाठ करते हुए दण्डवती लगाना यह परम लाभ भी इस महान अनुष्ठान से प्राप्त होता रहा। इस

प्रकार बाबा ने दण्डवती को शरीर और मन से की जाने वाली एक भक्ति साधना के रूप में स्वीकार किया और यह साधना उनके व्यक्तित्व के अनुकूल बनकर उनके लिए सर्वथा सहज हो गई थी। जैसा कि पूर्व में भी कहा जा चुका है कि दण्डवती परिक्रमा अर्चन और वन्दन भक्ति का एकत्र स्वरूप है। बाबा इसे इष्ट के स्मरणपूर्वक तथा श्रीराधासुधानिधि के श्लोकों को गाते हुए करते थे अतः इसमें स्मरण और कीर्तन भक्ति का भी सरस समावेश हो गया। इस प्रकार नवधाभक्ति के चार अंग स्मरण, कीर्तन, अर्चन और वन्दन का सम्मिलित स्वरूप बाबा द्वारा की गई दण्डवती परिक्रमा में विराजमान था। नवधाभक्ति का फल प्रेम लक्षणा भक्ति माना गया है। अपनी इसी भक्ति साधना के फलस्वरूप पूज्य बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी अपने इष्ट निभृत निकुंज विलासी श्रीराधावल्लभलाल की प्रेमलक्षणा भक्ति में तल्लीन रहा करते थे।

श्रीधाम वृन्दावन की परिक्रमा का भी श्रीगणेश

श्रीवृन्दावन आने के पश्चात् बाबा के मन में श्रीधाम वृन्दावन की भी ३६५ दण्डवती परिक्रमा लगाने का संकल्प उदित हुआ। तदनुसार उन्होंने ठाकुर श्रीराधावल्लभलाल के चरण कमलों में अपना प्रणाम निवेदित कर दण्डवती का शुभारम्भ किया। यह परिक्रमा उन्होंने सोऽहम आश्रम से प्रारम्भ की। इस अवधि में आयु क्रम से वे वृद्धावस्था में भी प्रवेश कर चुके थे। किन्तु उनके शरीर और मन में उत्साह की कोई कमी नहीं थी। दण्डवती परिक्रमा के माध्यम से अपने इष्ट का आराधन करना उनका एक प्रकार से स्वभाव ही बन गया था। श्रीवृन्दावनधाम की परिक्रमा बाबा ने सन् १९८७-८८ में प्रारम्भ की थी ऐसा

अनुमान है। उस समय बाबा की आयु ६३-६४ वर्ष थी। इस परिक्रमा से सम्बन्धित कोई विशेष जानकारी हमें उपलब्ध नहीं है। केवल इतना ही ज्ञात होता है कि श्रीवृन्दावन की दण्डवती वे पूरा नहीं कर पाए थे। सोऽहम आश्रम से प्रारम्भ कर अट्टल्ला चुंगी तक वे परिक्रमा कर चुके थे तभी उनको हृदय रोग ने घेर लिया। इस घातक रोग के कारण वे आगे की परिक्रमा जो ५००-६०० मीटर ही शेष रही थी पूरी नहीं कर पाए।

श्रीधाम का परिक्रमा पथ लगभग १२ किलोमीटर माना जाता है। इससे अनुमान होता है कि बाबा को सोऽहम आश्रम से लेकर अट्टल्ला तक ३६५ दण्डवती लगाने में ७-८ साल का समय लगा होगा। इस अवधि में उनका निवास कहाँ-कहाँ रहा इसकी सुनिश्चित जानकारी तो नहीं मिलती किन्तु यह निश्चित है कि सोऽहम आश्रम के निकट और रेल की पटरी के पास काठिया बाबा की समधि स्थल, ये दो उनके निवास स्थल रहे हैं। इन गणनाओं के अनुसार श्रीधाम की दण्डवती १९९४-९५ में पूरी हुई होगी।

इसके कुछ समय बाद पूज्य बाबा ने एक व्यवस्थित और स्थायी निवास हेतु सुखदा भक्ति आश्रम (मोतीझील) में एक कक्ष क्रय किया। इसकी शर्त यह थी कि बाबा इसमें आजीवन निवास कर सकेंगे और इसके बाद पुनः इस कक्ष पर आश्रम का ही अधिकार होगा। बाबा इस शर्त से पूर्ण सन्तुष्ट थे। विशाल आश्रम बनवाना उसमें अनेक गतिविधियों को प्रारम्भ करना और शिष्य परम्परा चलाने के लिए अपनी गद्दी स्थापित करना ये सब उनके लक्ष्य कभी नहीं रहे। वे चाहते तो बहुत पहले ही अनेक आश्रमों का निर्माण कर लेते किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। गृहत्याग के समय जो वैराग्य और असंगता उनमें थी वह

आजीवन बनी रही। सबसे वीतराग होकर निरन्तर नाम वाणी में लगे रहना यही उनका सिद्धान्त था जिसका उन्होंने दृढ़ता से पालन किया। सुखदा भक्ति आश्रम में कमरा खरीद कर वहीं निवास की व्यवस्था इसलिए बनाई गई कि अब वे वृद्ध हो चले थे तथा उन्हें हृदय रोग भी हो चुका था। इसलिए स्वास्थ्य और आयु को देखते हुए एक स्थायी और सुविधायुक्त आवास की आवश्यकता थी।

वृन्दावन दण्डवती के पश्चात् पूज्य बाबा ने अपनी आयु और स्वास्थ्य के अनुसार अपनी दैनिकचर्या का निर्धारित किया। सुखदा भक्ति आश्रम में उनको प्राय: सभी सुविधाएं उपलब्ध थीं। हृदय रोग होने के पश्चात् डॉक्टर द्वारा जिस प्रकार का आहार और विश्राम से सम्बन्धित निर्देश होता है उसका भी वहाँ ठीक से निर्वाह होने लगा। कई वर्षों तक निरन्तर दण्डवती परिक्रमा लगाने से उनके सम्पर्क में अनेक श्रद्धालुगण आए। ये लोग भी समय-समय पर बाबा के दर्शनों के लिए सुखदा भक्ति आश्रम में आया करते थे। इनमें से अनेकों ने पूज्य बाबा का शिष्यत्व ग्रहण कर तथा उनके द्वारा बताए गए भजन मार्ग का अनुसरण कर अपने को कृतार्थ किया। दण्डवती बाबा अपने से मिलने आने वाले श्रद्धालुओं को प्राय: श्रीभक्तमाल ग्रन्थ की भक्त कथाएं सुनाया करते थे। भक्तों के जीवन चरित्रों का पठन-श्रवण करने से नए साधकों को जिस प्रकार लाभ होता देखा जाता है वैसा अन्य साधनों से नहीं हो पाता। भक्तों की प्रेरणादायी कथाएं भजन मार्ग पर चलने के लिए उत्साहित करती हैं तथा साधक में विवेक-वैराग्य को बढ़ाती हैं। भक्तमाल की कथाएं भीतरे छिपे हुए अहंकार को नष्ट कर क्रमश: दैन्यता और सहिष्णुता आदि सद्गुणों का विकास करती हैं। ये सभी लाभ

एक साथ साधक को प्राप्त होते हैं। जो उसके परमार्थ पथ को ...र्थक और सुगम बनाते हैं इसलिए पूज्य श्रीराधावल्लभशरण ... श्रद्धालुओं को प्राय: भक्तमाल की कथाएं ही सुनाया करते थे। वंशी अवतार श्रीहित हरिवंश महाप्रभु जी की श्रीराधासुधानिधि आदि रचनाओं एवम् श्रीसेवक वाणी आदि वाणी ग्रन्थों के साथ बाबा की भक्तमाल ग्रन्थ पर भी पूर्ण आस्था थी।

श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के उपासना मार्ग में नाम और वाणी का प्रमुख महत्व है। श्रीहरिवंश महाप्रभु द्वारा प्रगटित रस सिद्धान्त का विशद व्याख्यान करने वाले उनके शिष्य श्रीदामोदर दास सेवक जी ने अपने ग्रन्थ में नाम और वाणी को ही भजन का प्रधान अवलम्ब माना है। उनके अनुसार श्रीहरिवंश महाप्रभु का नाम और उनकी वाणी का आश्रय लेने वाले के निकट श्रीश्यामा श्याम सदैव विद्यमान रहते हैं। उन्होंने कहा है–

नाम वाणी जहाँ श्याम श्यामा तहाँ
नाम वाणी निकट श्याम श्यामा प्रकट।

श्रीदण्डवती बाबा सेवक वाणी के इन्हीं उपासना सूत्रों का अनुसरण करते हुए निरन्तर नाम वाणी में तल्लीन रहा करते थे। श्रीराधासुधानिधि ग्रन्थ का सस्वर गायन करना उनके दैनिक क्रम में शामिल था। उनका कण्ठ अत्यन्त मधुर था। मधुर स्वर से इस ग्रन्थ के एक-एक श्लोक का वे रसास्वादन करते हुए गायन किया करते थे। कुटिया में ही नहीं मार्ग में चलते-फिरते भी उनका गायन जारी रहता था। श्रीराधावल्लभ मन्दिर में अपने परमाराध्य के समक्ष जब वे सुधानिधि का गायन करते तो ऐसा प्रतीत होता कि उसका आस्वादन स्वयं श्रीराधावल्लभलाल कर रहे हों। तल्लनीतापूर्वक वे अपने इष्ट को सुधानिधि जी सुनाया करते थे। दूसरी ओर भावग्राही प्रभु उनका स्वर गान सुन कर

उसी प्रकार आनन्दित होते थे। यह दृश्य देखकर तथा श्लोकों का गायन सुनकर मन्दिर में आए हुए दर्शनार्थीगण भी आह्लादित होते थे।

वाणी के साथ बाबा की नाम-निष्ठा भी अत्यन्त उत्कृष्ट थी। नाम को वे लौकिक तथा पारलौकिक सभी बाधाओं का अमोघ उपाय मानते थे। नाम के द्वारा उन्होंने किस प्रकार एक लड़की की प्रेत बाधा को दूर किया था, इस घटना का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। श्रीहरिवंश नाम में बाबा की पूर्ण आस्था थी। वे समय कभी व्यर्थ न गँवाते हुए निरन्तर श्रीहरिवंश महाप्रभु की नाम, वाणी का अनुशीलन करते रहते थे। श्रीसेवक जी ने अपनी वाणी के अन्त में एक दोहा लिखा है जो संक्षेप में उनके समग्र अन्तर्शय को प्रकट करता है–

सेवक शरण सदा रहे अनत नहीं विश्राम।
वाणी श्रीहरिवंश की कै हरिवंशहि नाम॥

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी की यही भजन पद्धति थी जिसका उल्लेख इस दोहे में किया गया है। वे निरन्तर नाम-वाणी के रसास्वादन में तत्परतापूर्वक लगे रहते थे। नाम-वाणी ही उनका सर्वस्व था।

आगे के पृष्ठों में हम बाबा के कुछ स्फुट प्रसंगों का वर्णन करेंगे जिनसे उनके जीवन चरित्र और उनकी अन्तःस्थिति को व्यापक रूप से समझा जा सकता है।

श्रीसद्गुरुदेव की कृपा से पुत्र और पौत्र की प्राप्ति

हमारी जानकारी के अनुसार गृहत्याग के पश्चात् बाबा किसी प्रसंग वशात् दो या तीन बार जम्भू की ओर गए थे। बाबा के पूर्वाश्रम के एक छोटे भाई थे, उन्हें चार पुत्रियाँ थीं किन्तु पुत्र नहीं था। इस बात को लेकर उनकी पत्नी अर्थात् बाबा की भाभी परेशान रहा करती थीं। एक बार जब बाबा जम्भू गए तो उनकी भाभी ने आर्त होकर अपना दुःख उनके सामने व्यक्त किया। बाबा का हृदय कोमल था वे दूसरे का दुःख श्रवण कर शीघ्र ही द्रवित चित्त हो जाते थे। भाभी की आर्त प्रार्थना सुनकर उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया कि अगले ही वर्ष तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी। उनके अमोघ आशीर्वाद से एक वर्ष बाद उन्होंने पुत्र को जन्म दिया। बाबा के आशीर्वाद से उत्पन्न यह पुत्र सदाचार और धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न है।

बाबा के आशीर्वाद से प्राप्त बालक के विवाह योग्य होने पर उसने विवाह में बाबा का आने का अतिशय आग्रह किया इसलिए दुबारा फिर बाबा को विवाह में भी जाना हुआ। विवाह के पश्चात् पूज्य बाबा की छोटी भाभी अर्थात् वर की माँ ने उनसे प्रार्थना की मेरे बेटे की जन्म कुण्डली में केवल कन्या योग है पुत्र की प्राप्ति नहीं है। बाबा ने आशीर्वाद स्वरूप इतना ही कहा आप चिन्ता न करें सब ठीक होगा। समयानुसार उनके घर में दो पुत्र रत्न हुए। इस प्रकार बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी ने अनेक प्रसंगों में अपने आशीर्वाद से प्रारब्ध के नियमों में परिवर्तन करते हुए अपने शरणागत भक्तों को अभिष्ट पूरा किया।

शरणागत के कष्ट निवारण में न देरी और न दूरी

बाबा की एक शिष्या अपने पति के साथ हरिद्वार महाकुम्भ में गई। वहाँ लाखों की भीड़ थी। जैसा कि कुम्भ पर्वों में होता है इनकी गाड़ी को भी १५-२० कि.मी. पहले ही रोक दिया गया। इतना अधिक पैदल चलने की स्थिति में ये दम्पत्ति नहीं थे। तभी एक व्यक्ति ने उन्हें परामर्श दिया कि आप लोग

गाड़ी लेकर इस पतली सड़क से निकल जाइए, इस रास्ते में आपको कोई नहीं रोकेगा। उसके कहे अनुसार ये दोनों गाड़ी लेकर निकल पड़े। अभी आधे रास्ते पर ही ये पहुँचे थे कि एक विकट समस्या ने इन्हें घेर लिया। उस पतली सड़क के दोनों ओर पुलिस ने व्यवस्था कायम करने के लिए कई हजार लोगों का जत्था रोक रखा था। जैसे ही इनकी गाड़ी वहाँ पहुँची उसी समय पुलिस ने भी उस जत्थे के अवरोध को हटा दिए। अब हजारों लोगों की भीड़ उस कम चौड़ी सड़क पर आ चुकी थी और उसके बीच में चारों तरफ से इनकी गाड़ी घिर गई। ऐसे में गाड़ी आगे चला पाना तो संभव था ही नहीं, अपितु गाड़ी को एक जगह खड़ा रखना भी मुश्किल था। भीड़ का दबाव बहुत अधिक इसके कारण कुछ लोग तो गाड़ी के ऊपर भी चढ़ गए। बहुत से लोग रोषवशात् गाड़ी को हाथों से पीट रहे थे और कोई-कोई डंडे भी बरसा रहे थे। भीड़ के बीच में मात्र एक गाड़ी की उपस्थिति उनके रोष का कारण बन रही थी। बाबा की उस शिष्या ने जो अपना अनुभव हमें लिखकर भेजा है उसमें उन्होंने बताया है कि हमलोगों की स्थिति ऐसी थी जैसे मधुमक्खी के छत्ते से निकली हुई असंख्य मक्खियों के बीच में कोई घिर जाए। यह परिस्थिति इतनी भयावह थी कि उन्होंने आगे लिखा है—ऐसा लग रहा था कि लोगों की भीड़ हमें मार ही देगी, हम दोनों जान बचाने की कोशिश कर रहे थे।

संकट के ऐसे अवसर पर जबकि बाहर से किसी का सहयोग प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं होती है, व्यक्ति आर्त भाव से अपने इष्ट और सद्गुरु को ही पुकारता है। उस महिला ने भी और कोई उपाय न देखकर गाड़ी के भीतर ही अपने दोनों हाथ उठा कर अपने गुरुदेव पूज्य बाबा को तथा श्रीराधावल्ल...

...जी को आर्त भाव से पुकारा—हे गुरुदेव! हे वृन्दावन बिहारी श्रीराधावल्लभलाल! हम दोनों असहाय होकर इस संकट में घिरे हुए हैं चारों तरफ से गुस्से से भरी हुई भीड़ का हमला है ऐसे में एक-एक क्षण बहुत कठिनाई से बीत रहा है। अब यहाँ आपके अलावा हमारा कोई रक्षक नहीं है, कृपा करके शीघ्र ही हमें इस संकट से उबारिए।

उसकी यह आर्त पुकार उसी क्षण श्रीधाम वृन्दावन पहुँच गई जहाँ उसके इष्ट और गुरु विराजमान थे। अब अपने शरणागत जन का कष्ट निवारण करने में न देरी थी न दूरी थी। देरी और दूरी की ये सीमाएं प्राकृत जगत में होती हैं। इष्ट और गुरु के कृपा राज्य में इनका कोई अस्तित्व नहीं है। अपने इष्ट और गुरु को टेर लगाने के अगले ही क्षण उस महिला ने देखा कि उनकी गाड़ी के इंजन के आगे एक १४-१५ साल का लड़का दोनों बाहें फैलाए खड़ा था। उसका रूप रंग बहुत सुन्दर था, उसके कंधे पर एक पटुका था और हाथ में एक छोटी लकड़ी थी। उस लड़के ने भीड़ को गाड़ी के आगे से हटा दिया। अब वह अपने दोनों हाथ फैला कर गाड़ी के आगे चल रहा था। आश्चर्य यह था कि हजारों लोगों की यह सघन भीड़ उसके प्रभाव से सामने से हटती चली जा रही थी। इस प्रकार मार्ग बनाता हुआ दोनों हाथ फैलाए हुए वो आगे बढ़ रहा था और उसके पीछे गाड़ी चल रही थी। आगे चलकर एक मोड़ आया वहाँ पहुँच कर गाड़ी में बैठे दम्पत्ति को यह अनुभव हुआ कि अब हम भीड़ वाले क्षेत्र से निकल आए है। दोनों ने चैन की सांस ली। उस महिला के मन में आया कि इस किशोर बालक को पुरस्कार स्वरूप कुछ रुपये देने चाहिए। उसने शीघ्र ही पर्स खोला और उसमें से रुपये निकालने लगी। किन्तु कार के आगे चलने वाला वह लड़का

अदृश्य हो चुका था। उस महिला की दृष्टि उसे इधर-उधर खोजती रही पर वह दिखाई नहीं दिया। विपत्ति का निवारण कर वह जहाँ से आया था वहीं चला गया।

पग पग पर सद्गुरु कृपा

बाबा श्रीराधावल्लभशरण महाराज की इस शिष्या की एक अन्य घटना भी है, जिससे पता चलता है कि समर्थ सद्गुरु देव किस प्रकार पग-पग पर अपने शरणागत जन की सहायता करते हैं। इन महिला के पतिदेव किसी ऐसी नौकरी में थे जिस में प्राय: तीन चार साल बाद तबादला होता ही रहता था। इसलिए उन्हें हर बार घर का सारा सामान ट्रक में लदवा कर नई जगह ले जाना पड़ता था। एक बार तबादला होने पर इसी प्रकार सामान ट्रक में इधर से उधर ले जाया जा रहा था। उस महिला ने अपने बैंक लॉकर से सोने के आभूषण और रुपये निकाल कर उन्हें भी ट्रक में रखवा दिया। नए स्थान पर पहुँच कर जब ट्रक का सामान उतरवा लिया गया तो वहाँ उस महिला को आभूषण और कैश वाला बैग नहीं मिला। उसने सोचा कि शायद मैंने उस बैग को अलमारी में रख दिया था, अलमारी को खोलकर उसने और उसके परिवारीजनों ने तीन चार बार अच्छी तरह ढूँढ़ा किन्तु वहाँ भी वो बैग नहीं मिला ऐसी स्थिति में घबराहट होना स्वाभाविक है। मेरा सब कुछ लुट गया यह कह कर वह महिला रोने लगी। उसके पतिदेव उसे धीरज बंधा रहे थे किन्तु इतनी बड़ी हानि की आशंका होने पर वह अपना धीरज खो बैठी।

कुछ देर पश्चात् वह अपने दोनों हाथ उठाकर गुरुदेव पूज्य बाबा को रो-रोकर पुकारने लगी। विपत्ति में और कोई अवलम्बन न होने पर अब केवल गुरुदेव का ही आश्रय था।

बहुमूल्य वस्तुओं के खो जाने पर लोग अधीरतापूर्वक उन्हें पुनः वहाँ खोजने लगते हैं जहाँ वे उन्हें पहले भी ढूँढ़ चुके हैं। इसी प्रकार उस महिला और उसके परिवारीजनों ने एक बार फिर उस अलमारी को खोला जिसमें तीन-चार बार पहले भी उस बैग को ढूँढ़ चुके थे। किन्तु अबकी बार अलमारी खोलने पर जो दृश्य सामने आया उससे इनकी आँखें फटी सी रह गईं। उन्हें अलमारी में एक बैग पड़ा मिला जिससे खोए हुए सारे आभूषण और रुपये थे। यह बैग उसमें कैसे आया इसका रहस्य कोई जान न सका। आश्चर्य की बात यह थी कि उस बैग पर लिखा हुआ था **'गिरधर'**।

गुरुदेव की कृपा निरन्तर शिष्यों पर रहती है

एक बार उनके पतिदेव का तबादला किसी नई जगह हुआ यह बात ई. सन् २००० की है। उन दिनों उनके पास मोबाइल या लैंड लाइन फोन की सुविधा नहीं थी, किसी से बात करने के लिए पी.सी.ओ. जाना पड़ता था। पूज्य बाबा उस अवधि में सुखदा भक्ति आश्रम (मोती झील) में रहते थे। वह महिला प्राय: सप्ताह-दस दिन में पी.सी.ओ. जाकर बाबा से बात कर लेती थी। एक बार किन्हीं कारणों वशात् वह एक महीने तक गुरुदेव से बात नहीं कर सकी। उनका स्मरण तो वह करती रहती पर पी.सी.ओ. जाकर बात करने का सुयोग नहीं बना। एक दिन दोपहर में उसका मन भर आया। वह पूज्य बाबा को स्मण कर बहुत देर तक रोती रही। भावपूर्ण हृदय से गुरुदेव का चिन्तन करते हुए वह ध्यानावस्था में वृन्दावन पहुँच गई, इस प्रकार वह ध्यान में ही गुरुदेव के निवास पर पहुँच कर उनका मानसिक दर्शन करती रही।

उसी दिन संध्या को उसने पी.सी.ओ. जाकर पूज्य बाबा को फोन लगाया। फोन उठाते ही दण्डवती बाबा ने ये दो-तीन वाक्य कहे—"अरी लाली दोपहर को क्यों रो रही थी? मुझे सोने नहीं दे रही थी, बार-बार मेरी कुटिया में क्यों आ रही थी?"

बाबा के ये वाक्य निश्चय ही चौंकाने वाले थे क्योंकि उस महिला ने तो अभी तक अपनी मनःस्थिति के बारे में कुछ कहा ही नहीं था फिर बिना कहे ही बाबा इसे कैसे जान गए? बाबा के मुख से ये वाक्य सुनकर वो महिला स्तब्ध सी रह गई। बाद में जब उसका वृन्दावन आना हुआ तो उसने बाबा से पूछा कि मेरी मनोदशा के बारे में आपको कैसे पता चला था? बाबा बोले—देख लाली जब भी कोई मुझे दिल से याद करता है या मेरी बात करता है तो मुझे सब पता चल जाता है।

चरणामृत और ब्रजरज से दुष्टात्मा का उद्धार

उक्त महिला के पति का तबादला एक बार मेरठ में हुआ। जो घर इन्होंने किराए पर लिया वह चार-पाँच सालों से बन्द पड़ा था उस दुमंजिला मकान में कोई नहीं रहता था। पूज्य बाबा की यह शिष्या अपने परिवार के साथ ऊपर वाली मंजिल में रहने आईं। इनका पहला दिन तो वहाँ ठीक निकल गया दूसरे दिन इनके पतिदेव को कार्यवशात् कहीं बाहर रुकना पड़ा। अतः उस दुमंजिला मकान में यह महिला अकेली ही थी। रात्रि में जब वह सोने लगीं तो उसे कुछ घबराहट सी हुई और उसे ऐसा लगा जैसे उनके आस पास कोई अदृश्य प्राणी है। जब इन्हें नींद आई तो कुछ भयानक सी वस्तुएं इन्हें डराने लगीं कभी लगता जैसे बिस्तर को कोई खींच रहा है अथवा कोई डरावनी आवाज निकाल रहा है। इससे वह डर गईं और उसे पसीना आने लगा अब वह उठकर बैठ गई और पूज्य

बाबा का स्मरण करते हुए उनके द्वारा दिए गुरु मन्त्र का जप करने लगीं, इससे उन्हें कुछ राहत मिली और फिर नींद आ गई। रात्रि के इस अनुभव से वे समझ गईं कि इस भवन में किसी दुष्टात्मा का निवास अवश्य है।

अगले दिन प्रातः स्नान-पूजा के पश्चात् उस महिला ने अपने पास संग्रहीत ब्रज के अनेक कुण्डों का जल, वृन्दावन के अनेक स्थानों की रज तथा चरणामृत इन सबको एक लोटे में डाला अब वे उच्चस्वर से अपने गुरुदेव व अपने इष्ट श्रीराधावल्लभलाल को स्मरण कर लोटे के उस जल को घर में सब ओर छिड़कने लगीं। इस प्रकार ऊपरी वाली मंजिल जिसे इन्होंने किराए पर लिया था उसमें जल के छींटे मारकर वे नीचे वाली मंजिल में जल छिड़कने के विचार से लोहे के जाल पर आईं। निचली मंजिल बन्द थी और उसमें केवल ऊपर वाली मंजिल में स्थित लोहे के जाल से ही जल छिड़का जा सकता था। जैसे ही उन्होंने जाल के बीच से निचली मंजिल में जल छिड़का कि अचानक उनका शरीर किसी अपूर्व शक्ति से छः-आठ इंच ऊपर की ओर उछलने लगा। इस घटना से उन्हें रोमांच हो गया। इष्ट और गुरु का नामोच्चारण तो वो कर ही रहीं थीं, नाम के प्रभाव से उसमें अद्‌भुत जोश का संचार हुआ तो और वे सर्वथा भयमुक्त हो गईं। इसके बाद उन्हें उस मकान में कभी कोई अस्वभाविकता नहीं लगी और वे उसमें निर्भय होकर रहने लगीं।

पूज्य बाबा की उन शिष्या ने अंत में लिखा है कि यह सब ब्रजरज एवम् चरणामृत की ही महिमा है, जो गुरुदेव की कृपा से यथामति हृदयंगम हुई।

उक्त घटना से यह स्पष्ट होता है कि कई वर्षों से बन्द पड़े उस मकान की निचली मंजिल में किसी दुष्टात्मा का निवास

था जो श्रीभगवन्नाम, ब्रजरज और चरणामृत के प्रभाव से सद्गति को प्राप्त हो गई। पूज्य बाबा अपने सभी शिष्यों को यही निष्ठ प्रदान किया करते थे। श्रीभगवन्नाम के प्रभाव से उन्होंने किस प्रकार ग्रामवासी एक महिला को प्रेत-बाधा से मुक्त किया था इस घटना का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

घटना क्रमांक २०

वकील के हस्ताक्षर ठाकुर जी ने किए

एक बार बाबा के एक शिष्य उनसे मिलने आए। वे पेशे से वकील थे। केवल एक दिन बाबा के निकट रहकर उन्होंने जाने के लिए अनुमति माँगी। बाबा ने उनसे कहा तुम बहुत दिन बाद आए हो अब जाने की जल्दी न करो कुछ दिन यहाँ रुक जाओ। वकील साहब ने कहा महाराज जी मुझे जाना ही पड़ेगा क्योंकि किसी कार्यालय से मुझे पच्चीस हजार रुपये प्राप्त होने वाले हैं। इसके लिए एक निश्चित समय सीमा के भीतर मुझे वहाँ पहुँच कर हस्ताक्षर करने पड़ेंगे। तभी वे रुपया मुझे प्राप्त हो सकेंगे। बाबा ने उसकी बात सुनकर कहा अरे तुम हस्ताक्षर की चिन्ता मत करो वह तो हो जाएगे। तुम तीन-चार दिन यहाँ रुककर श्रीवृन्दावन का दर्शन लाभ लो।

श्रीगुरुदेव जी की आज्ञा वह टाल न सका। यह घटना कई वर्ष पुरानी है उस समय पच्चीस हजार रुपये का आज की तुलना में कहीं अधिक महत्व था। समयावधि के भीतर हस्ताक्षर न करने से रुपया मिलने की संभावना नहीं थी परन्तु उसने यह सोचकर अपने मन को समझा लिया जो होना होगा हो जाएगा किन्तु गुरुदेव की इच्छा के विरुद्ध यहाँ से जाना उचित नहीं है। इस प्रकार वह व्यक्ति जो केवल एक दिन के लिए ही यहाँ आया था, चार दिन तक रुका रहा।

चार दिन पश्चात् जब वह अपने नगर वापस लौटा तो यह सोचकर कि संभवतः प्रयास करने से कोई बात बन जाए, वह (वकील) उस कार्यालय में गया जहाँ से उसे रुपये प्राप्त होने वाले थे। वहाँ जैसे ही वह सम्बन्धित अधिकारी के समक्ष आया तो उस अधिकारी ने बिना कुछ पूछे पच्चीस हजार रुपये गिनकर उसे थमा दिए। यह उस वकील के लिए आश्चर्य का विषय था कि बिना हस्ताक्षर किए मुझे रुपये कैसे दे दिए गए। उसने अधिकारी से कहा कि क्षमा कीजिए मैं समय पर हस्ताक्षर करने के लिए नहीं आ सका। अधिकारी ने कहा यह आप कैसी बात कर रहे हो आपने तो ठीक समय पर आकर यहाँ हस्ताक्षर कर दिए थे। वकील ने अधिकारी से कहा कि यह कैसे हो सकता है? मैं तो वृन्दावन से आज ही लौटा हूँ। अधिकारी ने उसे कुछ डाँटते हुए कहा आपको स्मरण है नहीं और आप व्यर्थ की बातें कहकर हमारा समय बरबाद कर रहे हैं। इस पर वह वकील क्या कहता वह चुपचाप अधिकारी के कक्ष से बाहर आ गया। उसे यह सारा प्रसंग एक पहेली की तरह दिखाई दिया जिसका कोई समाधान उसे सूझ नहीं रहा था। उत्सुकतावशात् उसने विचार किया कि क्यों न रजिस्टर में जाकर मैं अपने हस्ताक्षर देख लूँ। यह सोचकर वह उस कक्ष में गया जहाँ रजिस्टर उपलब्ध था। वहाँ पहुँचकर जो उसने रजिस्टर देखा तो वह आश्चर्य चकित रह गया। अधिकारी का कहना सही था। उस दिनांक को उसके हस्ताक्षर रजिस्टर में किए हुए थे। इसके बाद वह वकील वहाँ से घर की ओर चल पड़ा किन्तु मार्ग में यही सोचता रहा कि उस दिन तो मैं वृन्दावन में था फिर मेरे यह हस्ताक्षर किसने किए?

उस रात्रि में जब वह सोया तो उसने स्वप्न में एक अद्भुत दृश्य देखा। उसने देखा कि स्वयं श्रीकृष्ण उस कार्यालय

में आए हैं और रजिस्टर में मेरे हस्ताक्षर कर रहे हैं। यह स्वप्न दर्शन करके जब वह जगा, तो वह विस्मित होने के साथ भाव विह्वल हो गया। वह अपने गुरुदेव पूज्य बाबा का स्मरण करने लगा जिनकी कृपा से उसे स्वप्न में श्रीकृष्ण के दर्शन हुए और इस समग्र घटना के रूप में वह श्रीठाकुर जी की भक्तवत्सलता तथा करुणा कृपा का अनुभव कर सका। वस्तुतः उसे रोकते हुए "बाबा ने जो ये कहा था-कि हस्ताक्षर की चिन्ता मत करो वे तो हो जाएगे।" बाबा के इसी वाक्य को उनके आराध्य श्रीराधा-वल्लभलाल ने इस घटना के द्वारा सत्य कर दिया। श्रीभक्तमाल ग्रन्थ में कहा गया है श्रीठाकुर जी का यह स्वभाव है कि वे हर स्थिति में अपने भक्त की वाणी को सदैव सत्य ही करते हैं–

चार युगन में चतुर्भुज भक्त गिरा साँची करन॥

बारह साल की व्याकुलता के परिणाम स्वरूप संत प्रियाशरणजी का प्रत्यक्ष दर्शन

श्रीधाम बरसाना की ही एक और महत्वपूर्ण घटना है। हिमालय के सिद्ध योगियों ने बाबा को ब्रज के अन्तर्गत '**ब**' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले किसी स्थल पर एक महापुरुष की प्राप्ति होने का संकेत दिया था, यह प्रसंग पूर्व में लिखा जा चुका है। इसके अनुसार मथुरा के निकट बाद नामक गाँव में जो प्रेम रसावतार श्रीहित हरिवंश महाप्रभु की प्राकट्य स्थली है वहाँ किस प्रकार रस सिद्ध संत श्रीप्रियाशरण जी महाराज से बाबा का मिलन हुआ यह प्रसंग भी कहा जा चुका है। श्रीप्रियाशरण जी महाराज कब तक धरा धाम पर विराजमान थे यह हमें ज्ञात नहीं हो सका। उनसे अन्तर्हित होने से बाबा को मार्मिक वेदना हुई। उन्हें वे अपने सद्गुरु देव के रूप में देखते थे। उनके द्वारा प्रदत्त

शिक्षाओं को बाबा ने दृढ़ता से हृदयंगम किया और आजीवन उनके बताए मार्ग पर चलते रहे।

संत श्रीप्रियाशरण जी के अन्तर्धान होने के लगभग बारह वर्ष बाद की यह बात है। उस समय बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी बरसाना में निवास कर रहे थे। वैसे तो वे सद्गुरुदेव श्रीप्रियाशरण जी महाराज का नित्य स्मरण किया ही करते थे किन्तु इधर कुछ दिनों से बाबा उनका बार-बार भावपूर्ण स्मरण कर विकल रहने लगे। बारह वर्ष के अन्तराल के बाद बाबा को एक बार फिर सद्गुरुदेव के वियोग ने व्याकुल बना दिया। यह व्याकुलता क्रमशः बढ़ती ही चली गई। उन्हें स्मरण कर बाबा रोया करते थे और धीरे-धीरे उनकी मनःस्थिति ऐसी बनती चली गई कि उन्हें अपना जीवन भी भार-स्वरूप प्रतीत होने लगा। अन्ततः उन्होंने विकल होकर भोजन करना बन्द कर दिया। उनका निश्चय यह था कि सद्गुरुदेव का पावन स्मरण करते हुए मैं इस देह को त्यागकर उनसे ही जा मिलूँ, जहाँ वे श्रीश्यामाश्याम की नित्यलीला में सहचरी के रूप में विद्यमान हैं।

आहार का त्याग किए उन्हें कितने दिन बीते? यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। संत श्रीप्रियाशरणजी के निकुंज गमन के बारह वर्ष बाद भी उनकी स्मृति में इतना विरहाकुल होना बाबा का उनके प्रति गहन गम्भीर भाव का सूचक है। इससे यह भी अनुमान होता है कि महाराज जी के निकुंज गमन के तत्काल बाद उन्हें कितनी विरह व्यथा हुई होगी? आहार का त्याग किए हुए उन्हें कितने दिन बीते? यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। किन्तु कई दिन तक वे निराहार रहे ऐसा पता चलता है। पूज्य बाबा कहा करते थे कि मेरी विरह पीड़ा शान्त करने के लिए संत श्रीप्रियाशरण जी ने मुझे बारह वर्ष बाद फिर प्रत्यक्ष

दर्शन दिए और मेरा समाधान करते हुए कहा कि हम कहीं नहीं गए हैं। सदैव तुम्हारे निकट ही हैं। तुम एकाग्रचित्त होकर अपने साधन भजन में जुटे रहो तथा जो भी जिज्ञासु साधक तुम्हारे पास आए उसको उचित मार्ग दिखाकर उसे भक्ति मार्ग पर प्रेरित करो।

संत श्रीप्रियाशरण जी का इस प्रकार पुनः दर्शन देना आश्चर्य का विषय अवश्य है किन्तु है यह सत्य। जिस प्रकार श्रीराधावल्लभलाल नित्य सदा रहने वाले तत्त्व हैं उसी प्रकार उनके भक्त भी सदैव विराजमान रहते हैं। रसिक संत श्रीध्रुवदास जी ने कहा है—शुक नारद उद्धव जनक ब्रह्मादिक सनकादि (बयालीसलीला/भक्तनामावली ८)

ज्यों हरि आपनु नित्य हैं, त्यों ये भक्त अनादि॥

घटना क्रमांक २१

बीस रुपये के लिए मथुरा की यात्रा

पूज्य बाबा के द्वारा श्रीगिरिराज जी की दण्डवती परिक्रमा की चर्चा पूर्व में विस्तार से की जा चुकी है। उस अवधि में मथुरा का कोई व्यक्ति जो श्रीगोवर्धन परिक्रमा के लिए प्रायः वहाँ आया करता था, बाबा के सम्पर्क में आया। वह जब भी गोवर्धन आता बाबा से मुलाकात होने पर उन्हें बीस रुपया भेंट करता। वे उसके भाव को देखते हुए भेंट स्वीकार कर लेते। यह क्रम वर्षों तक चलता रहा। एक दिन वह बाबा से बोला कि परिक्रमा पूर्ण होने पर आप यहाँ से चले जाएंगे अथवा यह भी हो सकता है कि आयु के प्रभाव से शरीर वृद्ध एवम् रोगग्रस्त होने पर मैं गोवर्धन न आ सकूँ किन्तु इन दोनों स्थितियों में आप मेरी बीस रुपये की भेंट स्वीकार करने के लिए स्वयं ही मथुरा आकर मुझे दर्शन देने

की कृपा करना। उसकी बात सुनकर बाबा ने उसे आश्वासन दिया कि ठीक है ऐसा ही होगा, आपकी मेरी मुलाकात न होने पर मैं स्वयं ही प्रत्येक माह मथुरा आ जाया करूँगा।

श्रीगोवर्धन दण्डवती परिक्रमा सोलह वर्ष चली, उसके पश्चात् बाबा कुछ समय बरसाना रहकर, वृन्दावन आ गए। इस दीर्घ अवधि में रुपये का मूल्य बराबर गिरता रहा, साथ ही मँहगाई का स्तर भी बढ़ता चला गया। वृन्दावन वास की अवधि में जबकि बाबा वृद्ध और रोगग्रस्त भी हो चुके थे तो भी वे अपने वचन का निर्वाह करने के लिए समय-समय पर मथुरा जाते और उस व्यक्ति से बीस रुपया भेंट ले आते। मथुरा आने जाने के लिए जिन वाहनों का वे उपयोग करते, उसमें बीस रुपये से कहीं अधिक का खर्चा करना पड़ता, किन्तु वचन-निर्वाह के लिए जब तक संभव हो सका वे मथुरा जाते रहे। एक बार किसी ने बाबा से कहा कि मथुरा आने जाने में आपका बीस रुपये से ज्यादा खर्चा हो जाता है फिर आप मथुरा क्यों जाते हैं? बाबा ने उत्तर दिया कि यहाँ महत्व बीस रुपये या उससे अधिक होने वाले खर्चे का नहीं है अपितु महत्व है सामने वाले के भाव का और हमारी वचनवद्धता का।

जैसे दीपक जलाकर सूर्य की पूजा की जाती है अथव[illegible] अंजलि में जल भर कर सागर की पूजा की जाती है इन दोनों स्थलों में पूजन सामग्री की अल्पता का महत्व नहीं है अपि[illegible] भाव का ही महत्व है। दीपक के क्षुद्र प्रकाश से जैसे सूर्यदे[illegible] सन्तुष्ट होते हैं, अंजलि के क्षुद्र जल से जैसे सागरदेव सन्तुष्[illegible] होते हैं ऐसे ही श्रीठाकुर जी और उनके सन्त वस्तु के कम [illegible] ज्यादा होने से सन्तुष्ट नहीं होते बल्कि वस्तु प्रदान करने वाले [illegible] भाव से सन्तुष्ट होते हैं।

घटना क्रमांक २२

छोटे नोट-बड़े नोट

हमारे धर्मग्रन्थों में आहार शुद्धि को विशेष महत्व दिया गया है। आहार- शुद्ध न होने से उसका प्रभाव मन बुद्धि पर सर्वथा प्रतिकूल पड़ता है, जिससे मनुष्य की रुचि, संस्कार, चिन्तन और प्रवृत्ति ये सब कुमार्ग की ओर जाने लगती हैं। यद्यपि आहार शुद्धि का महत्व सदैव सभी के लिए है तथापि आध्यात्म पथ पर चलने वालों को तो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। भोजन की शुद्धि का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि वह स्नान आदि के पश्चात् शुद्ध वस्त्र पहन कर तथा शुद्ध एवम् स्वच्छ रसोई घर में ही बनाया जाए। वस्तुतः इसके कई आयाम हैं जिनकी चर्चा करने से इस विषय का बहुत विस्तार हो सकता है। ऐसा होते हुए भी आहार-शुद्धि का सर्वोपरि महत्वपूर्ण बिन्दु है धन उपार्जन की शुद्धता जिस धन से भोजन सामग्री जुटाई जा रही है यदि वह धन ही शुद्ध नहीं होगा तो भोजन बनाते समय की पवित्रता एवम् अन्य नियमावली का पालन सर्वथा अर्थहीन है। इसलिए पहली एवं सबसे अधिक अनिवार्य बात है धन उपार्जन की शुद्धता।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी आहार शुद्धि के सभी स्तरों का विशेष ध्यान रखा करते थे। इनमें भी धन की शुद्धता का वे सूक्ष्मता से विचार करते थे। श्रीगुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर अनेक शिष्य उनका दर्शन करने आया करते थे। गुरु-पूजन के अवसर पर उन शिष्यों के द्वारा अपने गुरुदेव दण्डवती बाबा को धन-द्रव्य भी भेंट किया जाता। सब लोगों के चले जाने के पश्चात् दण्डवती बाबा उन रुपयों को छाँटना प्रारम्भ करते, उनमें से ५ एवम् १० रुपये आदि के छोटे नोट एक ओर रख लेते तथा

...बड़े नोटों को दूसरी ओर। एक बार किसी ने उनसे पूछा कि बाबा आप ऐसा क्यों करते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि किसान एवम् अन्य श्रमिक वर्ग के शिष्य जो प्रायः निर्धन होते हैं वे ऐसे छोटे नोट भेंट करते हैं एवं अन्य व्यापारी आदि वर्ग के सम्पन्न शिष्यों द्वारा बड़े नोट भेंट किए जाते हैं। किसान एवम् श्रमिकों की आमदनी प्रायः विशुद्ध ही होती है क्योंकि उसमें टैक्स चोरी, मिलावट, धोखेबाजी आदि की उतनी सम्भावना नहीं होती जबकि दूसरी ओर व्यापारी वर्ग अपना कार्य चलाने के लिए इनका आश्रय लेते हैं। इसलिए किसानों की आय शुद्ध होती है और मैं उनके द्वारा दी गई भेंट को ही अपने निजी खर्च में इस्तेमाल करता हूँ, जबकि अन्य बड़े रुपयों को दीन-दुखियों आदि की सेवा में खर्च कर देता हूँ।

स्थूल दृष्टि से देखने पर यह घटना सामान्य सी लगती है किन्तु विचार करने पर पता चलता है कि पूज्य बाबा आहार शुद्धि को कितना महत्व देते थे। यदि अन्याय से कमाए हुए धन का प्रयोग साधक अपने आहार आदि के लिए करेगा तो भजन साधना के प्रति उसका उत्साह धीरे-धीरे कम होता चला जाएगा। इसके साथ ही उसके चित्त-वृत्तियों में बहिर्मुखता, चंचलता आदि घातक विकारों का भी प्रभाव पड़ेगा जिससे उसकी परमार्थ साधना का ह्रास होगा। यह सब सजगता रखते हुए बाबा ने अपने सम्पूर्ण जीवन में आहार शुद्धि एवं उसके विभिन्न पहलुओं का बहुत बारीकी से ध्यान रखा।

भजन मार्ग पर चलने वालों को आहार के सम्बन्ध में किस प्रकार सावधान रहना चाहिए इससे सम्बन्धित अनेक घटनाएं दण्डवती बाबा के जीवन की हैं। साधन चिन्तन के समय बार-बार अर्थियां दिखाई देना इससे सम्बन्धित एक घटना का उल्लेख पूर्व

में किया जा चुका है। एक बार उन्होंने साधु-संतों के भण्डारे का आयोजन किया इसमें अन्य सामग्री के साथ लड्डू भी बनाए गए। भण्डारे के पश्चात् भी बहुत मात्रा में लड्डू शेष बचे। वहाँ के सेवा कार्यों में बाबा के कुछ शिष्य तत्परता से जुटे हुए थे, बाबा ने निर्देश दिया कि शेष बचे लड्डुओं को ये सेवादार, भक्तगण ले जाएं। इस निर्देश के पश्चात् उन लोगों ने अपने ले जाने के लिए कनस्तर अथवा उस जैसे बड़े पात्रों को लड्डुओं से भर लिया। उन सेवादारों में बाबा की एक शिष्या भी थी, वह महिला श्रीहित हरिवंश महाप्रभु द्वारा प्रगटित श्रीवृन्दावन रसोपासना में यथासम्भव तत्परतापूर्वक लगी रहती थी। बाबा उसकी भजन परायणता देखकर उस पर प्रसन्न रहा करते थे। भण्डारे के पश्चात् जबकि अन्य लोग बड़े-बड़े पात्रों में शेष बचे हुए लड्डुओं को प्रसाद रूप से अपने साथ घर ले जाने की तैयारी में थे। तब बाबा ने एक छोटे से पैकेट में मात्र चार छः लड्डु ही उस अपनी शिष्या को देने का आदेश दिया। उनके व्यवहार में इस प्रकार की विषमता देखकर उस महिला को कुछ देर के लिए अच्छा नहीं लगा। उसके मनोभावों को बाबा ताड़ गए। उन्होंने उसे इसका कारण समझाते हुए कहा कि ये जो भण्डारा सेवा में प्रातःकाल से लगे हुए भक्तगण हैं इनका भजन मार्ग के प्रति अभी कोई रुझान नहीं है। इसलिए ये अपने साथ भले ही अधिक मात्रा में लड्डू ले जाएं और उन्हें कई दिन तक पाते रहें इससे कोई विशेष प्रभाव इन पर नहीं होगा। परन्तु तुम उपासना के मार्ग पर गम्भीतापूर्वक चलना चाहती हो और उसके लिए सदैव प्रयासरत रहती हो इसलिए तुम्हें अपने आहार के विषय में अधिक सावधानी की आवश्यकता है। इस भण्डारे में जिन भक्तों का द्रव्य लगा है वे उसका किस प्रकार उपार्जन करते हैं यह मुझे भी ठीक से ज्ञात

नहीं है। इसलिए एक साधक के लिए भण्डारा और उससे बची हुई भोजन सामग्री को प्रसाद के रूप में यत्किंचित ही सेवन करना चाहिए। उसका अधिक मात्रा में सेवन हमारी भजन-साधना के लिए हानिकारक हो सकता है।

श्रीवृन्दावन के मोतीझील क्षेत्र के सुखदा भक्ति आश्रम में बाबा ने कई वर्षों तक निवास किया। वहाँ बाबा इस प्रकार के सेवा कार्यों को किया करते थे। साधु-संतों को तथा ब्रजवासी एवं अन्य भी लोगों की सेवा वहाँ बाबा के द्वारा चलती रहती थी। कभी भोजन भण्डारे के रूप में तो कभी गेहूँ, चावल, चीनी आदि सूखी वस्तुओं के वितरण में दण्डवती बाबा सब की सेवा किया करते थे। अपने पास आए हुए द्रव्य को भविष्य के लिए जोड़ के रखने की प्रवृत्ति उनमें नहीं थी। जितना भी रुपया उनके पास आता उसका यथा समय और यथा योग्य अवसर पर उसे दूसरों के लिए खर्च कर दिया करते थे। इन सब कार्यों में वे अपने लिए तथा अपने से जुड़े भजन परायण लोगों के लिए आहार शुद्धि का विशेष ध्यान रखते थे।

घटना क्रमांक २३

आशीर्वाद से महिला का ऑपरेशन सफल

जिस प्रकार उपवन में खिल रहे पुष्प के मकरन्द से आकृष्ट होकर भ्रमरवृन्द स्वयं ही उसके पास चले आते हैं, उसी प्रकार आध्यात्म राज्य में भी जब कोई सन्त साधक अपने भजन तप के प्रभाव से पारमार्थिक उपलिब्धयों को प्राप्त कर लेते हैं तो अनेक जिज्ञासु जन उनके निकट खिंचे चले आते हैं। ऐसा ही बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी के साथ भी हुआ। गोवर्धन, बरसाना और वृन्दावन की दण्डवती लगाकर जब वे श्रीवृन्दावन में निवास

करने लगे तो अनेक श्रद्धालुजन उनकी शरणागति ग्रहण करने के लिए आने लगे। श्रीगिरिराज जी की दण्डवती के समय बाबा को श्रीठाकुर जी की ओर से ही ऐसी प्रेरणा प्राप्त हुई कि श्रद्धापूर्वक शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए आने वालों को वे निःसंकोच स्वीकार करें। इसके बाद से बाबा के शिष्यों की संख्या में धीरे-धीरे कुछ विस्तार होने लगा। यद्यपि वे कथा प्रवचन आदि नहीं करते थे और न ही जन सम्पर्क को बढ़ाने के लिए अन्य कोई प्रयास करते थे तो भी कुछ भक्तजनों ने उनके विषय में एक-दूसरे से सुनकर उनकी शरणागति ग्रहण की। यद्यपि बाबा के शिष्यों की संख्या ज्यादा नहीं है वे अन्तर्मुख रहकर एकान्त में भजन साधन करते हुए जीवनयापन करने के पक्ष में थे। इसीलिए उनका परिचय क्षेत्र भी सीमित था। जो थोड़े लोग उनसे परिचित हुए वे दण्डवती परिक्रमा के कारण ही हुए। दण्डवती मार्ग पर ही संभव है इसलिए वे सब की दृष्टि में आने लगे। इसी से उनका कुछ लोगों से परिचय हो गया। तीनों स्थलों की दण्डवती की कुल अनुमानित अवधि २२-२३ वर्ष है। इतने अधिक समय तक मार्ग पर परिक्रमा लगाते हुए भी बाबा का जन सम्पर्क बहुत अधिक नहीं बढ़ पाया। इसका मुख्य कारण था उनकी अन्तर्मुखता और भजन-परायणता। श्रीमद्भगवद्गीता में जनसम्पर्क में अरुचि को कल्याणकारी साधक के लिए आवश्यक बताया गया है।

पूज्य बाबा का अपने शिष्यों के प्रति अत्यन्त कोमल व्यवहार था। वे उनके सुख-दुःख के सभी प्रसंगों में परिवार के एक सदस्य के समान सौहार्द एवं सहानुभूति का व्यवहार करते थे। शिष्यों को परमार्थ मार्ग के साथ-साथ समय-समय पर व्यवहार सम्बन्धी शिक्षाएं भी दिया करते थे। यही कारण है कि प्रायः सभी शिष्य उन्हें अपने अभिभावक के रूप में अनुभव

करते थे। शिष्यों से सम्बन्धित कुछ घटनाओं का उल्लेख ऊपर किया गया है। चरित्र- लेखन के समय हमें उपलब्ध हुई कुछ अन्य घटनाएँ नीचे दी जा रही हैं।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी की एक शिष्या उनके निवास से थोड़ी दूरी पर ही रहा करती थी। वह जब भी बाबा के दर्शन करने आती तब उनकी कुटिया को झाड़-बुहार देती तथा रखे हुए बर्तनों को माँज-पोंछ कर यथा स्थान लगा जाती। उसकी इस प्रकार की निष्काम सेवा से बाबा उस पर प्रसन्न रहा करते थे। एक बार उस महिला को किसी भयानक व्याधि ने घेर लिया। डॉक्टरों ने जाँच-परीक्षण आदि करके यह निर्धारित किया कि इसके निवारण के लिए एक बड़ा ऑपरेशन करना पड़ेगा। वह महिला ऑपरेशन के नाम से भयभीत हो गई। दूसरी ओर व्याधिजनित कष्ट भी था अतः ऑपरेशन के अलावा कोई उपाय भी नहीं था जैसे-जैसे ऑपरेशन की तारीख निकट आती उस महिला को भय, भविष्य की अनिष्ट आशंका और परिवार की चिन्ता के कारण घबराहट सी रहा करती थी। मन ही मन वह अपने गुरुदेव पूज्य बाबा से प्रार्थना किया करती। उसके घर में पूजा स्थल पर बाबा की एक चित्र छवि विराजमान थी, उसके सामने बैठकर वह अपना दुःख उन्हें सुनाया करती।

ऑपरेशन की तारीख निकट आ चुकी थी उसी अवधि में एक रात्रि में उसे स्वप्न में बाबा के दर्शन हुए। अपनी अभय वाणी में बाबा ने उससे कहा—तू चिन्ता मत कर। तेरा ऑपरेशन बिल्कुल सही हो जाएगा और तू स्वस्थ होकर घर वापस आ जाएगी।

स्वप्न में बाबा की भय-भंजन वाणी सुनकर वह सर्वथा निश्चिन्त हो गई। गुरु के आशीर्वाद के अनुसार उसका ऑपरेशन पूर्ण सफल रहा और वह पहले के समान स्वस्थ हो गई।

कई ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनसे पता चलता है बाबा द्वारा अपने शिष्यों की देखरेख और सँभाल निरन्तर बनी रहती थी। बाबा के कुछ ही शिष्य श्रीवृन्दावन में रहते थे शेष बाहर निवास करते थे किन्तु बाबा अपनी अन्तर्दृष्टि से सभी शिष्यों की भीतरी मन:स्थिति और बाहरी परिस्थिति दोनों की खबर रखते थे। शिष्य के प्रति जो गुरु का दायित्व है उसका निर्वाह करने में वे सचेत रहते थे। किसी को भी मन्त्र दीक्षा देकर उन्होंने उपेक्षितभाव से उसे अकेला नहीं छोड़ा। यही कारण है कि वे सभी गुरु की कृपा और अपने ऊपर उनके वरद हस्त का सदैव अनुभव करते थे। बाबा की दृष्टि शरणागत शिष्य के न केवल लौकिक जीवन पर अपितु पारलौकिक जीवन पर भी रहती थी।

घटना क्रमांक २४

चरण सेवा से मृतक लड़के का उद्धार

एक बार उनकी एक शिष्या अपनी बड़ी बहन के पुत्र अर्थात् भांजे को लेकर आई। वह युवक देखने में स्वस्थ था किन्तु उसे कठिन हृदय रोग ने घेर रखा था। अपनी मौसी के साथ आए उस युवक ने बाबा को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और उनके चरण चापने की सेवा करने लगा। कुछ देर बाबा से मिलकर वे दोनों चले गए।

हृदय रोग से ग्रस्त उस युवक का यथासंभव इलाज करवाया गया किन्तु वह बच न सका। उसके दिवंगत होने के कुछ दिन पश्चात् परिवारीजनों ने श्रीधाम बरसाना में उसकी स्मृति में संतों के भोजन भण्डारे का आयोजन किया। उन दिनों बाबा वृद्ध थे और उतने स्वस्थ भी नहीं थे। वृन्दावन से बरसाना आने-जाने की वाहन सुविधाएं भी आज की तुलना में कम ही

थीं। इन कारणों से इस भण्डारे के कार्यक्रम में बाबा का आना कठिन था, किन्तु भण्डारा प्रारम्भ होने के कुछ देर पहले ही बाबा अचानक वहाँ आ गए। उपस्थित शिष्यों ने बाबा को प्रणाम किया। बाबा के अनायास आने पर वे सब विस्मित थे। तब बाबा ने उनसे कहा कि आता कैसे नहीं, उस लड़के ने एक बार मेरे पैर दबाए थे उसका उद्धार तो मुझे करना ही है।

पूज्य बाबा के इस वाक्य में उनकी करुणा, उदारता और शिष्य-वत्सलता का दर्शन होता है। शरणागत के प्रति अपनी कर्तव्य-परायणता भी इससे सूचित होती है। इसमें सन्देह नहीं कि गुरु के समर्थ होते हुए भी शिष्यगण अपने अधिकार के अनुसार ही लाभान्वित हो पाते हैं। ऐसा सर्वत्र ही होता है। महापुरुषों से जुड़ने वाले लोग अपनी-अपनी रूचि और संस्कारों के अनुसार ही अपने लक्ष्य का चुनाव करते हैं। कुछ ही भाग्यशाली भगवत्-प्राप्ति के मार्ग पर गम्भीरता से चलना चाहते हैं, शेष लोग महापुरुषों से जुड़कर भी उनसे अपनी लौकिक कामनाओं की पूर्ति करने के प्रयास में ही लगे रहते हैं। पूज्य बाबा के शिष्य परिकर में भी न्यूनाधिक रूप से यही स्थिति थी। ऐसा होते हुए भी बाबा अपने सभी शिष्यों को सदैव सन्मार्ग की ही शिक्षा प्रदान करते थे। अपने पास आने वाले श्रद्धालुओं से कुछ आवश्यक व्यवहारिक चर्चाएं करके तथा उनका कुशलक्षेम पूछ करके वे अपनी ओर से ही उन्हें श्रीभक्तमाल ग्रन्थ की मधुर कथाएँ सुनाने लगते। इसके पीछे उनका लक्ष्य यह होता कि घर-गृहस्थी के काम-धन्धों में उलझे हुए ये लोग कठिनाई-पूर्वक कुछ समय निकालकर आ पाते हैं अतः इनको ऐसी चर्चा सुनाई जाए जिससे इनका कल्याण मार्ग प्रशस्त हो। भक्तमाल की प्रेरणदायी कथाएं भगवन्नाम के प्रति तथा संत-भक्तों के प्रति श्रद्धा विश्वास को बढ़ाने वाली हो। इस

विचार से वे अन्य वार्ताओं को संक्षेप में करके आगन्तुकों और श्रद्धालुओं को भक्त-चरित्र सुनाया करते थे।

घटना क्रमांक २५

निष्ठावान शिष्य को विरक्त वेष प्रदान

पूज्य बाबा अपनी अन्तर्दृष्टि से शिष्य की समस्याओं को बिना बताए भी जान जाते थे। इससे सम्बन्धित अनेक घटनाएं प्राप्त होती हैं। एक युवक ने उनसे आग्रहपूर्वक मन्त्र-दीक्षा ग्रहण की। उसका निश्चय श्रीवृन्दावनवास करते हुए दृढ़ता से भजन मार्ग पर अग्रसर होने का था। गृहस्थ जीवनशैली का अनुसरण कर घर-परिवार से जुड़ने का उसका विचार नहीं था। इसलिए उसने बाबा से प्रार्थना की कि आप मुझे विरक्त वेष दीक्षा भी प्रदान कर दीजिए। बाबा को उन दिनों श्रीवृन्दावन से कुछ किलोमीटर दूर किसी स्थल विशेष पर जाना था। इसलिए वे उस युवक से यह कहकर कि तुम अमुक आश्रम के महन्त जी द्वारा विरक्त दीक्षा ग्रहण कर लो, वहाँ चले गए। बाबा उनके जाने के पश्चात् जब उस युवक ने बाबा के निर्देशानुसार उन महन्त जी से विरक्त वेष देने की प्रार्थना की तो उन्होंने किसी कारणवशात् इसे अस्वीकार कर दिया। इधर बाबा भी वृन्दावन से बाहर थे अत: विरक्त दीक्षा का उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका। उस युवक ने इस परिस्थिति का उल्लेख किसी से भी नहीं किया और वह बाबा के लौट आने की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ दिन पश्चात् जब वे वृन्दावन लौटे तो उससे उनकी मुलाकात हुई। मिलते ही बाबा ने उस युवक से कहा कि उन महन्त जी ने तुम्हें विरक्त दीक्षा देने से मना कर दिया है, किन्तु चिन्ता की कोई बात नहीं है, अब मैं ही तुमको यह दीक्षा दूँगा। बाबा के मुख से यह बात सुनकर वह युवक चकित रह गया,

...बाबा के बाहर जाने के पश्चात् हुए इस प्रसंग का उल्लेख ...ने किसी से भी नहीं किया था। मोबाइल फोन का उस समय ...न नहीं था, ऐसी स्थिति में उसके लिए यह आश्चर्य का विषय था, कि बाबा को यह कैसे पता चला। ऐसी ओर भी घटनाएँ प्राप्त होती हैं जिनसे यह पता चलता है वे अपने शिष्य की परिस्थिति या उसकी मानसिक प्रवृत्ति को बिना किसी के बताए जान जाते थे।

घटना क्रमांक २६

परिक्रमा में शेर के दर्शन

पाँच फणों वाले सर्प का दीखना जिस प्रकार एक विस्मयकारी घटना है उसी प्रकार के एक और प्रसंग का बाबा कभी-कभी उल्लेख किया करते थे जो दण्डवती की उसी अवधि में घटी थी। श्रीगिरिराज परिक्रमा मार्ग में जिस प्रकार आज भीड़ होती है वैसी पहले नहीं थी। इतने भवन भी उस समय नहीं बने थे। परिक्रमा में वृक्ष-लताओं का बाहूल्य था। कहीं-कहीं परिक्रमा से कुछ दूर ही छोटे वन-क्षेत्र भी थे। ऐसे ही किसी वन-क्षेत्र में जो परिक्रमा से प्रायः लगा हुआ ही था बाबा को एक बार सिंह के दर्शन भी हुए। वह सिंह छोटे कद का था अथवा यह कहें कि वह सिंह का बालक ही था। वैसे जिन शब्दों में बाबा उसका उल्लेख करते थे उससे तो यही धारणा बनती है कि वह छोटे कद का सिंह ही था। वन-क्षेत्र में रहने वाले उस सिंह का वर्णन जब बाबा ने अन्य स्थानीय ब्रजवासियों से किया तो उनमें से भी किसी-किसी ने उसे देखने की बता बताई और यह भी कहा कि वह छोटे कद के सिंह बालक के रूप में हमें भी दिखाई दिया था।

लगभग ६० वर्ष पूर्व श्रीगिरिराज परिक्रमा से इतना निकट सिंह की उपस्थिति को अन्य दृष्टियों से समझा जा सकत

है। किन्तु विस्मित करने वाले इस प्रसंग का एक आध्यात्मिक अर्थ भी हो सकता है। श्रीगिरिराज ब्रजभूमि में विराजमान एक प्रत्यक्ष दिव्य निधि है जो श्रीकृष्ण से सर्वथा अभिन्न हैं। सात कोस में फैले हुए गोवर्धन अपने आप में स्वयं एक विशाल मन्दिर है। वस्तुत: श्रीकृष्ण स्वरूप होने के कारण विशाल मन्दिर है। वस्तुत: श्रीकृष्ण स्वरूप होने के कारण वे नन्दनन्दन के ही अचल विग्रह हैं, जो कलियुग के जीवों पर कृपा करने के लिए ब्रजमण्डल में सबके नेत्रगोचर हो रहे हैं। ऐसे अद्भुत, अनन्त महिमाशाली श्रीगिरिराज जी का सेवन केवल मनुष्य ही नहीं अपितु ऋषिमुनि, सिद्ध देवता, गन्धर्व आदि दिव्य योनि वाले भी करते हैं। ये सभी अपनी इच्छानुसार भिन्न-भिन्न रूपों में तलहटी में आकर श्रीगिरिराज गोवर्धन का दर्शन, पूजन, भजन एवं परिक्रमा आदि के द्वारा सेवन करते हैं। बाबा द्वारा बताई गई सिंह वाली घटना से यही भाव बनता है कि ऊपर कहे गए इन देवता, ऋषिमुनि, सिद्धों में से ही कोई उस सिंह के रूप में श्रीगिरिराज तलहटी में निवास करते हुए अपनी भक्ति साधना में लगे हुए हैं। किसी-किसी भाग्यशाली पुरुष को वे समय-समय पर अपना दर्शन भी प्रदान करते हैं किन्तु सर्व सामान्य के लिए उन्हें देख पाना संभव नहीं है।

बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी श्रीगिरिराज दण्डवती के अनुभवों से जुड़ी हुई कुछ अन्य बातें भी सुनाया करते थे। यद्यपि संत का स्वभाव अपने दुर्लभ अनुभवों एवम् उपलब्धियों को प्रकट करने का नहीं होता है तो भी प्रसंगवशात् कभी-कभी कुछ बातें कहने में आ जाती हैं। बाबा भी आत्म- संगोपनशील थे। किन्तु यदा-कदा अपने शिष्य भक्तों से चर्चा करते समय वे अपने किसी-किसी अनुभव को संक्षेप में कह जाते थे। बाबा के

...उन्हें दण्डवती की अवधि में कम से कम दो-तीन बार ...ठाकुर जी ने छद्म वेष में आकर दर्शन दिए। छद्म रूप से ...श्रीठाकुर जी का अन्य किसी रूप को धारण करना है।

घटना क्रमांक २७
सेब फल वाली प्रथम घटना

एक बार बाबा परिक्रमा मार्ग में चल रहे थे। उनके पास एक झोला था जो उनके कंधे पर लटक रहा था। झोले में दो सेब (फल) थे तभी अचानक एक बालक पीछे से आया और उसने बिना कुछ कहे सुने शीघ्रतापूर्वक झोले में हाथ डालकर एक सेब फल निकाल लिया फिर तत्काल वह उसे खाता हुआ शीघ्रतापूर्वक बाबा से आगे निकल गया। बाबा ने पीछे से उसे पुकारते हुए कहा अरे लाला! मेरे झोले में एक सेब फल और है उसे भी ले जाओ। वे उस बालक को पुकारते ही रहे किन्तु वह लौटकर नहीं आया और थोड़ी दूर जाकर अदृश्य हो गया।

घटना क्रमांक २८
सेब फल वाली द्वितीय घटना

ठीक इसी प्रकार एक बार और भी यह घटना घटी। पूज्य बाबा दण्डवती लगाने में व्यस्त थे। एक ओर रखे हुए उनके झोले में सेब फल था। तभी एक बालक अचानक कहीं से आया और उसने बाबा के झोले में से फल निकाल लिया। बाबा दण्डवत् में व्यस्त थे अत: उनका ध्यान इस घटना पर कुछ क्षणों बाद ही गया। उन्होंने देखा कि सामने एक बालक सेब फल खा रहा है और मेरी ओर मुस्कुराते हुए देख रहा है। वे उससे कुछ पूछ पाते उसके पूर्व ही वह दृष्टि से ओझल हो गया। इस प्रकार दो बार श्रीगिरिराजधरण ने उन्हें छद्म वेष में दर्शन देकर उनके साथ लीला की। श्रीगिरिरा...

तलहटी में श्रीठाकुर जी सदैव विराजमान रहते हैं। सखाओं के साथ वहाँ गोचारण करने की उनकी जिन लीलाओं का श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है वे सभी लीलाएं नित्य हैं तथा देश और काल के प्रभाव से मुक्त हैं। किसी-किसी प्रेमी भक्त के ऊपर अनुग्रह करके वे उसे अपनी लीला का बोध कराते हैं अथवा किसी छद्म वेष में आकर उसके साथ कोई अठखेली करते हुए आनन्द प्रदान करते हैं।

पूज्य बाबा राधावल्लभशरण जी श्रीहित हरिवंश महाप्रभु द्वारा प्रवृत्तित रसोपासना के निष्ठावान् उपासक थे। उन्होंने आजीवन नाम और वाणी का दृढ़ता से अवलम्बन लिया।

इस उपासना में श्रीहरिवंश महाप्रभु की वाणी का मनन, परिशीलन नितान्त अनिवार्य है। बाबा सदैव श्रीराधासुधानिधि ग्रन्थ का उठते-बैठते, चलते-फिरते सदैव गान किया करते थे। ग्रन्थ में वर्णित विषय-वस्तु का चिन्तन उन्हें निरन्तर बना रहता था। इष्ट के नाम का जप उनका सर्वस्व था। नाम-निष्ठा के तो वे साक्षात्-मूर्ति ही थे। इस प्रकार वे आजीवन नाम और वाणी के आनन्दरस का सदैव आस्वादन करते रहे।

नाम और वाणी की उपासना करते हुए अपने नित्य सिद्ध श्रीराधाकिंकरी स्वरूप में स्थित होना इस श्रीराधावल्लभीय सिद्धान्त का चरम लक्ष्य है। श्रीमद्भागवत में अन्यथा रूप का परित्याग कर अपने सहज स्वरूप में स्थित होने को ही मुक्ति कहा गया है।

अपने शरीर में मैंपने का अध्यास करना, शरीर से सम्बन्धित परिवार, समाज, जाति, कुल आदि में अभिनिवेश रखना यही अन्यथा रूप कहलाता है। इसे अन्यथा इसलिये कहते

है क्योंकि यह अपना वास्तविक परिचय नहीं है अपितु भ्रम से मान लिया गया है। जीवात्मा का सहज स्वरूप श्रीराधाकिंकरी है! जो स्वाभाविक अर्थात् निरूपाधिक है। अपने इसी स्वभाव सिद्ध रूप में परिनिष्ठत होना यही राधावल्लभ रसोपासना का चरम लक्ष्य है।

जैसे-जैसे उपासक भ्रमवशात् माने गये अन्यथा रूप से अपने चित्त को हटाता है! वैसे-वैसे उसे सहज स्वरूप की स्मृति और उसमें स्थिति बढ़ती चली जाती है। बाहर से देखने पर वह औरों के समान शरीर में आबद्ध एक सामान्य जीव ही प्रतीत होता है, किन्तु भीतर से उसकी स्थिति भिन्न प्रकार की होती है। शरीर में मैं और मेरापन से मुक्त उसकी चेतना अपने सहज दासी स्वरूप में स्थित होती चली जाती है। इस दशा का संकेत करते हुए श्रीहित हरिवंश महाप्रभु ने कहा है—

स्थितां नित्यं पार्श्वे विविधपरिचर्य्यैक चतुरां।
किशोरीमात्मानं किमिह सुकुमारीं नु कलये॥

श्रीराधासुधानिधि-५२

अर्थात् श्रीस्वामिनी जू के बगल में खड़ी और समस्त सेवाओं में निपुण किशोरावस्था वाली एक दासी के रूप में अपने आपको इसी जीवन में कब अनुभव करूँगा!

इस प्रकार जब अपने सहज दासी स्वरूप में उपासक की स्थिति होने लगती है तब वह धीरे-धीरे कर्म वन्दन से छूटता चला जाता है। प्राचीन कर्म राशि के कारण ही जीव को बार-बार जन्म लेने के लिये विवश होना पड़ता है अपने आत्मस्वरूप में सहज स्थिति होने पर जीवन का कर्मबन्धन निर्वृत्त हो जाता है तब उसे पुन: और कोई जन्म लेने की बाध्यता भी नहीं होती। ऐसी

स्थिति में वर्तमान जन्म हेतु जो प्रारब्ध कर्म है केवल वे ही उसे अपने परमाराध्य से पूर्ण मिलन होने में अन्तराय बनाते हैं प्रारब्ध के समाप्त होते ही वह उपासक तत्काल श्रीराधावल्लभलाल की नित्य सेवा में पहुँच जाता है जहाँ से उसे फिर कभी कोई जन्म लेने के लिये वापस नहीं आना पड़ता।

पूज्य बाबा भी इसी स्थिति को प्राप्त रस सिद्ध संत थे अब वे अपने प्रारब्ध कर्म की प्रतिक्षा करते हुए समय यापन कर रहे थे प्रारब्धाक्षय होने के पश्चात् जगत में पुनः आने का कोई हेतु नहीं था इसलिए वे चाहते थे शीघ्र ही इस प्रारब्ध कर्म का क्षय हो और वे अपने किंकरी स्वरूप से श्रीप्रियप्रीतम की नित्यलीला में सम्मिलित हो सके। इन दिनों बाबा को यही अकुलाहट बनी रहती थी कि कभी-कभी अपने किसी अन्तरंग शिष्य को यह कह दिया करते थे कि अब हम शीघ्र ही श्रीजी की नित्यलीला में जाना चाहते हैं!

एक बार उनकी शिष्या उनके दर्शन करने वृन्दावन आयी! जब वह बाबा के चरणों में उपस्थित हुई तो उन्होंने उससे कहा की तुम अब जल्दी-जल्दी आया करो। तुम्हें जो-जो बातें बतानी है उन्हें मैं शीघ्र ही बता देना चाहता हूँ क्योंकि अब मैं वृन्दावन की नित्यलीला में जाने वाला हूँ!

अपने गुरुदेव के मुख से सहसा यह सुनकर वह भावुक महिला रोने लगी। कुछ देर बाद उसने रोते हुए बाबा से प्रार्थना की कि आप मुझे दो वचन दीजिये! पहला यह कि आप जब भी श्रीजी की सेवा में जायें उस समय मैं वृन्दावन में उपस्थित रहूँ। दूसरा यह कि श्रीजी की सेवा में जाने के बाद आप अपने सहचरी स्वरूप का मुझे आभास करवायें।

उसकी प्रार्थना सुनकर त्रिवाचापूर्वक दोनों वचन प्रदान किए! बाबा ने उससे कहा कि मैं जब देह छोड़कर श्रीराधा-वल्लभलाल की नित्यलीला में जाऊँगा उसके पहले ही सूचना देकर यहाँ बुलाऊँगा-बुलाऊँगा-बुलाऊँगा। दूसरा वचन देते हुए उन्होंने कहा कि श्रीजी की नित्य सेवा में पहुँचकर मैं तुम्हें अपने सहज सहचरी स्वरूप का आभास कराऊँगा-कराऊँगा-कराऊँगा।

त्रिवाचापूर्वक दिये गये इन आश्वासन वचनों से पूज्य बाबा की आन्तरिक स्थिति और आध्यात्म राज्य में उनकी विलक्षण पहुँच का कुछ अनुमान होता है! पहला आश्वासन तो वे ही महापुरुष दे सकते हैं जो समय और मृत्यु के आधीन होकर देहत्याग नहीं करते अपितु समय और मृत्यु का अपनी इच्छा से वरण करते हैं सामान्य व्यक्ति अपनी मृत्यु का समय और उस अवधि में अपने शरीर और मन की अवस्था के विषय में किसी को कोई आश्वासन नहीं दे सकता!

दूसरा वचन देते हुए बाबा ने जो आश्वासन दिया वह भी उनकी विलक्षण सामर्थ्य का परिचायक है। ऐसा आश्वासन भगवत् प्राप्त जीवन मुक्त महापुरुष ही दे सकते हैं। देहत्याग के पश्चात् जो अपनी पारलौकिक गति के विषय में दृढ़ निश्चय न हो वह कदापि ऐसा आश्वासन नहीं दे सकता। सामान्य व्यक्ति के लिये तो मृत्यु के पश्चात् अन्धकार ही अन्धकार है जिसके विषय में वह कुछ भी निश्चिन्त नहीं कह सकता।

बाबा ने अपनी एक अन्य शिष्या के विषय में भी यह निश्चय कर रखा था की देहत्याग के पूर्व उसे भी सूचना देकर बुलाना है। एक बार उन्होंने उस शिष्या से फोन पर बात करते

हुए कहा कि मैं अपने आराध्य की सेवा में लहँगा पहनकर जाना चाहता हूँ।

इस वाक्य के पीछे उनका क्या अभिप्राय था इसे निश्चित रूप से कह पाना कठिन है। कदाचित् उस महिला ने इसका यह अर्थ लगाया कि अब जबकि बाबा इहलोक से विदा लेने की तैयारी कर रहे हैं तो वे अन्तिम समय में सखी वेष का शृंगार कर देहत्याग करना चाहते हैं। इसलिये वह लहँगा सिलवाने के लिये बाजार से कपड़ा ले आयी।

हमारे अनुमान से बाबा का यह आशय नहीं रहा होगा उनके वाक्य का यही तात्पर्य प्रतीत होता है कि मैं देहत्याग के पश्चात् सखी स्वरूप से सेवा में उपस्थित होना चाहता हूँ अर्थात् दूसरा कोई जन्म लेने की संकल्प मेरी भीतर नहीं है।

ऊपर बाबा की जिन दो शिष्याओं की चर्चा की गयी है उसका अब समाहार किया जा रहा है। पहली शिष्या जिससे उन्होंने अन्तिम समय के पूर्व वृन्दावन बुलाने का बचन दिया था उसे उन्होनें दो दिन पूर्व ही स्वयं पी.सी.ओ. जाकर फोन करके आने के लिये कह दिया था।

दूसरा वचन उसे यह दिया था कि श्रीजी की सेवा में पहुँचकर वे अपने राधाकिंकरी स्वरूप का उसे आभास करायें यह भी सत्य हुआ।

दूसरी शिष्या को भी उन्होंने उसी समय फोन करके बुला लिया था। उसे यह अवसर नहीं मिल पाया कि वह खरीदे हुए कपड़े का लहँगा सिलवा पाती इसलिये उसने बाबा के अन्तिम दर्शन के समय उसने वह कपड़ा उन्हें उढ़ा दिया।

ऊपर के प्रसंगों में हमने देखा कि पूज्य बाबा किस प्रकार श्रीराधावल्लभलाल की लीला में जाने के लिये कितने व्यग्र थे। उनकी उत्कण्ठा से सम्बन्धित एक घटना और है। एक बार वे अपने परमाराध्य का दर्शन करने मन्दिर जा रहे थे। आज उनके चित्त में बहुत व्याकुलता थी नित्यधाम श्रीवृन्दावन में अपने स्वभाव स्वरूप सहचरी स्वरूप प्राप्त करने के लिये उनका मन बेचैन था श्रीराधासुधानिधि ग्रन्थ का पाठ 'मधुरस्वर' में गायन और उसका चिन्तन इन सबका उन्हें दृढ़ अभ्यास था इस ग्रन्थ के २६१ वें श्लोक में श्रीहरिवंश महाप्रभु ने कहा है! कि मैं शरीर को त्यागकर उन श्रीराधा की दासी कब बनूँगा जो रसिक शिरोमणि श्यामसुन्दर के साथ श्रीवृन्दावन की कुञ्जों में सदैव केलि निवास करते हैं!

इन पंक्तियों में श्रीमहाप्रभु ने रसिक उपासक की चित्त के उस स्थिति का चित्रण किया है जिसमें वह प्रारब्ध के आधार पर रोके हुए पंचभौतिक शरीर की बाधा को न सहता हुआ शीघ्र से शीघ्र अपने इष्ट की सेवा में पहुँचना चाहता है। इन्हीं भाव तरंगों में डूबते उतराते वे श्रीराधावल्लभ जी के मन्दिर पहुँचे उस समय मध्यह्नान राजभोग नैवेद्य आने में कुछ देरी भी बाबा एक टक श्रीजी की मनमोहिनी छवि को निहार रहे थे सहसा उनकी भाव दशा में एक ज्वार सा आ गया अब इस संसार में मन नहीं लग रहा है। मैं प्रारब्ध के बन्धन को तोड़कर कब शीघ्रातीशीघ्र श्रीजी को प्राप्त करूँगा यह उत्कण्ठा उनके चित्त में बढ़ती चली गयी वे व्याकुल हो उठे उमड़ते हुए भावों में धैर्य की सीमा को तोड़ दिया उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली शरीर शिथिल हो गया और विकम्पित होने लगा इसी समय श्रीजी का राजभोग

सेवा का समय हुआ और पर्दा लग गया बाबा ने एक ओर होकर श्री प्रभु को साष्टांग प्रणाम किया! प्रणाम के पश्चात् वे उठने में असमर्थ हो गये मन में उठते हुए भावों ने विचलित कर दिया था। आज लोक लाज की भी दीवार ढ़ह गयी सब लोगों के बीच में ही वे बहुत देर तक रुदन करते रहे तीस मिनिट बाद जब भोग का समय पूरा हुआ श्रीजी की आरती हुई तब भी बाबा अपने को सम्भालने में असमर्थ थे आरती के पश्चात् दर्शनार्थी क्रमश जाने लगे मन्दिर प्रांगण प्राय खाली हो गया तब भी बाबा को वह प्रेम विकलता बनी रही निज मन्दिर के भीतर से आवाज लगाकर गोस्वामी जी ने किसी से कहा कि बाबा को राजभोग प्रसाद पवाकर ही उन्हें कुटिया तक छोड़ने जाना। तदनुसार कुछ ही देर में बाबा को प्रसाद पवाकर एक दो भक्तगण उन्हें सुखदाभक्ति आश्रम में उनकी कुटिया तक छोड़ आये।

इस घटना से उनकी उस समय की मनोदशा का कुछ आभास होता है! लोकयात्रा पूर्ण करने से पहले उनके चित्त में कैसी व्याकुलता थी इस घटना से इसका पता चलता है, किसी भक्त कवि ने संतों की इन्हीं मनोदशा का चिन्तन करते हुए यह प्रसिद्ध दोहा कहा है—

जा मरने से जग डरे सो मेरे आनन्द।
कब मरिहौं कब भेटिहौं पूरण परमानन्द॥

पूर्व में बताया जा चुका है कि जब बाबा श्रीराधा-वल्लभशरण जी श्रीवृन्दावन धाम की दण्डवती परिक्रमा कर रहे थे तब उन्हें हृदय रोग का प्रारम्भ हुआ। इस कारण उनकी परिक्रमा जो सोऽहम आश्रम पर पूरी होनी थी उसे उन्हें ५००-७०० मीटर पहले ही छोड़ना पड़ा। इस अवधि के आसपास ही बाबा ने

सुखदा भक्ति आश्रम में रहना प्रारम्भ कर दिया था। मोतीझील इलाके में स्थित इस आश्रम में उनके लिये एक कमरा क्रय कर लिया गया, जिसमें उन्हें आजीवन रहने का अधिकार प्राप्त था। यहीं बाबा ने अपने जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष बिताये।

अनुमानतः यह अवधि आठ-दस वर्ष की रही होगी इन दिनों बाबा को हृदय रोग बीच-बीच में परेशान किये रहता था। इसके लिये वे कभी आयुर्वेदिक तो कभी एलोपैथिक दवाईयाँ लिया करते थे अन्तिम कुछ माह तो रोग और भी गम्भीर हो गया बाबा को अचानक छाती में दर्द और तीव्र घबराहट का अनुभव हुआ करता था।

श्रीवृन्दावन के किशोरपुरा इलाके में महिला चिकित्सालय में एक अस्पताल चला करता था उसके प्रमुख चिकित्सक डा. नरेन्द्र शर्मा थे। दण्डवती बाबा ने अपने इलाज के लिये उनसे सम्पर्क साधा। डॉ. ने उनके लक्षण देखते हुए इ.सी.जी. की जाँच की। रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से हृदय रोग की बात आई। तदनुसार डॉ. ने उन्हें दवाईयाँ लिख दी। हमारी जानकारी के अनुसार बाबा तीन बार इस अस्पताल में भर्ती भी हुए इस प्रकार निरन्तर चिकित्साक्रम से डॉक्टर और बाबा में घनिष्टता भी हो गयी।

एक बार डॉ. ने बाबा की इ.सी.जी. जाँच की यह जाँच करने पर कागज में कुछ ऐसी रेखाएं अंकित हो जाती है जिनसे डॉ. रोगी के हृदय की स्थिति का आंकलन कर लेते हैं, बाबा की जाँच रिपोर्ट को जब डॉ. ने देखा तो उसे लगा की इसमें रेखाएं कुछ अस्वाभाविक प्रकार से घूम रही हैं और उनसे मानो जैसे किन्हीं अक्षरों का निर्माण हो रहा है। इसका उल्लेख डॉ. ने बाबा

से भी किया इसे बाबा के प्रति उसकी श्रद्धा माना जाय अथवा कुछ और किन्तु उसे जाँच रिपोर्ट में रेखाओं से उभरती आकृति में श्रीभगवन्नाम के दर्शन हुए इस प्रसंग में सबकी अलग-अलग राय हो सकती है! किन्तु बाबा के कुछ ऐसे श्रद्धालु शिष्य भी है जो यह मानते हैं कि उस जाँच रिपोर्ट की रेखाओं में हरिवंश नाम को अंकित किया था जिसका जप सदैव बाबा किया करते थे। श्रीसेवक जी ने अपनी वाणी ग्रन्थ में कहा है—

श्रीहरिवंश के नाम को सर्वस।
जान सों राख्यो मैं चित्त समाई॥

अतएव बाबा के हृदय में समाया हरिवंश नाम ही जांच रिपोर्ट में आकृतियों के माध्यम से अंकित हो गया। ऐसा होना एक आश्चर्य अवश्य है किन्तु असम्भव नहीं है।

इसी सन् २००० के सम्भवत: नवम्बर माह में दण्डवती बाबा का स्वास्थ अचानक बिगड़ गया। शिष्य-भक्तों ने चिकित्सालय में उन्हें फिर भर्ती किया। इसके पूर्व भी बाबा एक बार इस अस्पताल में भर्ती हो चुके थे ऐसी जानकारी प्राप्त होती है। किन्तु उसका विशेष विवरण प्राप्त नहीं है। दूसरी और तीसरी बार भर्ती होने की कुछ जानकारियाँ उन लोगों से प्राप्त हुई जो उस समय उनकी सेवा में रहे। उनकी वहाँ उपस्थिति होने पर भी स्मृति पटल पर कुछ बातें अस्पष्ट होने से कहीं-कहीं अनुमान का भी आश्रय इस लेखन में लिया गया है।

छाती में दर्द और घबराहट के कारण बाबा को जब भर्ती किया गया उसकी समय श्रीभक्तमाल ग्रन्थ के सुप्रसिद्ध कथावाचक श्रीमथुरादास जी भक्तमाली भी अस्वस्थ होने के कारण वहाँ भर्ती हुए इस अस्पताल में एक बड़े कमरे को बीच-

बीच में दिवाल अथवा बोर्ड का अन्तराय देकर अलग-अलग केबीन बनाये गये थे जिससे अनेक मरीजों का एक साथ इलाज हो सके। बीच की पारटीशनवाल छत तक नहीं था। उसकी ऊँचाई सम्भवत: छः सात फीट ही थी। ऐसी स्थिति में एक केबीन में होने वाली चर्चा दूसरी केबीन में सुनाई देती थी उस कक्ष में बाबा कोने वाले केबीन में भर्ती थे तथा उसके एक दो केबीन बाद ही श्रीभक्तमाली जी भर्ती थे।

दण्डवती बाबा की सेवा में जो उनके शिष्य थे वे एक दिन रात्रि में अधिक जगने एवं अन्य प्रकार की सेवा में थकान का अनुभव कर बीच में खाली पड़े केबीन के बेड पर जाकर सो गये अब स्थिति यह थी कि उनके एक तरफ वाले केबीन में बाबा तथा दूसरी तरफ केबीन में भक्तमाली जी भर्ती थे। अन्य कोई व्यक्ति वहाँ उपस्थित नहीं था बाबा के शिष्य थकावट के कारण तन्द्रा में तो थे किन्तु फिर भी वे पूरी तरह सोये नहीं थे। सहसा उन्होंने अनुभव किया की बाबा अपने बेड से उठकर श्रीभक्तमाली जी के केबीन में आ गये हैं। उनका अनुमान सही निकला कुछ ही क्षणों में उन दोनों का वार्तालाप भी सुनाई दिया।

दण्डवती बाबा भक्तमाली जी को भैया कहा करते थे। बाबा के शिष्य को प्रथम अपने गुरुदेव का यह वाक्य सुनाई दिया—भैया कैसे हो? भक्तमाली जी ने उत्तर दिया स्वास्थ ठीक नहीं है उम्र भी हो चुकी है इसलिये अब संसार में रहने की इच्छा नहीं है। इसके उत्तर में बाबा ने कहा अब जानकी जी का उत्सव आने वाला है! आप सेवा में पहुँच कर उत्सव की तैयारी करो आपके थोड़े ही दिन बाद मैं भी ...डलीलाल के निकुंज में पहुँचकर उनकी सेवा का सुख

प्राप्त करूँगा। दोनों महापुरुषों का यह अन्तिम मिलन और अन्तिम वार्तालाप था! इस संक्षिप्त चर्चा के पश्चात् दण्डवती बाबा अपने कक्ष में वापस आ गये।

श्रीमथुरादास भक्तमाली वयोवृद्ध थे तथा पिछले कई माह से रुग्ण चल रहे थे उस अस्पताल में दो-तीन दिन इलाज करवाने के पश्चात् अपनी कुटिया में वापस चले आये इसके थोड़े दिन बाद ही अपना पंचभौतिक कलेवर भागकर वे सीता-रामजी की नित्य सेवा में सम्मलित हुए।

कुछ दिन अपना इलाज करवा के दण्डवती बाबा भी सुखदा आश्रम वाली कुटिया में वापस आ गये। बाबा जान चुके थे की इस लोक में अब उनका निवास थोड़े दिनों का ही है! इसके पश्चात् उन्हें श्रीराधावल्लभलाल की नित्यलीला में सहचरी रूप प्राप्त करना है! जो उनका अभीष्ट था। उनकी दृष्टि अब सब ओर से सिमटकर श्रीसेवक वाणी की इन पंक्तियों पर टिकी हुई थी–

"निज महल टहल नव कुंज में नित्त सेवक सेवा करनम्।
निशदिन समीप संतत रहे हरिवंश चरण शरण॥"

रसोपासना का चरमलक्ष्य इन पंक्तियों में बताया गया है नित्यलीला में पहुँचकर अपने नित्य सरल सखी स्वरूप से श्रीलाड़लीलाल की नित्य सेवा को प्राप्त करना यही श्रीराधा-वल्लभीय स्वरूप को भूलकर माया से मोहित हुआ जीव इस संसार चक्र में भटकता हुआ अनेक दु:खों को प्राप्त करता रहता है। उसकी इस भटकन का एकमात्र कारण स्वरूप ही विस्मृति तथा शरीर में मैंपने का झूठा भ्रम है! यह भ्रम ही शास्त्रों में अविद्या कहा गया है जो संसृति का हेतु है–

"संसृति हेतु अविद्या नासी"

श्रीहरिवंश नाम और वाणी का प्राणप्रण से दृढ़ आश्रय लेने पर यह अविद्या सदा-सदा के लिये नष्ट हो जाती है। तब जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त कर लेता है! जैसे स्वप्न में भाँति-भाँति के कष्ट सहने वाला व्यक्ति जग जाने पर अपने वास्तविक रूप में वापिस स्थित होने से स्वप्न के पीड़ा-प्रद दृश्यों से मुक्त हो जाता है। ऐसे ही प्रेमोपासना के प्रभाव से अपने सहज स्वरूप में स्थित होकर जीव इस संसार स्वप्न और इसकी त्रासादी से सदा के लिये मुक्त हो जाता है–

"या रस मगन मिटे भव त्रास"।

पूज्य बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी इसी अवस्था में अवस्थित एक अनन्य रसिक थे।

अपनी अन्त:प्रज्ञा से वे जान सके थे कि अब इस लोक में उनका निवास कुछ ही दिन का है इसलिये उन्होंने अपने सभी धर्मी, स्नेही सुहृदों से अन्तिम बार मिलकर उनसे सादर जय-जय श्रीहरिवंश करने का विचार बनाया। अस्पताल से आने के बाद उनके स्वास्थ में जब थोड़ा और अधिक सुधार हुआ, वे अपने को कुछ दूरी तक पैदल चलने के योग्य अनुभव करने लगे तब उन्होंने सबसे विदाई लेना प्रारम्भ किया। जिन साधु संतों से अथवा गृहस्थ भक्तों से उनकी थोड़ी भी घनिष्टता थी उन सबके पास एक-एक करके वे मिलने गये।

बाबा का विदा लेने का यह कार्य सर्वथा रहस्यमय था। उन्होंने किसी के भी समक्ष यह प्रगट नहीं किया कि मैं अब अन्तिम बार आपसे मिलने आया हूँ। सब लोगों ने यही समझा कि बाबा सहज रूप से जैसे कभी-कभी आ जाया करते थे वैसे

ही आये हैं। इस प्रकार अपने सभी सुहृदयों से उन्होंने गुप्त रीतिपूर्वक विदाई ले ली यह कार्य इतना गुपचुप किया गया कि बाबा की सेवा में रहने वाले उनके निकट शिष्यों को भी इसका पता उनके निकुंज गमन के बाद ही चला। उनके बाद लोगों ने आश्चर्यपूर्वक एक दूसरे को यह प्रसंग बताया।

पूर्व में कहा जा चुका है कि बाबा ने अपने निकुंज गमन से कुछ ही पूर्व अपनी ही शिष्याओं को श्रीवृन्दावन बुलाने का विचार बना लिया था उनमें से एक को तो त्रिवाचापूर्वक यह वचन भी दिया था कि मैं जब श्रीजी की सेवा में जाऊँगा उसके पहले ही मैं तुम्हें बुला लूँगा।

बाबा प्रतिदिन की तरफ प्रातः घूमने जाते थे। सोलह मार्च को भी गये। जबकि उन्हें ज्वर था वे पाटोत्सव पर दूध, जलेबी का भण्डारा करते थे।

पूज्य बाबा जिस सुखदाभक्ति आश्रम में रहते थे उसमें उनकी कुटिया के बगल में ही एक अन्य सज्जन निवास करते थे। उनके घर पर लैण्डलाइन फोन उपलब्ध था।

दि. १४-मार्च-२००१ के दिन लगभग शाम को पाँच बजे बाबा अपने पड़ोसी के पास गये। उनके यहाँ से बाबा ने अपनी उन दोनों शिष्याओं को फोन किया जिनका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है! उनकी एक शिष्या जिनका निवास वृन्दावन से करीब एक सौ किलोमीटर दूर था उसे बाबा ने कहा कि तुम कल वृन्दावन जा जाओ। उसने कहा कि गुरुजी मैं अभी कुछ दिन पूर्व ही तो वृन्दावन से आयी हूँ फिर आप मुझे क्यों बुला रहे हैं? इस पर बाबा ने कहा कारण मत पूछो बस तुम कल आ जाओ। इतनी ही चर्चा उन दोनों के मध्य में हुई। वह शिष्या कैसे

[?] पाती कि पूज्य बाबा ने त्रिवाचापूर्वक जो यह वचन दिया है! कि अन्तिम समय आने पर मैं तुम्हें वृन्दावन बुला लूँगा। उस वचन को पूरा करने के लिये ही बाबा ने उसे फोन किया था।

उसी समय बाबा ने अपनी दूसरी शिष्या को भी फोन लगाया। उसका निवास वृन्दावन से लगभग ७०० किलोमीटर दूर है! इस प्रकार दोनों को आने के लिये कहकर बाबा अपनी कुटिया में वापस आ गये।

पूज्य बाबा प्रतिदिन प्रातःकाल टहलने जाया करते थे उनका यह प्रातः भ्रमण का नियम अन्त तक निभता रहा दिनांक १४, १५, १६ मार्च को भी वे वन महाराज कॉलेज की ओर टहलने गये। इन दिनों बाबा को ज्वर प्रायः बना रहता था। हृदय रोग के कारण छाती में दर्द और बेचैनी बीच-बीच में हो जाया करती थी। बाबा के एक शिष्य निरन्तर उनकी सेवा में रहते थे वे सेवा कार्य में निपुण तथा सब प्रकार से बाबा की देखरेख करने वाले गुरु भक्त थे। कुछ अन्य शिष्य भी वहाँ रहकर अथवा आकर सेवा कार्य में उनका सहयोग करते थे।

बाबा की वे शिष्या जो वृन्दावन से एक सौ किलोमीटर दूर रहा करती थी गुरु के आदेशानुसार पन्द्रह मार्च को यहाँ आ गयी। सन्ध्या हो जाने के कारण वह उस दिन गुरुदेव के पास न जा सकी। इधर उस दिन न जा पाने के कारण बाबा भी इसी ऊहापोह में रहे कि मेरे सूचित करने पर भी वह किसी कारणवशात् न आ सकी। सन्ध्याकाल में जब उन्हें यह समाचार मिला कि वे वृन्दावन आ गयी है। कल आपके दर्शन करेगी तो बाबा आश्वस्त हो गये।

दि. सोलह मार्च को दोपहर के ११-१२ बजे के लगभग वह गुरुदेव के दर्शन करने आयी। उनके आने पर बाबा उठकर बैठ गये और उनसे वार्तालाप करने लगे। उनकी बातों से स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि जैसे वे अपनी शिष्याको अन्तिम उपदेश दे रहे थे। बाबा ने उससे कहा की अधिक से अधिक नाम जप का अभ्यास करना। श्रीसेवक जी ने नाम को ही वास्तविक धन बताया है और उसे पूँजी की तरह जमा करने की आज्ञा दी है! **'वितु सँचित निधिनाम'** इसलिये तुम इतना अधिक नाम जप करना कि निकुंज प्राप्त में गर्व से मेरा मस्तक भी ऊँचा हो जाय।

दूसरा उपदेश उन्होंने यह दिया कि यथा सम्भव सदैव सन्त सेवा करते रहना सन्तों की सेवा से श्रीजी की प्रसन्नता सहज ही प्राप्त हो जाती है, तीसरी बात उन्होंने सहनशक्ति बढ़ाने के लिये कही। श्रीसेवक जी महाराज ने सहनशीलता से भक्ति की वृद्धि होने की बात कही है! **सहत सहत बाढ़े भगति?**

सहनशीलता न होने से छोटे-छोटे व्यवहारिक प्रसंग भी बड़े प्रतीत होते हैं! और उनको लेकर व्यक्ति दुःख क्रोध और प्रतिशोध जैसे विकारों से ग्रसित हो जाता है। दूसरी ओर सहने की सामर्थ होने से बड़ी व्यवहारिक प्रतिकुलताएं भी छोटी प्रतीत होती है जिससे व्यक्ति भीतर से शान्त और समचित्त बना रहता है।

पूज्य बाबा जब यह उपदेश दे रहे थे तब उन्हें हृदय रोग जनित कष्ट और ज्वर भी था उनकी शिष्या भी यह अनुभव कर रही थी कि गुरुदेव का स्वास्थ सही नहीं है। अतः उसने प्रार्थना की कि आप लेट जाइये, विश्राम कीजिये हम जब कल आयेंगे तब आप शेष अमृत वचनों को सुनाइयेगा। इसके उत्तर में बाबा

ने उससे कहा कि कल क्या दीवालों से बात करोगी मैं जो अभी बातें कह रहा हूँ उन्हें ध्यानपूर्वक सुनो और धारण करो।

दण्डवती बाबा के इस वाक्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जैसे उन्होंने अपना महाप्रयाण का समय निश्चित कर रखा था पूर्व में बताया जा चुका है कि सोलह मार्च के दिन भी वे नित्य की तरह प्रातः भ्रमण के लिये गये थे। एक सामान्य व्यक्ति जो भले ही हृदय रोग या अन्य घातक बीमारियों से ग्रस्त हो और वृद्ध भी हो तो भी प्रातः भ्रमण करने के पश्चात् दुपहर को कुछ ही घण्टे पश्चात् अपने इह लोक से प्रस्थान की चर्चा को इतना निश्चित रूप से नहीं कह सकता किन्तु पूज्य बाबा अन्तःप्रज्ञा सम्पन्न महापुरुष थे इसलिए वे अपने महाप्रयाण के विषय में इतनी सटीक बात बता पाये।

उस दिन बाबा को बीच-बीच में कुछ खाँसी भी आ रही थी। ऐसी स्थिति में वे आयुर्वेद का प्रसिद्ध चूर्ण सितोपलादि लिया करते थे। उनकी शिष्या चूर्ण लाने के लिये उठी जो बाबा की कुटिया में एक निश्चित स्थान पर रखा रहता था किन्तु उसे उस स्थल पर चूर्ण नहीं मिला। तब उसने गुरुदेव से कहा कि जहाँ मैं ठहरी हुई हूँ वहाँ सितोपलादि उपलब्ध है, वहाँ से ले आती हूँ बाबा ने इसकी अनुमति नहीं दी। दोनों स्थानों में एक किलोमीटर की दूरी थी। वे जानते थे कि अब यह अन्तिम चर्चा ही हो रही है उसके पश्चात् मिलना नहीं हो पायेगा इसलिए वे चाहते थे कि जो भी आवश्यक निर्देश मुझे इसको देने हैं वे समय रहते दे दूँ इसलिये बाबा ने उससे कहा कि सितोपलादि नहीं हो तो कोई बात नहीं शहद और अदरक का रस मिलाकर दे दो उनकी आज्ञानुसार ऐसा ही किया गया।

इसके कुछ देर पश्चात् बाबा की तबियत बिगड़ती देखकर उनकी शिष्या ने कहा कि गुरुदेव आज आपका स्वास्थ कुछ अधिक खराब लग रहा है इसलिए हमलोग यहाँ आपके पास ही रुक जाते हैं। पूज्य बाबा ने कहा नहीं, बेटी अब तुम लोग जाओ। मैं श्रीजी का नाम स्मरण करते हुए संसार से जाना चाहता हूँ तुम लोग सामने रहोगी तो रोओगी, दु:खी होओगी तब मेरा ध्यान भी विचलित होगा। इसलिये तुमलोग अब जाओ!

बाबा के ये वाक्य बताते हैं कि जगत से महाप्रयाण के विषय में वे कितने दुविधा रहित और निश्चित थे। जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में वस्तुओं का स्पष्ट प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी प्रकार महापुरुषों के शुद्ध अन्त:करण में भूत भविष्य की सभी घटनाएँ उन्हें भाषित होती है। पूज्य बाबा ऐसी ही एक निर्मल आध्यात्मिक विभूति थे।

बाबा की आज्ञानुसार सम्भवत: तीन बजे के लगभग उनकी शिष्याएँ अपने निवास पर लौट गयी। चार बजे के आसपास बाबा के स्वास्थ में और अधिक गिरावट आयी। उन्हें छाती में दर्द और बेचैनी जो पहले से भी थी और अधिक बढ़ गयी। बाबा के निकट उनके एक शिष्य रहते थे जिनकी चर्चा पूर्व में भी की जा चुकी थी। उन्होंने अन्तिम कई माह गुरुदेव की भावपूर्वक सेवा की थी। कुछ अन्य सहयोगी भी सेवा कार्य में उनका हाथ बटाते थे किन्तु दिनरात निकट रहकर गुरु की सेवा का लाभ उन्हें ही विशेष रूप से प्राप्त हुआ।

जब उन शिष्य ने देखा कि बाबा का स्वास्थ अधिक बिगड़ रहा है तो उन्हें किशोरपुरा स्थित उस अस्पताल में पुन: भर्ती कराया जिसमें वे पहले भी भर्ती हुए थे। यद्यपि बाबा

अस्पताल जाने के लिये मनाकर रहे थे किन्तु स्वास्थ को देखते हुए उनसे प्रार्थना की गयी तो उन्होंने अनुमति प्रदान कर दी। यह बात दि. सोलह मार्च २००१ की है जब बाबा को लगभग चार-पाँच बजे अस्पताल में भर्ती किया गया।

डॉ. ने पूज्य बाबा की यथाशीघ्र चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। चिकित्सा जगत में निरन्तर शोधकार्य हो रहे हैं। नई-नई जाँचे और इलाजों का आविष्कार किया जा रहा है प्रत्येक अस्पताल की भी मरीज को चिकित्सा देने की एक सीमा होती है। श्रीवृन्दावन के किशोर पुरा में स्थित महिला चिकित्सालय नामक अस्पताल कुशल डॉ. के द्वारा संचालित ख्याति प्राप्त था। डॉ. पूज्य बाबा में श्रद्धा रखते थे यह पूर्व में बताया जा चुका है। उन्होंने उस समय के अनुसार और अपने अस्पताल में उपलबध चिकित्सा उपकरणों के अनुसार बाबा का अच्छे से अच्छे इलाज करने का भरसक प्रयत्न किया।

बाबा को एक प्रथक कमरे में भर्ती किया था। वह कमरा डॉ. के निवास के ठीक सामने ही था उस रात्रि में बाबा प्राय: शान्त मुद्रा में लेटे ही रहे प्रात: होने पर उन्हें फिर अधिक दर्द और बेचैनी होने लगी उनकी सेवा में उपस्थित शिष्य ने शीघ्र ही डॉ. को बुला लिया क्योंकि डॉ. का निवास भवन बाबा के कमरे के सामने ही था अत: डॉ. को आने में देरी नहीं लगी। उन्होंने बाबा का परिक्षण किया और आवश्यक निर्देश देकर वे चले गये। बाबा बेचैनी के कारण कभी लेट जाते और कभी बैठने के लिये कहते इस प्रकार कुछ मिनिट और व्यतीत हुए।

बाबा के शिष्य ने उनसे कहा कि आपकी तबियत ठीक नहीं दिख रही है। मैं पी.सी.ओ. से फोन करके दो तीन लोगों को

बुला लेता हूँ अथवा आपको इस समय किसी को फोन करके बुलाना हो तो मैं उन्हें सूचित कर देता हूँ। यह कहकर वे पी.सी.ओ. जाने को तैयार हुए जो अस्पताल के ठीक बाहर ही था। पूज्य बाबा ने उन्हें रोकते हुए कहा-कहीं मत जाओ। बस पाँच मिनट और यही रुको यदि अभी गये तो जीवन भर पछताओगे।

यही उनके अन्तिम वाक्य हैं जो उन्होंने अपने उन शिष्याओं से कहे थे। इन वाक्यों में उन्होंने अपने महाप्रयाण का निश्चित समय सूचित कर दिया जिसका आभास उन्हें पहले से ही था।

प्रेम रसावतार हरिवंश महाप्रभु ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीराधासुधानिधि में कहा है-

वृन्दारण्ये नव रस-कला-कोमल प्रेम मूर्तेः,
श्रीराधायाश्चरण-कमलामोद-माधुर्य्ये-सीमा।
राधां ध्यायन् रसिक-तिलकेनात्त केलि-विलासं,
तामेवाहं कथमिह तनुं न्यस्य दासी भवेयम्॥

राधासुधानिधि २६१

अर्थात्- श्रीवृन्दावन में रसिक शिरोमणि के साथ विलास करने वाली उन्हीं श्रीराधा का ध्यान करता हुआ मैं अपने इस शरीर को छोड़कर उनकी दासी कब बनूँगा? अपने शिष्य को पाँच मिनट और रुकने को कहकर पूज्य बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी ने अपनी लोकयात्रा को विराम दिया। अपना पंचभौतिक कलेवर छोड़कर उन्होंने श्रीश्यामाश्याम के उस नित्य निकुंज में सहचरि रूप से प्राप्त किया। जहाँ सृष्टि स्थिति और प्रलय में झँझावात नहीं पहुँचते और जहाँ प्रवेश करने पर वहाँ से फिर कभी लौटना नहीं पड़ता।

नित्यलीला में प्रवेश

पूज्य बाबा ने श्लोक में वर्णित मनोदशा में स्थित रहते अपना पंचभौतिक कलेवर छोड़कर श्रीवृन्दावन की नित्यलीला में प्रवेश किया। दिनांक १७ मार्च २००१ प्रातः लगभग ७.३० बजे दण्डवती बाबा ने इस असार संसार से सर्वदा के लिये अपने नेत्र मूँद लिये।

सुखदा भक्ति आश्रम में अन्तिम दर्शन के लिये उन्हें रखा गया उनके शिष्य भक्तों ने अगले दिन १८ मार्च को अन्तिम संस्कार करने का निर्णय लिया।

पूज्य बाबा ने अपनी लोक लीला का संवरण कर लिया यह समाचार संत समाज में तथा उनके प्रेमी भक्तों में सर्वत्र फैल गया अन्तिम दर्शन के लिये आने वालों में श्रीहिताश्रम के संस्थापक परम आदरणीय श्रीहितदास जी महाराज भी थे। उन्होंने बाबा के अन्तिम दर्शन करते हुए कहा कि **"बाबा श्रीराधावल्लभशरण जी के मुखमण्डल पर नाम निष्ठा का अद्भुत तेज चमक रहा है जिसे देखना हो देख ले।"**

पूज्य बाबा के निकट अखण्ड नाम कीर्तन चलता रहा इस बीच अनेक संत भक्त उनके दर्शनों के लिये आते रहे। पूर्व पृष्ठों में उनकी कृपापात्र एक शिष्या का उल्लेख किया गया है जिसे उन्होंने लहँगा धारण करके सेवा में जाने की बात कही थी। उनका निवास दूर होने से वे मध्यरात्रि के लगभग आई। जैसा कि पहले भी बताया गया है उन्होंने लहँगे का कपड़ा गुरुदेव को ओढ़ाकर अश्रुपूरित नेत्रों से गुरुदेव के अन्तिम दर्शन किये।

दिनांक अठारह मार्च को जय-जयकार की तुमुल ध्वनि के बीच श्रीयमुना पुलिन पर पूज्य दण्डवती बाबा का अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ।

ब्रज वृन्दावन की पावन रज से बाबा का गहरा आत्मिक सम्बन्ध था। वर्षों पहले वे इसी रज को लक्ष्य बनाके घर परिवार छोड़कर निकले थे। आगे चलकर अनेक वर्षों तक दण्डवती परिक्रमा के माध्यम से उन्होंने इस पावन रेणु से अपना तादात्म्य स्थापित किया। पूज्य बाबा की यह रज साधना अब चर्मोत्कर्ष को प्रकट हुई। भजन भावना से धन्य हुई। अपनी भौतिक देह को श्रीवृन्दावन की पावन रज में विलीन कर उन्होंने अपने जीवन के चरम लक्ष्य को पा लिया।

अनेक महापुरुषों की जीवनी में ऐसा पाया गया है कि उनके महाप्रयाण के समय कुछ विशिष्ट पुरुषों को भाँति-भाँति के अनुभव हुआ करते हैं। पूज्य दण्डवती बाबा के धाम गमन के समय भी ऐसा ही एक प्रसंग घटा। उनके वे शिष्य जो उनके अन्तिम समय तक उनकी सेवा में रहे कुछ दिनों बाद श्रीधाम वृन्दावन की परिक्रमा लगाने गये। सोऽहम आश्रम के निकट उन्हें एक महात्मा मिले जिनका दण्डवती बाबा से स्नेह सौहार्द सम्बन्ध था वे महात्मा वीतराग और अकिंचन सन्त थे वे प्राय: सोऽहम आश्रम के निकट एक पेड़ के नीचे ही रहा करते थे। बाबा के शिष्य जो परिक्रमा लगा रहे थे उनकी उन महात्मा जी से मुलाकात हुई वे महात्मा बोले-देखो दण्डवती बाबा ने ठीक ही कहा था कि पाँच मिनट और रुक जाओ अन्यथा जीवन भर पछताओगे, यदि तुम उस समय चले जाते तो पछताना ही पड़ता।

आगे भी महात्मा जी बोले- तुम्हारे गुरुदेव श्रीप्रियाप्रीतम राधाकृष्ण की नित्यलीला सेवा में पहुँच गये है इसका मुझे स्पष्ट आभास हुआ जिस समय उन्होंने देह त्याग किया था मैंने देखा कि एक धवलकान्ति वाला विमान उन्हें लेने के लिये आया हुआ है।

महात्मा जी की बातें सुनके वे चौंक गये क्योंकि उन्होंने इस प्रसंग का उल्लेख किसी के समाने नहीं किया था। वे महात्मा जी अस्पताल में उपस्थित भी नहीं थे फिर उन्हें यह कैसे पता चला? इससे वे चकित थे।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वृन्दावन रस की उपासना में विमान की चर्चा प्राप्त नहीं होती श्रीवैकुण्ठ आदि धामों में अनेक आश्चर्यमय अलौकिक विमान विद्यमान है ऐसा उल्लेख शास्त्रों में मिलता है, ऐश्वर्य भाव से भगवत् भक्ति करने वाले महापुरुषों की प्रयाण बेला में विमान के आगमन की चर्चा शास्त्र से अनुमोदित है। किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है कि श्रीवृन्दावन रसोपासना के साहित्य में विमान की कोई चर्चा प्राप्त नहीं होती। इस दृष्टि से महात्मा जी के कथन की संगति यह है कि पूज्य दण्डवती बाबा को प्रयाण बेला में श्रीप्रियालाल का निज सहचरी परिकर ही लेने आया। इस दिव्य घटना का दर्शन उपासना एवं निष्ठा भेद से उन महात्मा जी को विमान के रूप में हुआ। इससे मूल तात्पर्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता। तात्पर्य यही है कि बाबा श्रीराधावल्ल-भशरण जी लौकिक कलेवर त्याग के अपने परमाराध्य की नित्यलीला में सम्मिलित हो गये।

कार्तिक शुक्ल एकादशी को श्रीदण्डवती बाबा की जन्म तिथि है और उसके दो दिन बाद ही त्रयोदशी को परमाराध्य श्रीराधावल्लभ ठाकुर जी का पाटोत्सव मनाया जाता है। बाबा

प्रतिवर्ष श्रीजी के पाटोत्सव के दिन विविध प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ साधु सन्तों एवं ब्राह्मणों में बांटा करते थे। उनकी रज प्राप्ति के पश्चात् उनके शिष्यों ने पूज्य बाबा के इस क्रम को बनाये रखा है। वे सब कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन वृन्दावन में एकत्रित होते हैं और अपने गुरुदेव के परमाराध्य निभृत निकुंज निवासी श्रीराधावल्लभलाल के पाटोत्सव में सम्मिलित होकर संत सेवा का आयोजन करते है! इस प्रकार इष्ट और गुरु का सम्मिलित उत्सव मनाकर पूज्य बाबा के शिष्य–

"गुरु गोविन्द न भेद कराई"

श्रीसेवक वाणी की इस पंक्ति को चरितार्थ करते हैं।

उपसंहार

दण्डवती बाबा का लिखकर, चरित ललाम।
नवेलीशरण बाबा गए प्रियाप्रीतम के धाम॥

बाबा द्वारा "दण्डवती" का, ग्रन्थ हुआ परिपूर्ण।
श्यामादासी की हुई, मनोकामना पूर्ण॥

पढ़ें पढ़ाएें लाभ उठाएं शिक्षा प्रद है ग्रन्थ।
ज्ञान वैराग्य भक्ति पाने हित, है अति पावन पन्थ॥

दास अम्बिका कर रहा बाबा से अनुरोध।
लेखन करवाना सदा, हो न कोई अवरोध॥

बारम्बार प्रणाम है श्रीचरणों में आज।
ग्रन्थ लेखन सामर्थ दें श्रीबाबा महाराज॥

समर्पण

दी प्रेरणा जिसने हृदय में,
और लिखवाया इसे।

अव्यक्त व्यक्त अनादि अज,
निगमादि कहते हैं जिसे॥

जो प्रभु सगुण निर्गुण सनातन,
किन्तु दिख पाया नहीं।

कल्याणप्रद यह ग्रन्थ सादर,
कर रहा अर्पित उसे॥

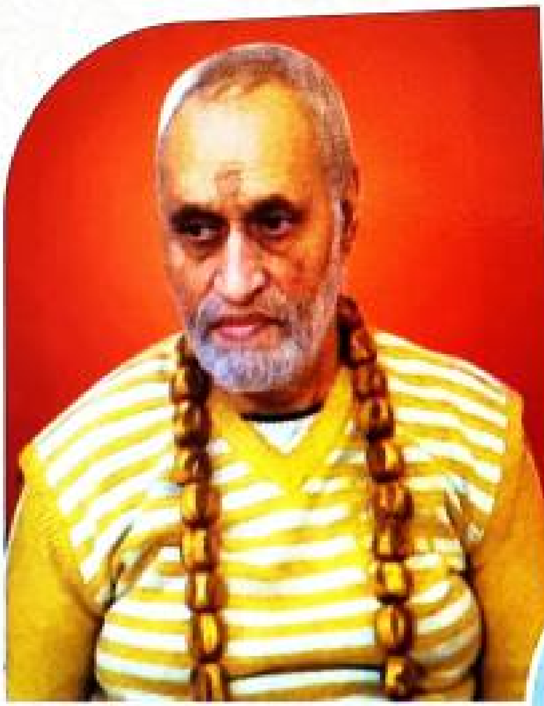

लेखक
बाबा श्रीनवेलीशरणजी महाराज

सम्पादक
श्रीअम्बिकादास शुक्ल